उड़ते चलो : उड़ते चलो

फ्रांस, इङ्गलैंड, स्वीटज़रलैंड और इटली का यात्रा-वर्णन

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

प्रभात प्रेस लिमिटेड

पटना—१

प्रकाशक
प्रभात प्रेस लिमिटेड,
पटना—१

प्रथम संस्करण
१५ अगस्त, ५४

मूल्य २॥)

मुद्रक
प्रभात प्रेस लिमिटेड
पटना—१

समर्पण

भाई मिनू मसानी को

जो भारत में

सांस्कृतिक स्वतंत्रता

का

प्रकाश-स्तम्भ

हैं।

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

विषय-सूची

विषय				पृष्ठ
१.	उड़ता जा रहा हूँ !	...	....	१
२.	यह प्रभात, यह पेरिस !		....	१०
३.	कांग्रेस : वार्साई		....	१८
४.	दूतावास : नवोकौव : रिस्तोराँ		...	२५
५.	तानाशाही : सिनेमाघर : ईमानदारी		...	३१
६.	ईफेल टावर : सीन का किनारा		...	३८
७.	कंकर्द : त्वलरी : लुव्र : कांग्रेस		....	४४
८.	कलाकारों से : पैन्थियन में		...	५१
९.	कौमेदिए फ्रांसिस		...	५८
१०.	नई कला : सांस्कृतिक स्वाधीनता		...	६४
११.	संगीत की मधुर धारा	...	...	७०
१२.	नेपोलियन की समाधि : साहित्य के दो छोर			७७
१३.	मेट्रो : मेला : लीडो	...	...	८३
१४.	होटल : राजदूत : देवीजी !	....	...	८८
१५.	श्मशानभूमि और रंगभूमि	...	...	९३
१६.	वन-विहार : चिड़ियाखाना	...	...	१००
१७.	चित्रकला की आत्मा	...	...	१०७
१८.	जापानी लेखिका : एशियाई संगठन		...	१११
१९.	क्रान्ति और कला	...	...	११७

२०. फुलवाड़ी : दूतावास : सिलोन ... १२४
२१. काँग्रेस का आखिरी जल्सा ... १३०
२२. पेरिस, सलाम ! ... १३५
२३. इङ्गलैंड की ओर ... १४०
२४. गुलाब की दुनिया ... १४८
२५. संग्रहालयों के बीच ... १५४
२६. खुला रंग-मंच ... १६०
२७. कैम्ब्रिज : बन्चवल ... १६६
२८. स्पेन्डर के घर में ... १७१
२९. कोहेनूर : रानी : आनन्द-वाटिका ... १७७
३०. सोशलिस्ट ग्रूप : लेबर पार्टी ... १८२
३१. जिनेवा की सुहावनी संध्या ... १८९
३२. सामने 'जुंगफ्राउ' है ! ... १९८
३३. जुंगफ्राउ : नई दुलहन ... २०४
३४. वेनिस की ओर : इटली की देहात ... २२१
३५. यह पानी पर का शहर ... २३०
३६. दांते के नगर में ... २४६
३७. यह दांते का घर है ! ... २५९
३८. फ्लोरेंस से रोम ... २७१
३९. रोम की झाँकी ... २८३
४०. घोंसले की ओर ... २९३

१

उड़ता जा रहा हूँ !

१०/५/५२
प्लेन पर

प्राचीन ऋषियों ने कहा था—चरैवेति, चरैवेति—चलते चलो, चलते चलो।

आधुनिक मानव कहता है—उड़ते चलो, उड़ते चलो।

प्राचीन ऋषियों का कहना था—पृथ्वी चल रही है, चन्द्रमा चल रहा है, सूर्यदेवता चल रहे हैं, इसलिए तुम भी चलते चलो, चलते चलो।

आधुनिक मानव देखता है—पृथ्वी, चन्द्रमा या सूर्यदेवता की गति प्रति घंटा लाखों, करोड़ों, अरबों मील है। किन्तु, उसके पैर की गति अत्यन्त परिमित, धीमी है। अतः वह कहता है, विज्ञान ने जो साधन दिये हैं, उनका सहारा लेकर कम से कम तीन से पाँच सौ मील प्रति घंटे के हिसाब से तो उड़ते चलो।

प्राचीन ऋषि की दुनिया छोटी थी, वह उसे पैदल चल कर भी पार कर ले सकते थे। आधुनिक मानव का संसार बहुत बड़ा, लम्बा-चौड़ा होगया है। वह कहाँ तक पैरों को घसीटता चले—वह उड़ेगा, वह उड़ रहा है!

मैं भी यह दूसरी बार उड़ रहा हूँ। चार्ट बताता है, बम्बई से पेरिस पौने पाँच हज़ार मील है; फिर बीच में समुद्र हैं, पहाड़ हैं, मरुभूमि है, जंगल हैं। ऋषियों का वचन मान कर पैदल चला जाता, तो कितने दिन लग जाते! किन्तु यह टाइम टेबुल बताता है, अभी दोपहर को १-४० बजे हम चल रहे हैं, कल सुबह-सुबह ठीक आठ बजे पेरिस की रंगीनियों में डूबते-उतराते होंगे!

सान्ताक्रूज से अभी एक झमाके के साथ हमारा यह जहाज उड़ा है। ऊपर से बम्बई की पूरी झलक भी नहीं लेने पाया, कि यह देखिये, नीचे समुद्र लहरा रहा है और ऊपर हम उड़े जा रहे हैं।

पथ-पुस्तिका में उन स्थानों के रंगीन चित्र देख रहा हूँ, जो हमारे नीचे आयेंगे—तरह-तरह के द्वीप, तरह-तरह के लोग, तरह-तरह के जीव-जन्तु! अपने स्वाद से जीभ को पानी-पनी कर देने वाली समुद्री मछलियाँ, अपने मोती से हमारे गलों को जगमगाने वाली सीपियाँ, अपने आँसू की लड़ियों से मुक्तायें बनानेवाली जल-परियाँ। वह द्वीप जहाँ क़ैदियों को गले में रस्सा तख्ता पहना पर छोड़ दिया जाता था, वह द्वीप जहाँ जल-दस्युओं के अड्डे रहते थे। क़ालीनों का बंदरगाह मस्कट, मार्कोपोलो की प्रसिद्ध सराय हरमुज, संसार की सबसे गरम जगह रास मसंदम, खजूरों की भूमि नज्द। जिनमें सबसे पहले मक्खन तैयार हुआ बेदुइनों के वे चलते-फिरते घर, ऊँटों के कारवान, अरबी घोड़ों के झुंड! जब हम ऊपर चले जा रहे हैं,

नीचे हम क्या-क्या न छोड़ते जायँगे ! निस्सन्देह हम पैदल चलते, तो इन सबको देखते; किन्तु, इनमें से कितने को देख पाते !

नहीं-नहीं, उड़ते चलो, उड़ते चलो ! बम्बई से काहिरा, काहिरा से पेरिस—सिर्फ दो हुदके और हम अपने मन्तव्य स्थान को पा लेंगे ।

अहा ! हम उड़ते जा रहे हैं, देखते जा रहे हैं और लिखते भी जा रहे हैं—यह सुख तो ऐरोप्लेन पर ही मिल सकता है ।

पिछली बार की तरह इस बार की यह यूरोप-यात्रा भी आकस्मिक ही रही । उस दिन पटना रेडियो स्टेशन पर संगीत-सभा हो रही थी । रात में, वहीं जाने के लिए मैं तैयार हो रहा था कि एक तार मिला—

पेरिस में होनेवाली सांस्कृतिक स्वाधीनता काँग्रेस के साहित्यिक समारोह में सम्मिलित होने के निमंत्रण पर क्या विचार कर सकोगे ?

तार भेजनेवाले का नाम स्पष्ट नहीं था ; किन्तु स्थान का नाम बम्बई स्पष्ट था । मैं सोचने लगा, यह अचानक निमंत्रण कैसा ? किससे ?

साथ में सियाराम था । मैंने उससे कहा, चलो, पेरिस चलें । पेरिस का मतलब उसने संगीत-सभा समझ लिया । कोई बुरा तो नहीं समझा ? उसने हाँ भर दी । मैं रेडियो-स्टेशन की ओर तेजी से जा रहा था और दिमाग में आप ही आप ताना-बाना बुन रहा था ।

चुनाव के बाद की थकान थी, कुछ अधूरे काम थे। सोचा था, कुछ दिनों घर पर ही रह कर उन कामों को पूरा कर लूँगा। पेरिस जाऊँ, तो फिर वही दौड़-धूप ; फिर काम अधूरे के अधूरे रह जायेंगे !

रेडियो स्टेशन पर एक-दो मित्रों को वह तार दिखलाया, फिर उसे जेब में रख दिया, सो तीन दिनों तक वह वहीं पड़ा रहा। मेरा मन असमंजस में था। किन्तु धीरे-धीरे मित्रों को इसकी खबर होती जाती थी और उन सबका आग्रह कि ज़रूर जाओ। अन्ततः प्यारे गंगा ने सारे तर्क-वितर्क को शान्त कर दिया—नहीं, तुम्हें जाना ही चाहिये। ये काम दो महीने बाद भी हो जायेंगे और यूरोप की आबहवा में थकान भी भूल जायगी !

और, प्रोफेसर कपिल ने अपने ही हाथों से स्वीकृति का तार भाई मसानी के पास भेज दिया। तार के प्रेषक वही थे, दूसरे दिन, दिन की रोशनी में स्पष्ट हो गया था।

उधर मसानी के तार पर तार आने लगे, इधर बेमन की तैयारियाँ भी होने लगीं। किन्तु बीच में एक ऐसा भी अवसर आया कि मैंने तय किया, अब जाना रोक ही देना है। किन्तु फिर मित्रों ने कहा, जाइये ही, यहाँ हम सब सम्हाल लेंगे।

और, आज जा रहा हूँ। किन्तु इन झंझटों का यह असर कि जा रहा हूँ, पर मेरे पास मेडिकल सर्टिफिकेट भी अधूरे ही हैं। कभी-कभी चिन्ता होती है, न-जाने इसके चलते क्या हो?

किन्तु, चलते समय एअर इन्डिया के मि० दस्तूर ने विश्वास दिलाया—है चिन्ता न कीजिये, सब ठीक रहेगा !

हाँ, इस बार एअर इन्डिया इन्टरनैशनल के प्लेन पर जा रहा हूँ—अपने देश के प्लेन पर ! पिछली बार बी० ओ० ए० सी० के प्लेन पर गया था। प्लेन का रंगरूप तो एक ही है, किन्तु निस्सन्देह ही इसके भीतर भारतीय वातावरण लगता है !

यह हमारे सामने के थैले में जो पंखा है, उसपर एक नृत्यशील भारतीय लड़की का चित्र है। भारतीय कला इससे छलकी पड़ती है। जो बैग हमें छोटे सामानों को रखने के लिए मिला है, उसपर एक भारतीय पग्गड़धारी चपरासी का चित्र है, जो हमें सलाम करता-सा दीखता है। जो होस्टेस अभी रूई और पिपरमिंट की पुड़िया दे गई है, वह एक पारसी लड़की है।

प्लेन में अधिकांश यात्री भारतीय हैं। कैसा संयोग, इसी प्लेन से पेरिस के भारतीय राजदूत मि० मल्लिक भी जा रहे हैं—दाढ़ी और पगड़ी वाले बूढ़े सज्जन !

यह कल्पना करके बार-बार पुलक होती है कि हम एक भारतीय हवाई जहाज से सफर कर रहे हैं। किन्तु, सोचता हूँ, हमलोग अपने देश में अपने हवाई जहाज बनाना कबतक शुरू करेंगे ? वह भी होकर रहेगा, शीघ्र ही होना चाहिये।

उड़ा जा रहा हूँ, किन्तु अजीब सूना-सूना लग रहा है, यद्यपि पिछली बार की अपेक्षा इस बार की यात्रा निस्सन्देह ही महत्त्वपूर्ण है। इस कांग्रेस की ओर से इस साहित्य-समारोह के

अतिरिक्त बीसवीं सदी की सर्वोत्तम कलाकृतियों का प्रदर्शन भी होने जा रहा है। एक साथ, एक ही जगह, यूरोप के संगीत, नृत्य, कला, साहित्य सबकी बानगी देखने-सुनने का सुअवसर प्राप्त होगा!

इस बार के साथी भी अच्छे मिले हैं। मित्रवर मसानी के पिता सर रुस्तम मसानी हमारे दल के नेता हैं। सर रुस्तम बम्बई के प्रसिद्ध शिक्षाप्रेमी ही नहीं हैं, एक उच्च कोटि के लेखक भी हैं। बम्बई विश्वविद्यालय के वह वाइस चांसलर रह चुके हैं और उनकी लिखी दादा भाई नौरोजी की जीवनी उत्कृष्ट कोटि की जीवनी मानी जाती है। उनकी कुछ रचनाओं का अनुवाद फ्रेंच में भी हो चुका है!

अभी आये थे, मेरी बगल में बैठे और बड़े प्रेम से बातें कीं, जैसे कोई पिता अपने बच्चे की मिजाजपुरशी कर रहा हो।

पी० वाई० देशपांडे मेरे पुराने परिचितों में से हैं। जब सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ, वह भी शामिल थे। मराठी के सुप्रसिद्ध लेखक : 'नागपुर टाइम्स' के संचालकों में। वह भी आकर इस बार की यूरोप-यात्रा के खाके के बारे में बातें कर गये हैं। वह पहली ही बार यूरोप जा रहे हैं।

चौथे-पाँचवें सज्जन हैं, फिलिप स्प्रैट और का० ना० सुब्रह्मण्यम्। फिलिप स्प्रैट—सुप्रसिद्ध 'मेरठ षडयंत्र' के अभियुक्त। अँग्रेज हैं, किन्तु अब भारत को ही घर बना लिया है। एक भारतीय महिला से शादी की है। मैसूर से

'मिस इन्डिया' नामक पत्रिका निकालते हैं। शान्त चेहरा : मौन स्वभाव! सुब्रह्मण्यम् मद्रासी हैं, तेलगु के नामी लेखक! धड़ल्ले से बोले जा रहे हैं।

और, मेरे सामने हैं, मेरे दो आत्मीय—शिवाजी और उनकी पत्नी शीला। जब मुझे निमंत्रण मिला, शिवाजी ने भी साथ देने की इच्छा प्रकट की। मैंने मसानी को लिखा और वह भी प्रतिनिधि की हैसियत से जा रहे हैं। उनकी पत्नी शीला ने उनका साथ देकर बिल्कुल घरेलू वातावरण बना दिया है!

प्लेन उड़ा जा रहा है। हम संध्या को चले हैं, नीचे समुद्र लहरा रहा है; ऊपर हम आगे बढ़े जा रहे हैं—अपनी मातृभूमि से दूर! कितनी दूर?—अभी कप्तान का सूचना-पत्रक नहीं मिला है।

बम्बई में दो दिन रहा, वहाँ के मित्रों के चेहरे और स्वागत-सत्कार के दृश्य आँखों के सामने घूम रहे हैं।

बम्बई स्टेशन पर उतरकर जब बाहर हो रहा था, इस काँग्रेस की भारतीय शाखा के श्री बरखेदकर मिले। उन्होंने मेरी कोटवाली तस्वीर देखी थी, अतः हिचकिचा रहे थे, किन्तु मेरे मोटे चश्मे ने उनकी झिझक दूर की। उन्होंने मसानी का सलाम कहा, किन्तु मैं तो पहले से ही तय कर चुका था, मैं पृथ्वीराजजी के साथ ठहरूँगा। अतः सीधे माटूँगा!

पृथ्वीराजजी, उनकी धर्मपत्नी रमाजी, बेटे शमी और शशि और बेटी उमी के स्नेह से अब भी अभिभूत हो रहा हूँ।

शर्मा ने अपने स्वाभाविक नाटकीय ढंग से कहा था—चाचाजी, वहाँ एक चपरासी भी लेते चलिये !

जब मसानी से उनके दफ्तर में मिला, हिन्दी में ही बातें शुरु हुईं ! हमलोग सदा हिन्दी में ही बातें करते आये हैं, तब भी, जब वह मुश्किल से हिन्दी में बोल सकते थे ।

हमारी बिदाई के लिए जो समारोह हुआ था, उसमें अशोक और पुरुषोत्तम आये थे। पुरुषोत्तम ने उलहना दिया—मेरे यहाँ नहीं ठहरे ! और अशोक के सिर पर पूरी बम्बई पार्टी की जिम्मेवारी ; तो भी, मेरे ही कारण वहाँ आये थे, ऐसा उन्होंने स्नेह से कहा !

देवेन्द्र मेरे साथ गया था, पीछे वीरेन्द्र भी आगये थे। शीला को पहुँचाने बालाजी आये थे। शिशिर आजकल बम्बई में ही हैं, कल से ही साथ में लगे हैं। देवघर का इन्द्रनारायण सम्मेलन में काम करता था ; अखबारों में आज भोर को मेरे जाने की सूचना पढ़ी थी। वह अपने साथ एक सज्जन को लेते आया था। उसी सज्जन, श्री मुकुन्द गोस्वामी के मगही पान के बीड़े चाभता उड़ा जा रहा हूँ।

किन्तु, यह पान कब तक चलेगा, कहाँ तक चलेगा ? ज्यादा-से-ज्यादा काहिरा तक। तो क्यों नहीं सिगरेट शुरु कर दूँ। पिछले छः सात महीनों से सिगरेट छोड़ रखा था, और पान पर ही काटे जा रहा था। किन्तु यूरोप में पान कहाँ ? अतः बम्बई में ही दो टिन सिगरेट के खरीद लिये।

किन्तु, यह क्या? सिगरेट जलाता हूँ, तो मुँह में अजीब स्वाद लगता है ! कुछ मजा नहीं आ रहा है। लेकिन, आयगा, आयगा ! पुरानी चीज भी नया अभ्यास खोजती है न ?

अंधकार फैल रहा है। प्लेन की बत्तियाँ जल रही हैं। उधर होस्टेस खाने के लिए हर सीट के सामने सँकरा टेबुल सजा रही है। चलो बेनीपुरी, हाथ-मुँह धोओ, खाओ-पीओ और सोओ। बहुत थके हो ! पेरिस घूँघट हटाये तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होगी ; फिर वहाँ विश्राम कहाँ ? हाँ, श्रान्ति और क्लान्ति भी नहीं होगी वहाँ ; किन्तु उस रास-हास के लिए भी तो शक्ति-संचय आवश्यक है !

२

यह प्रभात : यह पेरिस

१२/५/५२

(क) प्लेन पर

अभी नींद टूटी है और प्लेन की शीशे की खिड़की से बाहर नज़र डालते ही यह क्या पा रहा हूँ?

यह सुन्दर प्रभात, मनोरम प्रभात, हृदयहारी प्रभात! उधर, दूर क्षितिज पर, सूर्योदय की लालिमा फूट रही है और इधर हमारे प्लेन के नीचे, बादलों के ढेर हैं! ये बादल, भूरे बादल, एक पर एक लदे बादल—रूई के समुद्र-से, गाले के समुद्र-से लग रहे। और, यह लालिमा क्षण-क्षण, पल-पल रंग बदल रही है! क्या कोई कैमरा भी उसके इस परिवर्तनशील सौन्दर्य को पकड़ सकता है—फिर क़लम क्या करे?

यह सामने बैठी लड़की अपना कमरा सम्हाल रही है। क़लम, तू भी चलती चल!

क्षितिज का रंग बदलता जाता है। जहाँ पहले उसमें लालिमा ही लालिमा थी—तुरत ब्याही गई लड़की की चूनर-सी दिपती हुई, बेदाग़—वहाँ अब उसमें सुनहलापन आ रहा है! किसी गोरे गाल पर दौड़ती शरम की लाली का ठीक उलटा!

बादलों के ऊपर एक चमक-सी छा रही है। जगह-जगह बादल ऐसे उठे हैं कि वे पहाड़ की चोटियों-से लगते हैं। उन चोटियों की चोटियों पर चमक की हल्की लकीरें खिंच रही हैं।

बाईं ओर की खिड़की से देखता हूँ, चाँद औंधे मुँह लटका है। बादल उस ओर भी हैं, किन्तु निष्प्रभ, निस्पन्द। जीवन सूरज में है, चाँद तो सुलाना ही जानता है!

और, इतनी ही देर में, इधर, यह क्या हो गया? सूरज-देवता ने अपनी ज्योति-निर्झरी का जैसे ढक्कन खोल दिया हो! मालूम होता है, असंख्य किरण-धारायें एक ही साथ फूट निकलीं! चारों ओर चकमक, झलमल! चारों ओर जैसे सोने का पानी फिर रहा है।

अब क्षितिज की छवि अद्भुत हो गई है। बादलों के पहाड़ के पीछे से वह सूरज-देवता ने झाँका, फिर मुस्कुरा पड़े! भूरे बादलों की किनारी अब सुनहली, चमकीली है। नीचे के बादल सपाट मैदान-से लग रहे हैं। ज्यों-ज्यों उजाला बढ़ता जाता है, उनका भूरा रंग दूर होता जाता है—देखिये, वे अब मक्खन-से लग रहे हैं, श्वेत, स्निग्ध! भूखे नयन उन्हें देख कर अघा नहीं रहे।

यह लड़की कैसी चंचल हो रही है। क्या इसने मान लिया है कि कैमरा काम नहीं कर सकता? कम्बख्त, उन्हें नयनों में ही भर ले।

सूरज का पूरा गोला अब सामने है—चमकता, सुनहला गोला। सोने की थाल में कंचन का शालिग्राम! बादलों की सुनहरी किनारी दिप रही है। बादलों के गाले में भी चमक है। अरे, सूरज की किरणें शीशे की खिड़की को छेद कर हमारे प्लेन के अन्दर भी आ घुसीं—सारा प्लेन भक्-सा बल उठा जैसे। अब सबकी आँखें सामने की खिड़कियों की ओर हैं।

लड़की की चंचलता बढ़ती जाती है। वह रह-रह कर अपने अलक-जालों से मेरे सामने की खिड़की को ढँक देती है।

सूरज ऊपर उठता जाता है, उसका तेज बढ़ता जाता है। वह लड़की हट गई है। अब यहाँ से वहाँ तक निर्द्वन्द्व देख सकता हूँ; किन्तु क्या देखा जाता है? एक अजीब जगमगाहट है। कभी-कभी खिड़की का शीशा इस तरह चमक उठता है, जैसे वह भी सूरज का कोई टुकड़ा हो। आँखें चौंधिया जाती हैं।

नीचे के बादल अब दूध के फेन-से लग रहे हैं—फेन की ही तरह वे उबलते दीखते हैं।

कहा गया था, हम पेरिस छः बजे पहुँचेंगे। मेरी घड़ी में दस बज रहे हैं। बम्बई और पेरिस के समय में लगभग पाँच घण्टे का अन्तर होना चाहिये। क्या अब हम पेरिस के निकट आ गये हैं?

हम कहाँ हैं? बम्बई छोड़ी, तो फिर काहिरा के ही दर्शन हुए। ऊँघते हुए हम प्लेन से नीचे आये थे। उन्मुक्त हवा के

झोंकों ने हमें ठंडक दी थी। हवाई अड्डे के होटल में एक प्याली काफी पीकर हमने कुछ देर के लिए नींद दूर की थी। हबशी नौकरों के आबनूसी रंग और मोटे होठों ने भी इसमें सहायता की थी। पासपोर्ट आदि की रस्मों के बाद फिर प्लेन में! रात-रात न-जाने कितने मैदान, समुद्र और पहाड़ हमने पार किये। बादलों के नीचे अब निश्चय ही फ्रांस की भूमि होगी!

फ्रांस की भूमि! रूमानियों की भूमि; सैलानियों की भूमि! तुम कहाँ हो? ज़रा नीचे देखें—

अहा, फिर नयनाभिराम दृश्य। सूरज-देवता काफी ऊपर उठ चुके हैं और उन्होंने सारे बादलों को विचित्र ढंग से चमका दिया है। ये बादल स्वयं ज्योति-पुंज बन रहे हों जैसे। चारों ओर चमक ही चमक। जो कभी काले थे, भूरे हुए, सुनहले बने, अब वे उजले-उजले हैं—स्वयं उजले हैं, उजलापन बिखेर रहे हैं।

एक धचके का अहसास। हमारा प्लेन नीचे उतर रहा है क्या? सामने प्लेन की पट्टी पर वह चमक उठा—फासेन सीट बेल्ट! कमर बाँधो, तैयार हो।

अरे, यह नीचे क्या है? गहरी हरियाली में ये लाल, पीले उजले मकान! और वह, वह— ईफेल टावर! हाँ, हाँ, हम पेरिस पहुँच चुके!

मन घबरा रहा है—अधूरे हेल्थ सर्टिफिकेट को लेकर। किन्तु, यह गलत बात। जी कड़ा करो और उतरो परीपुरी। देखो, पेरिस बाँहें पसार कर तुम्हारे स्वागत को खड़ी है! वह खड़ी है, प्लेन भी नीचे उतर कर खड़ा हुआ, तुम भी उतरो!

सुन्दरी होस्टेस कह रही है—बाई-बाई! पेरिस इसी की तरह मुस्कुरा कर कहेगी—फिर आगये, स्वागत!

(ख) पेरिस में—

रंगीन, खूबसूरत बस पर सर-सर निकलता अब पेरिस में प्रवेश कर रहा हूँ!

एरोड्रोम पर कोई झंझट नहीं हुई। हम सम्मानीय अतिथि थे न—जरा-सी ग़फलत के लिए क्या दंड पाता? एयर इन्डिया के पेरिस-प्रतिनिधि मि० कौल अपने साथ उस लड़की के निकट ले गये। उसने हँस कर कागज़ पर मुहर लगा दी।

सिर से बला टली और इधर पेरिस का सौन्दर्य मन-प्राण को अभिभूत करने लगा।

हल्का कुहासा छाया हुआ है। उस हल्के कुहासे में सड़क के दोनों ओर के हरे-हरे पेड़ कितने सुन्दर मालूम होते हैं! ये पेड़—कँटे, छँटे, एक ही बल्ले पर खड़े हरे तम्बू-से! हरी-हरी पत्तियों के बीच हल्के लाल रंग के फूल और गज़ब ढा रहे हैं!

फूलों की पंखड़ियाँ सड़क पर छितराई हुई हैं, जिन्हें कुचलती हमारी बस भागी जा रही है।

यह सामने ईफेल टावर—अपने पूरे गौरव के साथ कह रहा, तुम फिर आ गये ?

और, अब सीन-नदी पार कर रहा हूँ। सीन, यह छोटी-सी नदी ! इसपर कितने वजड़ों ने बहारें लूटी हैं, कितनी लाशें इसकी तरंगों पर उतराई हैं !

और, यह पुल ! अलग से ही यह कहता था, हाँ, यह पेरिस है !

दोनों छोर पर दो-दो बड़े स्तम्भ। स्तम्भों के नीचे सुन्दरतम मूर्त्तियाँ। हर स्तम्भ के ऊपर एक-एक घोड़े की मूर्त्ति – घोड़े जैसे उड़ रहे हों। घोड़ों की चारों मूर्त्तियाँ सुनहली ! प्रातःकाल की सुनहली किरणों ने उनके सोने की चमक में कितना इजाफा कर दिया है !

और, यह सामने जो भवन है—उसका सुनहला कंगूरा ! भवन के बरामदे से लम्बी-लम्बी रंगीन पताकायें लटक रही हैं।

यह कौन स्थान है, आज कोई उत्सव है क्या ?

यह पहुँच गये एयर फ्रांस के दफ्तर में।

स्वागत-समिति की ओर से एक लड़की मिली। हम होटल में ले जाये गये !

जब जलपान करके बाहर निकले, पता चला, हम शाँ जेलीजे में ही हैं। शाँ जेलीजे—स्वर्गभूमि ! इसका यही अर्थ हमें बताया गया था। पिछली बार की यात्रा में एक रंगीन संध्या हमने यहाँ बिताई थी।

ऊँची अट्टालिकायें; दुलहन-सी सजीसजाई रेस्तोराँ ! पेड़ों की पाँतें। लोगों में काफी उमंग ! दिन में यह समाँ ? ओहो, आज छुट्टी का दिन है, और पेरिस अपनी दो महान संतानों की जयन्ती मना रही है आज—नेपोलियन की, जोन द आर्क की !

यह सामने नेपोलियन का विजय-तोरण ! उसके नीचे जो 'अज्ञात सैनिक' की समाधि है, उसकी शान का आज क्या कहना ? उसपर फूलों के ढेर लगे हैं; स्मृति-शिखा—रिमेम्बरेंस फ्लेम—धधक रही है !

हृदय में एक हूक उठती है—आह ! हम अपने शहीदों को याद करना कब सीखेंगे ? पटना-सेक्रेटेरियट के शहीदों की याद आई—कहाँ फूल, कहाँ दीपक; अरे, बेठिकाना उनका मजार है !

विजय-तोरण पर चढ़कर उत्सव-मग्न पेरिस की एक झाँकी ली। वह इनवैलिड, जहाँ नेपोलियन की हड्डी सेंट हेलना से लाकर दफनाई गई है ! पताकायें किस शान से लहरा रही हैं ! हाँ, थोड़ी देर पहले हम उसीके निकट से गुजरे थे न ? और वह पुल एक्जेन्डर पुल होगा। जरा देवी जोन की मूर्त्ति को भी देख लें।

कुछ ऐसा उत्साह कि सामने खड़ी घोड़ागाड़ी पर चढ़कर हम उस ओर चले। पेरिस में घोड़ागाड़ी पर—अरे, हम रईसों के देश से आये हैं न ?

यह कन्कर्द, यह त्विलरी। लेकिन, अभी इनके बारे में नहीं। मैं सीधे उस मूर्त्ति के सामने जा खड़ा हुआ—घोड़े पर सवार, नंगी तलवार लिये वह मूर्त्ति—देवी जोन की मूर्त्ति! सोने की मूर्त्ति, जिसके चारों ओर फूलों के ढेर लगे हैं। फ्रांस के राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री और सेनापति उसके चरणों में अपनी-अपनी मालायें अर्पित कर गये हैं और पेरिस के दस हज़ार नौजवानों ने अभी-अभी उसके निकट श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है!

चारों ओर लोगों की भीड़। भीड़ को कतरियाते किसी तरह मूर्त्ति के निकट पहुँचा और बार-बार उस ग्रामीण बालिका को प्रणाम किया, जो देश के लिए लड़ी और अन्त में ज़िन्दा जला दी गई!

धन्य जोन, धन्य पेरिस, धन्य मैं, जो इस शुभ दिन को ही यहाँ पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त कर पाया।

३

काँग्रेस : वारसाई

१२/५/५२
पेरिस

नौ बजे नींद टूटी। रात खूब सोया। रास्ते की थकान; दिन भर की दौड़-धूप। सबेरे ही सो गया था; किन्तु जैसे कुम्भकर्ण की खाला आँखों पर आ बैठी थी।

शौच, जलपान आदि के बाद जरा उस फाइल को देखने बैठा, जो सांस्कृतिक स्वाधीनता काँग्रेस की ओर से मेरे नाम भेजी गई है!

कितनी व्यवस्था होती है, इनलोगों के कामों में। इस फाइल में कितने ही कागज़ात हैं। काँग्रेस की मुख्य पत्रिका का अप्रील अंक है। कितने ही बड़े-बड़े लेखकों के लेख हैं—एक लेख सुप्रसिद्ध इतालियन लेखक, सौन्दर्य-शास्त्र के आचार्य बेनेदित्तो क्रोचे का भी है। क्रोचे इस संस्था के सम्माननीय सभापतियों में से हैं। चाहता था, यह लेख सबसे पहले पढ़ लूँ। विषय भी मोहक था—'ला आयडियल द कम्यूनिज्म' किन्तु क्या पढ़ सका? फ्रेंच जो नहीं जानता और यह पत्रिका फ्रेंच भाषा में ही निकलती है!

बीसवीं सदी की सर्वोत्तम कृतियों की प्रदर्शनी का पूरा प्रोग्राम भी इसमें है। ३० अप्रील से २९ मई तक चलने वाले इस महान आयोजन की कार्य-सूची पढ़कर दिमाग चकरा जाता है। आरकेस्ट्रा, ओपेरा, बैले, कोरस, क्वार्टेट—इनके संचालकों में पश्चिमी दुनिया के बड़े-बड़े संगीताचार्यों की एक लम्बी सूची। फिर चित्र-प्रदर्शनी, जिसमें आधुनिक चित्रकारों की डेढ़ सौ सर्वोत्तम कृतियाँ और अंत में साहित्य !

मेरा सम्बन्ध तो मुख्यतः साहित्य से है, इसी के लिए बुलाया गया हूँ। अतः उसके कार्यक्रम को अच्छी तरह देखना ही था।

१६ मई से यह सम्मेलन प्रारम्भ हो रहा है। पहले दिन का विषय है—लेखक और वातावरण। इसमें रूसी लेखक मार्क आल्देनौव, फ्रांसीसी लेखक रोजर कायवा, स्वीस लेखक डेनिस द रूजमों, अंग्रेज कवि स्टिफेन स्पेंडर आदि भाग लेंगे और इसका सभापतित्व करेंगे स्पेन के प्रसिद्ध लेखक दोन साल्वादर द मादरियागा, जिन्हें फ्रैंको की तानाशाही के शुरू होते ही देश छोड़ देना पड़ा।

इसके बाद २१, २३, २६ और २८ को इसकी बैठकें होंगी जिनमें १—पृथक्करण और सम्बन्धस्थापन ; २—विद्रोह और मानवीय परिज्ञान ; ३—अनेकरूपता और विश्वरूपता तथा ४—संस्कृति का भविष्य—इन विषयों पर विचार विनिमय होंगे। इन विषयों में भाग लेने वालों में—जेम्स फरेल (अमेरिका) यूजेनियो मोन्तेल (इटली), डब्लू० एच० औडेन (अंग्रेजी कवि,)

शियोदाँ (रूमानिया), इग्नात्सियो सिलोने (इटली), आन्द्रे मालरो (फ्रांस) आदि प्रमुख हैं। नोबेल-पुरस्कार विजेता विलियम फौकनर भी अन्तिम दिन सम्मिलित हो रहे हैं।

२६ को कला-प्रदर्शनी का उद्घाटन हो रहा है। कला सम्बन्धी संलाप में रूडोल्फ रियर (आस्ट्रिया), ब्लाडिमीर विडले (रूस), हर्बर्ट रीड (इङ्गलैन्ड) आदि भाग ले रहे हैं।

प्रतिनिधियों की जो नामावली इसके साथ सम्बद्ध है, उससे पता चलता है—भारत, जापान, इटली, जर्मनी, डेनमार्क, हालैन्ड, स्पेन, रूमानिया, पोलैंड, ब्राजिल, आस्ट्रिया, ग्रीस, अमेरिका, फ्राँस, इङ्गलैन्ड आदि के प्रतिनिधि पधार रहे हैं!

निस्संदेह यह एक महोत्सव है। क्या ऐसे महोत्सव में सम्मिलित होने का सुयोग पाना सौभाग्य की बात नहीं है? किन्तु हर सौभाग्य के साथ उत्तरदायित्व का गठबन्धन होता है। देखता हूँ, कहाँ तक इसे निबाह पाता हूँ!

खबर लगी है, इटली के सुप्रसिद्ध सिलोने, हमारे ही होटल में ठहरे हैं। एक दिन उनसे मिलना चाहिये।

आज बाहर निकला, तो पहले बहुत-सा समय खरीद-फरोख्त में ही लग गया। हम में से कई आदमी अधूरे सामान लेकर ही आये हैं। किन्तु यहाँ की खरीद-बिक्री भी क्या आसान

है ? जिस दूकान में जाइये, इतनी चीजें और इस तरह की चीजें मिलती हैं कि यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि क्या लें, क्या छोड़ें।

शीला के लिए ओवरकोट खरीदना था। शाँ जेलीज की एक बड़ी दूकान में गये, जहाँ औरतों के लिए ही सामान मिलते हैं। उस लम्बी-चौड़ी इमारत की तीन मंजिलों की इन्च-इन्च जगह सामानों से भरी। औरतों के लिए आवश्यक एक-एक चीज की कितनी किस्में—पेरिस तो फैशन की भूमि ठहरी। चीजें पसंद कीजिये, पहनिये, लम्बे-चौड़े शीशे के सामने टहल कर देखिये कि कैसी फबती हैं। कोई हड़बड़ी नहीं। बेचने वाली लड़कियाँ भी आपको चीजों के चुनाव में मदद करेंगी।

पेरिस फैशन की भूमि है, किन्तु देखता हूँ, शीला की साड़ी देखकर यहाँ की लड़कियाँ बरबस आकृष्ट होती हैं। वह बेचनेवाली लड़की किस तृषित नेत्र से देखती और खूबसूरत-खूबसूरत की रट लगाये हुए थी!

पेरिस की लड़कियाँ! ये स्वयं एक अध्याय खोजती हैं, किन्तु आज फुर्सत कहाँ?

पहले हमने दूर से देखने का तय किया है, इसलिए आज वारसाई जा पहुँचा था। वारसाई क्रान्ति की भूमि, कला की भूमि! १७८९ की क्रान्ति यहीं से शुरू हुई थी न, जब पेरिस से एक भीड़ उमड़ कर यहाँ पहुँची, राजा-रानी को पकड़ कर,

एक गाड़ी पर लेकर पेरिस लौटी। पेरिस उन दिनों भूखों मर रही थी। भीड़ की औरतें रानी की ओर इंगित कर चिल्लाती थीं—रोटी पकाने वाली को ला रही हैं, बहनो, अब रोटियों की कमी नहीं होगी!

यह विशाल इमारत। इमारत के सामने लुई चौदहवें की घोड़े पर सवार एक विशाल प्रस्तर प्रतिमा! बेचारा क्या जानता था, उसके पोते को इसी इमारत से घसीट कर लोग ले जायेंगे। उसने सोचा था, मैं यूरोप का सब से शानदार महल बनवा रहा हूँ, मेरे बाल-बच्चे अनन्त काल तक उसमें रँगरलियाँ मचाते रहेंगे!

अँगनाई के सामने ही वह बालकनी है, जहाँ खड़ी होकर रानी अन्तोयेनेत ने जनता की भीड़ को शान्त करना चाहा था!

इमारत के भीतर पहुँचते ही उसके चाकचिक्य से चकित-विस्मित हो जाना पड़ता है। सभी कमरे, स्वर्ग का एक एक टुकड़ा! दीवालों पर, छतों पर वे तस्वीरें, जिन्हें देखते ही, आँखें हटना नहीं चाहतीं! यूरोप के सुप्रसिद्ध कलाकारों ने वर्षों के परिश्रम से इन चित्रों को बनाया था। यह देखकर प्रसन्नता होती है, जनता ने राजा-रानी को तो हटाया, किन्तु इन चित्रों की, कला-कृतियों की, जरा भी हानि नहीं पहुँचाई। जो कभी विलास-भूमि थी, वह आज कला की रंग-भूमि के रूप में जगतप्रसिद्ध हो रही है। इसे देखने को देश-विदेश से आये लोगों की भीड़ लगी

रहती है। आज भी कितने देशों के, भिन्न-भिन्न रूपों के चेहरों वाले, भिन्न-भिन्न पोशाकों वाले लोगों की भीड़-सी लगी है यहाँ !

लगभग दो हज़ार कमरे हैं इसमें। हर कमरा इतिहास का एक-एक पन्ना है। सोने की चमक ; तस्वीरों की रंगीनियाँ। एक कमरे की छत पर जो तस्वीरें हैं, उनके, बनाने में ही एक चित्रकार को पाँच वर्ष लगे थे। बेचारा भरसाहा लगाकर, चित्त लेटे हुए, लगातार तस्वीरें बनाया किया ! धन्य वह धैर्य, धन्य ये चित्र !

यह बड़ा हाल—जिसमें १९१९ की वारसाई की संधि हुई। क्लिमैंसो (फ्रांस) विलसन (अमेरिका) और लायड जार्ज (इंगलैन्ड) ने इसी टेबुल पर संधि-पत्र पर दस्तखत किये थे।

एक कमरे में एक बड़ी अच्छी तस्वीर थी। गाइड ने कहा—देखिये, यह मेरी अन्तोयेनेत है, यह उसकी बेटी है और ये दो बेटे हैं उसके। छोटा बच्चा क्रान्ति के पहले मर चुका था। बेटी का क़त्ल रानी के साथ ही किया गया। किन्तु यह बड़ा लड़का क्या हुआ ?

यह प्रश्न सचमुच इतिहास का एक रहस्य बना हुआ है। कहा जाता है, जब वह जेल में था, समाचार फैला, वह मर गया। एक लाश भी दफनाई गई। किन्तु, रानी ने उसे चुपके खिसका दिया और वह बेचारा अज्ञातनाम हालैन्ड में बहुत दिनों तक जीता हुआ मरा !

क्रान्ति ! क्या-क्या न उलट-पलट कर देती है यह लाल देवी !

फ्राँस की सरकार वारसाई के पुनरुद्धार में लगी है। सभी कमरों को पूर्व रूप में सजाया जा रहा है। चित्रों पर लगे धब्बे दूर किये जा रहे हैं। मूर्त्तियों को धोया-पोंछा जा रहा है। फ्रांस आर्थिक संकट में है। किन्तु यदि फ्रांस दुर्दिन में भी अपनी कला को भूल जाय, तो फ्रांस क्या ?

४

दूतावास : नबोकोव : रिस्तोराँ

१३-५-५२
पेरिस

सवेरे ही उठा, क्योंकि आज भारतीय दूतावास में जाना था और सांस्कृतिक स्वाधीनता काँग्रेस के कार्यकारी सभापति नबोकोव से मिलना था।

दूतावास में श्री मल्लिक से भेंट हुई। प्लेन पर इतने शान्त लगते थे कि होता था, यह सदा ऊँघनेवाला आदमी भला क्या करेगा? किन्तु यहाँ बहुत चौकस दीखे। बड़े ही तपाक से मिले। ज्यादातर बातें हमारे दल के नेता सर रुस्तम मसानी ने ही की। सर मसानी भी पूरे अनुभवी—दरबारों की रीतनीत के जानकार। भारतीय पर्यटकों की सहायता की बात आई। बताया गया, पेरिस में आनेवालों की संख्या बड़ी होती है, किन्तु स्टाफ कम है। पूरी सहायता नहीं हो पाती है। अपने देश में शोर है, दूतावासों पर बहुत खर्च हो रहा है, इधर स्टाफ की कमी का रोना! तो खर्च होता किस मद में है? कौन इस भूलभुलैये में पड़े?

वहीं काका कालेलकर के बड़े सुपुत्र डा० कालेलकर से भेंट हुई। डा० कालेलकर पहले हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे; अब यहाँ सेक्रेटरी हैं। पत्रों से इन्हीं का सम्बन्ध है। बड़े मिलनसार। हिन्दी अच्छी जानते हैं—काका साहब के लड़के ठहरे! मेरी चीजें पढ़ चुके थे। घुलघुलकर बातें कीं! हर तरह की सहायता का आश्वासन दिया। हमारे देशपांडे तो मराठी ही ठहरे—दोनों ने खूब मराठी के चने फोड़े। हाँ, जब लोग मराठी में बोलते हैं, तो मुझे लगता है, भाँड़ में एक ही साथ कई सेर चने भड़-भड़ फूट रहे हों! कैसी मर्दानी भाषा है यह।

हम काँग्रेस के दफ्तर में आये, तो नवोकौव से भेंट हुई। हमारे होटल से थोड़ी ही दूर पर यह दफ्तर है। बड़ा ही सुव्यवस्थित दफ्तर!

नवोकौव काफी तगड़े और खुले दिल के आदमी जँचे। ऐसे मिले कि अपने साथी हों। दफ्तर में भीड़ थी। एक कॉफी हाउस में ले आये—पीन और बातचीत साथ-साथ। उन्होंने बताया, पहले-पहले यह सम्मेलन यूरोपीय देशों को लेकर ही बुलाने का निश्चय हुआ था। किन्तु, फिर सोचा गया कि एशिया से भी कुछ लोगों को बुला लिया जाय। सोचा यह जा रहा है कि एशियाई और अन्य पूर्वी देशों को लेकर एक सम्मेलन एशिया के ही किसी देश में बुलाया जाय। उस सम्मेलन को भी इसी पैमाने पर करने का विचार हो रहा है।

नबोकोव संगीत-निर्माता हैं, अतः साहित्य-सम्बन्धी कुछ बातों के बाद मुख्यतः संगीत पर ही चर्चा चल पड़ी। उनसे पता चला, यूरोप में, खासकर फ्रांस में, कुछ ऐसे संगीतज्ञ हैं जो यह समझते हैं कि यूरोप का संगीत अब अपनी चरम-सीमा पर पहुँच गया है, उसमें गतिरोध पैदा हो गया है। अतः उनका ध्यान पूरब के संगीत की ओर गया है और इस सम्बन्ध में वे अच्छा काम कर रहे हैं। नबोकोव ने यह भी बताया कि रेडियो के कारण उस संगीत की महिमा बढ़ती जाती है जिसमें संगीतज्ञ अकेले ही अकले अपनी कला का प्रदर्शन कर सके। रेडियो के यंत्र लम्बे आरकेस्ट्रा की स्वर-लहरी को पकड़ नहीं पाते, अतः संगीतज्ञों को अपनी कला को छोटे-से छोटे रूप में प्रगट करने को बाध्य होना पड़ रहा है। इस दृष्टि से भी अब उस संगीत की ओर ध्यान जाने लगा है जो अकेले-अकेले, थोड़े से साधनों द्वारा, पेश किया जा सके। भारतीय संगीत इसी कोटि का है, फलतः पश्चिम को अब संगीत के लिए उसकी ओर देखना ही पड़ेगा। उनका कहना था कि यदि भारत से कुछ संगीतज्ञ आवें और अपनी कला के प्रदर्शन के साथ उसकी व्याख्या भी प्रस्तुत कर सकें, तो बहुत ही अच्छा हो। भारत ने संगीत को राग-रागनियों में विभक्त कर बड़ी बारीक चीज दुनिया को दी है, जिसकी ओर अब लोगों का ध्यान जाने लगा है।

बाहर प्रतिनिधि-मंडल भेजने में हमारी सरकार ने न-जाने कितने रुपये स्वाहा किये हैं, किन्तु संगीत के लिए वह एक

छदाम भी क्यों बरबाद करे ? यह भी हो सकता है कि दिल्ली के महाप्रभु भारतीय संगीत को संगीत ही नहीं समझते हों ! फिर, विदेशों के लिए तो उनका व्याख्यान ही बहुत है न ?

शाम को शाँ जेलीज़ के एक रेस्तोराँ के सामने उसकी रंगीन छतरियों में बैठकर बहुत देर तक आने-जाने वालों और वालियों को देखता रहा ! यह शाँ जेलीज़—यों तो नेपोलियन के समय से ही यह प्रसिद्ध है, किन्तु, कहते हैं, इसका यह विकास तो पचास वर्षों के अन्दर हुआ है ! और, अब तो यह पेरिस के मौजी जीवों का अखाड़ा बन चुका है।

सड़क के दोनों ओर अट्टालिकायें—यों तो अट्टालिकाओं की कमी हमारे यहाँ के शहरों में भी नहीं। किन्तु, इनमें से हर की इमारत में एक व्यक्तित्व है—पेरिस-सुलभ व्यक्तित्व ! बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें, चार पाँच मंजिलों की अट्टालिकायें—कितनी हल्की-फुल्की लगती हैं।

फिर, ये रेस्तोराँ ! रेस्तोराँ क्या हैं, सजीसजाई दुलहनें ! रंगीन, ख़ूबसूरत ; मोहक, मादक !

हर रेस्तोराँ के आगे रंगीन छतरियाँ ! इन रंगीन छतरियों के नीचे एक-एक टेबुल और दो-दो कुर्सियाँ। रंगीन संध्या के रंगीन वातावरण में इन रंगीन छतरियों के नीचे बैठ जाइये। कुछ खाइये, खिलाइये ; पीजिये, पिलाइये और घंटों गप्प करते जाइये। कोई आपको नहीं टोकेगा कि क्यों आप जगह घेरे हुए हैं, उठिये, चलते नज़र आइये—जैसा कि अपने यहाँ के

रेस्तोरॉं के मैनेजर सोचते, करते ! थोड़ी-थोड़ी देर पर ब्वाय पहुँच कर सिर्फ पूछ जाया करेगा, आपको क्या चाहिये ? बस।

आप इन रंगीन छतरियों के नीचे बैठे हैं, और आपके सामने सौन्दर्य तरंगें ले रहा है !

पेरिस अपने सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है, संगीत के लिए प्रसिद्ध है, सुगंध के लिए प्रसिद्ध है और प्रसिद्ध है अपनी सुरा के लिए ! तीन चीजों की यहाँ प्रचुरता है, चौथी चीज, संगीत के लिए, आपको या तो सामने के 'लीडो' में जाना होगा या बगल के 'थियेटर शाँ जेलीज' में ! हाँ, वहाँ एक साथ ही चारो मिल जायेंगे।

पेरिस की ये सुन्दरियाँ—इनके बाल, इनके चेहरे का रंग, इनकी नाक, इनकी गरदन, इनकी कमर और इनके ये लहराते घाँघरे !

हाँ, पेरिस की लड़कियाँ लंदन की लड़कियों की तरह चुस्त स्कर्ट नहीं पहनतीं ; उनके कटि परिधान को आप अपने देश के घाँघरे का पेरिस-संस्करण समझिये।

जब वे चलती हैं, तब उनके घाँघरे की लहरान उनकी गति में वह अदा भर देती है कि लगता है वे चलती नहीं, हवा पर तिरती जा रही हों !

ऐसी रेस्तोरॉं में, इस रूमानी फिजा में, खा-पी कर हम चले कैसिनो द पेरिस देखने ! पेरिस में तीन-चार घर जो अपने नैश विहार के लिए प्रसिद्ध हैं, उनमें एक यह कैसिनो भी है।

टिकट के लिए रेलपेल। और, मंच का पर्दा उठा नहीं कि आप पहुँच गये स्वप्न-पुरी में !

हाँ, यहाँ परियाँ नाचती हैं, गाती हैं। नाचती हैं विविध रूपों में, विविध हावभावों में ! पहले सुसज्जित शृंगार देखिये, फिर नग्न सौन्दर्य ! नग्न सौन्दर्य—चौंकिये नहीं, घबड़ाइये नहीं; यह पेरिस है ! और, पेरिस की बेटियों को ही जगमग सौन्दर्य की वह अलक्षित चीर विधाता ने दी है कि वह इस रूप में आपके सामने आ सकें, खड़ी हो सकें, नाच सकें और दर्शकों की धमनियों के रक्त को भी नचा सकें !

५
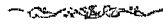
तानाशाही : सिनेमाघर : ईमानदारी

१४/५/५२
पेरिस

तीन दिन हो गये यहाँ आये, किन्तु मन अभी रस नहीं रहा है। कई अधूरे काम छोड़ आये, उनकी चिन्ता रह-रह कर आ घेरती है। किन्तु धीरे-धीरे पेरिस अभिभूत कर रही है, इसमें शक नहीं।

न जाने क्या बात है, पेरिस को मैं सदा स्त्रिलिंग में ही व्यवहार किये जा रहा हूँ। पेरिस को पुरुष के रूप में मैं कल्पना कर नहीं पाता, जैसे लंदन को स्त्री रूप में।

आज निश्चय किया है, इस डायरी के अलावा पेरिस पर एक अलग पुस्तक ही लिखूँ। क्योंकि डायरी में सारी बातें आ नहीं पातीं और पेरिस का यह संक्षिप्त वर्णन प्यास ही बढ़ा सकता है, तृप्ति नहीं दे सकता।

सबेरे से पुस्तक की रूपरेखा तैयार कर रहा था कि देशपांडे ने खबर दी, आज हमें फिर काँग्रेस के दफ्तर में

जाना है। देशपांडे कॉंग्रेस की भारतीय शाखा के मंत्री हैं, अतः काँग्रेस सम्बन्धी कार्य-क्रम का सारा भार हमने उन्हीं के ऊपर रख दिया है।

साढ़े ग्यारह बजे काँग्रेस के दफ्तर में गया। आज उन्होंने कुछ विशिष्ट प्रतिनिधियों को बुलाया था। कई देशों के प्रसिद्ध साहित्यकों से परिचय हुआ, किन्तु उनके नामों का उच्चारण इस ढंग का कि उन्हें स्मरण रखना मुश्किल! और, नामों से मेरी विशेष दिलचस्पी भी तो नहीं रही है!

कुछ बातें हुईं। एक बही पर दस्तखत लिये गये। जिस बही पर बर्ट्रेन्ड रसेल, क्रोचे आदि के दस्तखत हों, उसपर दस्तखत करते हुए कम गौरव नहीं बोध किया। फिर फोटो-ग्राफी हुई। फोटोग्राफर कोशिश कर रहा था, जब हम किसी काम में लगे हों, बातें कर रहे हों, तब फोटो लिये जायँ, जिससे स्वाभाविकता बनी रहे।

काँग्रेस के दफ्तर में एक लड़की है। बिल्कुल बच्ची लगती थी, चेहरा ऐसा कि कश्मीरी लड़कियों में खप जाय। जब हमने कहा, तुम कश्मीरी लगती हो, तो उसने आश्चर्य से कहा, मैं तो आधी जर्मन और आधी बेलजियन हूँ। उसका मतलब था अपने माता-पिता की राष्ट्रीयता से!

दफ्तर में सभी सम्मानीय सभापतियों की तस्वीरें लटक रही थीं—बेनेदित्तो क्रोचे की, जौन डीवी की, कार्ल जैस्पर की,

सालवडूर मादरियागा की, जैक्स मारितेन की, बरट्रेन्ड रसेल की! सभी वृद्ध वशिष्ठ-से लगते थे! पश्चिमी संसार के इन महर्षियों के श्री चरणों में मन-ही-मन शीश नवाया!

दोपहर का भोजन कांग्रेस की कार्य-समिति के सदस्य जूलियस फ्लीशमैन के घर पर करना था। होटल से थोड़ी दूर, आर्क द त्रम्फ से उधर, उनका घर है। घर से लगी वाटिका में एक छोटी-सी विटपी के नीचे हम बैठे। इस विटपी को काट-छाँट कर ऐसा बना दिया गया था, कि वह छतरी-सी लगती थी। किसी भद्दी चीज़ में भी सौन्दर्य भर देना, पेरिस की खूबी है न?

खाने पर मादरियागा और रूज़मों भी आये थे। रूज़मों कांग्रेस की यूरोपीय शाखा के प्रधान हैं। यहाँ खाने के समय, पीने के समय, खूब बातें चलती हैं। घुलघुल कर बातें हुईं। मैंने कहा, आज भारत में जनतंत्र का अर्थ हो गया है पूँजीवाद का समर्थन। जब सिर्फ जनतंत्र की रक्षा की बात कीजिये, तो लोग समझते हैं, यह परोक्ष रूप में पूँजीवाद की हिमायत कर रहा है। और, चूँकि यूरोप में पूँजीवाद आखरी साँस ले रहा है, इसलिए पूँजीवाद का अर्थ हो गया है अमेरिकन पूँजीवाद। इसलिए जब हमारी कांग्रेस सांस्कृतिक स्वतंत्रता के लिए जनतंत्र की अनिवार्य आवश्यकता बताती है, तो लोगों को शक होने लगता है, कहीं हम अमेरिकन पूँजीवाद का समर्थन तो नहीं कर रहे हैं। लोगों के इस शक को कम्यूनिस्ट और बढ़ाते

हैं। भारत में कम्यूनिस्टों की ओर से यही प्रचार है कि यह संस्था अमेरिकनों की संस्था है, अमेरिकन पूँजीपतियों की संस्था है! अतः मैंने सलाह दी कि इस संस्था के कुछ यूरोपीय वक्ताओं को भारत में चलना चाहिये। साथ ही, उनके लिखे इस सम्बन्ध के साहित्य का भारत में प्रचार करने की बात भी सोचनी चाहिये! कम्यूनिस्ट सस्ते साहित्य के प्रचार द्वारा किस प्रकार पढ़े-लिखे लोगों का दिमाग खराब कर रहे हैं, मैंने यह भी बताया।

दोनों ने मेरी बातों को समझने की चेष्टा की। जब मैंने यह बताया कि बीस-बाईस करोड़ हिन्दी-भाषियों के क्षेत्र से एक भी कम्यूनिस्ट पिछले चुनाव में नहीं चुना गया, बल्कि अधिकांश की जमानतें जब्त हुईं; तो दोनों सज्जनों को विस्मयमिश्रित हर्ष हुआ!

शाम को मोन्टे कारलो सिनेमाघर में एक चित्र देखने गया, जिसमें स्काट की दक्षिण-ध्रुव की यात्रा का चित्र था। बोल अङ्गरेजी में ही थे, किन्तु फ्रेंच अनुवाद चित्रों के नीचे लिखे होते थे। कितना अच्छा था चित्र और किस उत्सुकता से देख रहे थे लोग। क्या हिन्दी-चित्र चुम्बन-आलिंगन से कभी ऊपर उठ सकेंगे? यहाँ तो वीरता के चित्रों में भी किसी-न-किसी तरह अश्लील शृंगार घुसेड़ने की चेष्टा होती है—शिवजी की पार्वती भी विरह के गीत गाती फिरती है!

यहाँ, प्रायः सारे यूरोप के सिनेमा-घरों में यह व्यवस्था है कि चाहे जब टिकट कटा कर भीतर चले आइये और जहाँ से शुरू किया है, फिर वहाँ तक देखकर चले आइये। यदि आप दोबारा-तिबारा देखें, तो कोई आपको रोकने नहीं आयगा। किन्तु यहाँ फुर्सत किसे है कि कोई इतनी देर बैठे।

आज एक विचित्र अनुभव हुआ। इङ्गलैंड के लोगों की ईमानदारी के कितने सबूत पिछले साल ही मिल चुके थे। वहाँ कहा गया था, यूरोप में ऐसी ईमानदारी कहीं नहीं मिलती। फ्रांस की कम और इटली की अधिक शिकायत है इस बारे में। किन्तु, आज की घटना ने पेरिस की ईमानदारी का सिक्का बिठा दिया मेरे मन में। अभी रात में मेरा पर्स एक रेस्तोराँ के टेबुल पर छूट गया था। मैं बाहर चला आया था कि पीछे से रेस्तोराँ का आदमी दौड़ा आया और पूछा—आपने कोई चीज़ खोई है? मैं इधर-उधर टटोलने लगा, तो वह बोला—आपका पर्स! मैं तो अवाक्—काटो तो खून नहीं। सारी पूँजी उसी में थी। किन्तु उसने आश्वस्त किया और होटल में ले जाकर मुझे मेरा पर्स सुपुर्द कर दिया!

आह! अपने देश में यह ईमानदारी कब आवेगी? मेहनत और ईमानदारी, यूरोप की उन्नति के दो प्रमुख उपादान रहे हैं और ये ही दो तो व्यक्ति या राष्ट्र को उन्नति की चोटी पर चढ़ाते हैं!

हम अपने बाप-दादों की कहानियाँ कहना कम करें और अपने जीवन में उतारें उन गुणों को, जिन्हें अपनाकर वे भी बहुत आगे बढ़ गये हैं, जिन्हें हम बर्बर, असभ्य आदि नामों से पुकार कर आत्म-तुष्टि कर लेते हैं !

आज शाम को होटल के लौंज में बैठा था, तो एक बूढ़े सज्जन पधारे। यों तो यूरोप में कोई किसी से जल्दी यह नहीं पूछता कि आप कौन हैं, क्या हैं आदि। किन्तु उस बूढ़े सज्जन ने मुझे कुछ देर तक गौर से देख कर पूछ ही तो दिया, क्या आप भारत से आ रहे हैं? और, हाँ कहने पर, उन्होंने बताया, वह स्केन्डनेविया के हैं, घुमक्कड़ तबीयत पाई है, एशिया में भी खूब घूमे हैं, भारत के कई शहरों के नाम बताये। फिर कहा—आप लोग महान हैं, क्योंकि आपके दिमाग में पाँच हजार वर्षों का मस्तिष्क है। इस दृष्टि से यूरोप अभी बच्चा है। बच्चों की तरह इसने घरौंदे तो अच्छे बनाये हैं; किन्तु इसमें वह आन्तरिक चेतना कहाँ, जो हजारों वर्षों के अनुभव से ही प्राप्त होता है। स्केन्डनेविया के प्राचीन इतिहास पर भी उन्होंने गर्व प्रगट किया और अपने इन्सान की अन्तर्चेतना की मूल भित्ति बताई। फिर बोले—पश्चिमी यूरोप में कम्यूनिज्म का भूत सबके सिर पर सवार है। यह भूत नहीं, उनका अपना पाप है! हमारे देशों में भी कम्यूनिस्टों ने जाल फेंके थे, किन्तु बेचारे आप उलझ गये और भागे! कुछ नये मुरीद बनाये, उसे मास्को तक ले गये! किन्तु, उन्होंने देखा, स्केन्ड-

लेविया की जनता ने जितना स्वयं बना लिया है, उसके मुकाबले रूस की जनता इतनी खूनखराबी के बाद भी क्या पा सकी है। वे लौटे और फिर हमारे हो रहे!

आपने सम्मेलन के कुछ प्रतिनिधियों से बातें हुई हैं, सचमुच उस वृद्ध का कहना सोलह आने सत्य है। उनमें अधिकांश उस गलत से घबराये हुए हैं, जिसे वे रूस या कम्यूनिस्ट कहते हैं! रूसी तानाशाही ने रूस और फौलादी घेरों के देशों में कलाकारों और साहित्यकारों पर जो जुल्म किये हैं, उनका मुकाबला करने या बदला लेने की भावना उनमें सजीव दिखाई पड़ती है। यह बड़ी अच्छी बात है। किन्तु, सवाल तो यह है कि ये दुर्दिन देखने क्यों पड़े और इनसे त्राण पाने का सही रास्ता कौन है?

कहीं हम तानाशाही का मुकाबला तानाशाही से नहीं करने लगें या कहीं हम तवे से उछल कर चूल्हे में न गिर पड़ें। जनतांत्रिक समाजवाद ही एकमात्र राह है, यदि इसे भारतीय अर्थों में लिया जाय, तभी विश्व का कल्याण दिखाई पड़ता है!

६

ईफेल टावर : सीन का किनारा

१५/५/५२
पेरिस

मैं चाहता हूँ, थोड़े समय में ही बहुत कुछ देख लूँ। बार-बार विदेश आना-जाना क्या सम्भव है? यह तो संयोग कहिये, कि पारसाल आया और फिर आ गया हूँ। किन्तु, तीसरी बार भी आऊँगा ही, यह कौन कहे? अतः बहुत देखना चाहता हूँ, जहाँ तक सम्भव हो, देखना चाहता हूँ। खास कर जब पेरिस पर एक अलग पुस्तक ही लिखनी है, तो बहुत कुछ देखना-पढ़ना पड़ेगा ही।

देखना ही नहीं, पढ़ना भी। पेरिस-सम्बन्धी जो भी साहित्य अँगरेजी में मिल सकता है, सब का संग्रह कर रहा हूँ—गाइड बुक, पत्रिकायें, स्फुट पुस्तकें, चित्रावली आदि। इन्हें पढ़ना, पढ़ कर नोट करना, फिर एक-एक दर्शनीय स्थान को देखना! गाइड तो ऊपर-ऊपर ही दीखाते हैं, इसलिए स्वयं देखना, ढूँढ़ कर देखना, अतः काफी समय लग जाता है।

किन्तु गोल बाँध कर चलने के कारण उतना देख नहीं पाता। विदेश में साथी हों, यह बहुत अच्छा हो—किन्तु साथी एक रुचि के हों और थोड़े हों, तभी अच्छा !

एक तो इन्हें निकलने में ही देर होती है। नीचे प्रतीक्षा कीजिये, प्रतीक्षा कीजिये, प्रतीक्षा कीजिये। फिर चलिये, तो किसी के पैर में जाँत बँधे हैं, किसी की कमर में कोल्हू ! और रास्ते में जो चीज़ देखी, उसीसे उलझ पड़े। हर चीज़ के दाम पूछेंगे, हर आदमी से बातें करना चाहेंगे। किन्तु किसी तरह निभाना ही है—वरदान हमने लिया, अभिशाप कौन लेगा ?

आज कांग्रेस की ओर से शाँ जलीजे थियेटर में प्रेस-कान्फ्रेंस थी। अपने यहाँ प्रेस-कान्फ्रेंस का मतलब है, सजे-सजाये टेबुल-कुर्सी, कुछ नाश्ता-पानी। सब बैठे, सब का परिचय हुआ, फिर बातें हुईं।

किन्तु यहाँ अजीब हाल। सब हाल में पहुँचे। हाल में टेबुल पर कुछ भोज्य और बहुत पेय पदार्थ रखे हैं। लीजिये और बातें कीजिये। सभी लोग छोटी-छोटी टुकड़ियों में बँट गये हैं। यहाँ-वहाँ चारो ओर प्याले खनक रहे हैं, गप्पें चल रही हैं।

फिर नबोकोव एक ऊँची जगह पर खड़े हुए और बताया पन्द्रह देशों के प्रतिनिधि आ चुके हैं, कल से साहित्यिक जलसा

शुरू होगा। जल्से का कार्यक्रम सुनाया, विषय सुनाये, प्रमुख वक्ताओं के नाम बताये। फिर मादरियागा और रूजवों ने संक्षिप्त भाषण किये—दोनों के भाषण फ्रेंच में हुए, हम मुँह देखते रहे!

बीच-बीच में प्रतिनिधियों के फोटो भी लिये जाते रहे, भारतीय प्रतिनिधियों को एक साथ कर के भी फोटो लिया गया। फिर एक फोटोग्राफर मेरे निकट गया और साथ की लड़की से कुछ गप्प करने को कहा। हमने बातें कुछ शुरू ही की, कि कैमरे में क्लिक हुआ, और थैंक यू कह कर उसने धन्यवाद दिया!

हाँ, एक बात भूल रहा हूँ। मादरियागा बड़े ही खुश-मिजाज तबीयत के हैं, यह भोजन के दिन भी देखा था और आज भी देखा। जब हम थियेटर के निकट आये, बहुत ही कम प्रतिनिधि पहुँचे थे। हँसते हुए मादरियागा आये, घड़ी देखी और बोले, सिर्फ स्पेन और भारत को ही समय पर ध्यान है। क्या सच? वह ठहाके के साथ हँस पड़े।

वहाँ से ईफेल टावर की ओर चले। पहली बार की यात्रा में उसपर चढ़ नहीं सका था। पेरिस-यात्रा का ईफेल के ऊपर चढ़ना भी एक आवश्यक अंग है।

ईफेल टावर—९८४ फीट ऊँचा विशुद्ध इस्पात का यह स्तम्भ। १८८९ की प्रदर्शनी के अवसर पर यह तैयार किया

गया। ७००० टन इस्पात इसमें लगा है, १२००० टुकड़े इसमें जोड़े गये हैं, जोड़ने में ढाई लाख पेंच लगे हैं। ईफेल नामक इन्जीनियर ने इसे दो वर्षों में तैयार किया। यह लौह-स्तम्भ कुछ ऐसा महत्वपूर्ण हो गया है कि पेरिस-सम्बन्धी पुस्तकों पर प्राय: इसी की तस्वीर रहती है।

ऊपर जाने के लिए लिफ्ट लगा है। ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ता गया, पेरिस का सारा समाँ आँखों के सामने स्पष्ट होता गया—हम ऊपर थे, पेरिस नीचे थी, अपनी पूरी गरिमा और छटा के साथ।

पेरिस के बीच बहने वाली यह सीन-नदी। हमारी गंगा के सामने इसकी क्या हस्ती? नागमती ऐसी। किन्तु कितनी खूबसूरत लगती है यह। दोनों ओर पक्के घाट बने हैं। दोनों ओर पेड़ों की पातें, जिनकी छाया लहरों पर झूल रही है। फिर अट्टालिकायें! नदी में नावें तैर रहीं—पेरिस की नावें, खूबसूरत, रंगील! मोटर बोटें भी और कहीं-कहीं छोटे-छोटे जहाज भी खड़े हैं।

सीन पर पुलों की भी भरमार है। कई पुल यहीं से दिखाई पड़ते हैं। हर पुल की अलग डिजाइन—उन डिजाइनों में कला को कभी नहीं भूला गया है।

पेरिस की सभी मशहूर इमारतें यहीं से पहचान लीजिये। आँखों से कठिनाई हो रही हो, तो वह दूरबीन लगी है, कुछ पैसे दीजिये और आँखों को तृप्त कीजिये।

वह नोत्रेदम है, द इनवेलिड का सुनहरा कंगूरा चमक रहा है। वहाँ पहाड़ी पर वह बड़ा गिरिजाघर है। वह आर्क द त्रम्फ है, वह कंकर्द, वह लुव्र! सामने शैलो हाउस है, ईफेल की ही तरह, १९३७ की प्रदर्शनी का वरदान! वह मिलिटरी स्कूल है, जिसमें नेपोलियन पढ़ा। ओपेरा-हाउस भी दिख पड़ता है यहाँ से!

इन अट्टालिकाओं के बीच-बीच पेड़ों की हरियालियाँ देखिये। यदि ये वृक्ष नहीं होते, तो क्या पेरिस इतनी सुहावनी लगती? और पेरिस के दोनों छोर पर के दोनों जंगल—इन्हीं जंगलों में से एक में संसार का सबसे सुन्दर चिड़ियाखाना है!

शाम को फिर टहलने निकले। ग्रैन्ड पैलेस और पेटिट पैलेस को देखते फिर एलेक्ज़ेन्डर पुल पर आये। ग्रैन्ड पैलेस में आधुनिक चित्रों की प्रदर्शनी हो रही है। किन्तु कितने चित्र को देखा जाय? एलेक्ज़ेन्डर पुल की कला को देखते नहीं अघा रहा था। जो सोने के घोड़े बनाये गये हैं, लगता है, वे उड़े-उड़े। जो नारी मूर्त्तियाँ हैं, उनके सौन्दर्य का क्या कहना! सौन्दर्य के साथ शौर्य भी—उनके हाथों की नंगी तलवारें, लगती थीं, पेरिस के दुश्मनों पर अब गिरीं, तब गिरीं!

सीन के उस पार का किनारा पकड़ कर नैशनल असेम्बली के सामने फिर सीन को एक पुल से पार किया! एक ओर नेशनल असेम्बली, दूसरी ओर मेडोलिन का गिरजाघर, बीच

में कान्कर्द का वह गोल मैदान, जिसके बीच में मिश्र का स्तूप ! कान्कर्द—यहीं राजा-रानी के सिर काटे गये थे ! किन्तु आज इसकी चर्चा नहीं ! एक ओर राज्यमन्दिर, दूसरी ओर धर्ममन्दिर और बीच में यह क्रान्ति-स्तम्भ—पेरिस धन्य है !

शाम का सुहावना दृश्य। शाँ जलीजे की रूमानी सड़क को पकड़ कर हम वापस आ रहे थे। दोनों ओर सघन कुंजें। कुंजों में बेंचें; बेंचों पर, यह क्या चल रहा है? चुम्बन, आलिंगन का बाजार गर्म है ! निर्बन्ध प्रेम; उन्मुक्त मिलन ! स्वर्ग-भूमि में बाधा कहाँ, बंधन कहाँ ?

बीच में कुंजों के बीच एक रेस्तोराँ है; कहते हैं, पेरिस का सबसे बढ़कर फैशनेबुल रेस्तोराँ। शिबाजी की इच्छा हुई, आज जरा इसका भी मजा ले लें। दो ही आदमियों में सिर्फ खाना हुआ, चार हजार फ्रांक में—पीना होता, तो न-जाने क्या होता? किन्तु कैसा सुन्दर वातावरण और कैसा अच्छा प्रबंध ! जबतक बैठे रहे, लगा, स्वर्ग के ही किसी टुकड़े में आ पहुँचे हों !

जब होटल को लौट रहे थे, देखा, देशपांडे, सुब्रह्मण्यम् और स्प्रैट निग्रो-नृत्य देखने जा रहे हैं। सिलोने ने उन्हें यह सलाह दी थी। किन्तु हम उनका साथ न देख सके।

७

कन्कर्द : त्विलरी : लुव्र : कांग्रेस

१६/५/५२
पेरिस

हाँ, सर रुस्तम हम लोगों से अलग एक दूसरे होटल में रहते हैं। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी भी हैं, मसानी की माता, हम लोगों की माता। बम्बई की कुछ औरतें और लड़कियाँ भी उनकी अभिभावकता में आई हैं। उन सबको लेकर सर रुस्तम एक अलग शानदार होटल में हैं। उनके लिए पेरिस नई नहीं है, कई बार आये हैं। इधर यूनाइटेड नेशन्स के सांस्कृतिक जलसों में सम्मिलित होने के लिए उन्हें आना ही पड़ता है।

उनके अतिरिक्त शेष हम सभी लोग एक साथ लुव्र की ओर चले।

लुव्र के पहले ही कन्कर्द मिला। कहा जाता है, संसार के सर्वोत्तम स्क्वायरों में इसकी गिनती है। पन्द्रहवें लुई ने इसे बनवाना शुरू किया। सामने दो राजप्रासाद, उसकी आँगनाई

में यह स्क्वायर, इतना बड़ा कि बड़ा से बड़ा उत्सव यहाँ किया जा सके। स्थापत्यकला के आचार्य गैब्रील ने इसका खाका तैयार किया था। १७५७ में इसका निर्माण प्रारम्भ हुआ। इसके बीच में लुई पन्द्रहवें की मूर्त्ति थी।

किन्तु कौन जानता था, राजा के ऐश्वर्य और वैभव के प्रदर्शन की यह भूमि क्रान्ति की भूमि बन जायगी। लुई की मूर्त्ति हटा दी गई, इस स्थान का नाम बदल कर 'क्रान्ति की अँगनाई' रख दिया गया और यहीं २१ जनवरी १७९३ को लुई सोलहवें की गरदन उतार ली गई। कहते हैं, तेरह महीनों तक वह विशाल गिलोटिन यहीं खड़ा रहा और छः हजार आदमियों की गरदनें काटी गईं। राजा, रानी, राजकुमारी, राजपरिवार के अनेक सदस्य, कितने पादरी, पंडित, कवि, दार्शनिक ही नहीं, दान्तन और रोबोस्पीअर ऐसे क्रान्तिकारियों की गरदनें भी यहीं काटी गईं!

आजकल इसके बीच में मिश्र देश से मगाया गया एक स्तम्भ है, जो ईसा के तेरह सौ वर्ष पहले का माना जाता है। वह सत्तर फीट ऊंचा है। रोशनी का ऐसा प्रबंध है कि रात में सारा स्तम्भ जगमग रहता है। स्तम्भ के दोनों ओर दो झरने हैं, ३० फीट ऊंचे, बहुत ही सुन्दर—रोम के संत-पितर की अँगनाई के अनुकरण पर। अँगनाई के चारो ओर मूर्त्तियाँ हैं, जो पेरिस के सभी प्रान्तों का प्रतिनिधित्व करती

हैं। लिलो की मूर्त्ति की बगल में एक झरोखा है, जिससे पेरिस की उस सुप्रसिद्ध नाली को झाँका जा सकता है, जिसे विक्टर ह्यूगो ने अपनी सुप्रसिद्ध रचना 'ला मिज़रेबुल' में अमर कर दिया है!

कन्कर्द के बाद ही त्विलरी। ६० एकड़ में फैला यह बगीचा पेरिस के श्रृंगार-उपादानों में है। पहले इस बगीचे में एक राजप्रासाद भी था, जिसमें कुछ दिनों तक सोलहवें लुई को क़ैद रखा गया था। १८७१ में जब पेरिस के गरीबों ने बगावत का झंडा उड़ाया, तो सबसे पहले इस राजप्रासाद को ही ध्वस्त किया। इससे इस बगीचे का विस्तार ही नहीं, सौन्दर्य भी अधिक बढ़ गया है।

बगीचे के दोनों छोर पर दो तालाब हैं, जहाँ छुट्टियों के दिनों में बच्चे अपनी कागज की नावें बसाते हुए, किलोल करते हुए, पाये जाते हैं। पेड़ों की कतारें बड़े सलीके से सजाई गई हैं। फूलों की क्यारियाँ भी मन को मोह लेती हैं। सबसे बढ़ कर रास्ते के किनारे-किनारे की मूर्त्तियाँ। एक-एक मूर्त्ति आँखों को जड़ीभूत करने वाली—देखते रहिये, देखते रहिये।

फिर, छुट्टियों के दिनों में और हर संध्या को यहाँ की रंग-रलियाँ। बगीचे में कई रेस्तोराँ हैं—रंगीन छतरियोंवाली, रंगीन कुर्सियोंवाली। पेरिस के नाज़नीन का अखाड़ा

जुटता है यहाँ—पीने पिलाने का अजीब समाँ। बगीचे में कबूतरों की भी भरमार। कितने बड़े और कैसे मस्त ये कबूतर—आदमी से जरा भी भय नहीं। क्यों डरें; सब इन्हें दुलारते हैं, चारे देते हैं; कोई छेड़खानी नहीं करता। इन कबूतरों से ही तो शायद यहाँ के लोगों ने सदा जोड़े-जोड़े ही विचरना सीखा है! दो कबूतर उस डाल पर—चोंच से चोंच मिलाये; दो कबूतर इस बेंच पर, अधर से अधर सटाये!

और, त्विलरी की सैर करते, यह लुव्र! लुव्र पर पेरिस को नाज़ है, होना ही चाहिये। इसका भवन, पेरिस का सबसे बड़ा और विस्तृत भवन है और इसके भीतर का कला-संग्रह संसार के सर्वोत्तम कला-संग्रहों में से है! तीन शताब्दियों से, जिनमें पेरिस ने कितने उत्थान और पतन देखे, इसकी वृद्धि और विकास ही होता रहा है। यों तो इसके जन्म काल को हम १५५० तक ले जा सकते हैं।

लुव्र में पहुँचते ही, इसकी विशालता और भव्यता में आप खो जायेंगे। कहाँ से शुरू करें, आप असमंजस में पड़ जायेंगे, और जिस ओर निकल गये, वहीं उलझ कर रह जायेंगे। लुव्र दिन और महीने नहीं, वर्ष खोजता है और हमारे ऐसे बहुधंधी को फुर्सत कहाँ कि कुछ घंटे से अधिक भी दे सकें किसी सुन्दरतम वस्तु या स्थान को!

लुव्र के कला-संग्रह के छः भाग हैं—१. ग्रीक और रोमन पुरातत्व २. पूर्वात्य पुरातत्व ३. मिश्री पुरातत्व ४. मध्यकालीन,

पुनरुत्थान और वर्तमान की मूर्ति-कला ५. चित्रकला ६. मध्यकालीन पुनरुत्थान और वर्तमान की कला।

लुव्र् के कला-संग्रह का प्रारम्भ फ्रांसिस प्रथम के समय से हुआ। डायना की मूर्त्ति और इस संग्रहालय के बारह सर्वोत्तम चित्र उस काल की देन हैं। राफेल के ४, लियोनार्डो द-विन्ची के तीन और टीशियन के एक चित्र इनमें प्रमुख हैं। लुई पन्द्रहवें के समय कोलबर्ट ने इसमें पाँच हजार चित्रों के इजाफे किये। लुई चौदहवें ने फ्लेमिश और डच चित्रों के संग्रह कराये। जब क्रान्ति हुई, तो उसकी विधानसभा ने १७९३ में एक प्रस्ताव द्वारा लुव्र् को राष्ट्रीय संग्रहालय के रूप में विकसित करने का निश्चय किया। १८४८ में यह संग्रहालय राजकीय सम्पत्ति के रूप में सीधे राज्य-प्रबंध में आ गया।

इच्छा हुई, हम जरा पूर्वीय पुरातत्व को ही देखते चलें। लुव्र का दावा है कि एशियाई देशों की वस्तुओं का ऐसा संग्रह संसार में कहीं नहीं है। सीरिया, मेसोपोटामिया, ईरान, अरब आदि देशों की अमूल्य कला-निधियां वहाँ पड़ी हुई हैं। जब हम उसके अन्दर घुसे तो तीन घंटे तक घूमते ही रहे, किन्तु कहीं ओर-छोर नहीं पाया।

फिर हम रंगों की दुनिया में आये। हर देश के चित्रों को अलग-अलग समय के अनुसार विभाजन करके सजाया गया है। किस-किस की चर्चा की जाय, कहाँ तक चर्चा की जाय! डायरी में कहाँ तक क्या लिखा जा सकता है?

लुभ्र का, यों कहिये, संसार का सबसे प्रसिद्ध चित्र मोना-लिसा के सामने आकर बहुत देर तक निहारते रहे। लियो-नार्दो द विंची की कूची की चरम सार्थकता यहाँ प्रतिफलित हुई है। जिस मुस्कान का रहस्य अब तक नहीं मालूम हो सका, उसकी तह तक हम कहाँ तक जा पाते!

देखा, एक अधवयस स्त्री उस मूर्त्ति की प्रतिलिपि तैयार कर रही हैं। बेचारी महीनों से इस काम में लगी है। प्रति-लिपि अच्छी उतर पाई है—किन्तु, वह पुरानी बात कहाँ?

इटली, फ्रांस, हालैंड, स्पेन आदि के पुस्तकों के चित्र देखते, उन्हें सर नवाते, हम बाहर आकर कुछ देर चबूतरे पर बैठे रहे। बार-बार महारथी की याद आती थी। उसे आना था, देखना था!

मेरी बगल में ही एक सज्जन बैठे थे। उनसे बातें हुईं, तो पता चला, वह ईरान से आये हैं। उनका पासपोर्ट देखा, वह फारसी-लिपि में था, हाँ उसके नीचे छोटे-छोटे रोमन अक्षरों में भी लिखा हुआ था। क्या हमारी सरकार पासपोर्ट पर हिन्दी का व्यवहार नहीं कर सकती? शोर तो बहुत है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा मान ली गई, किन्तु काम यदि उतने ही जोर से हो पाता!

शाम को ८ बजे से कांग्रेस के साहित्य-विभाग के जल्से का प्रारम्भ था। एक संगीत-भवन में इसकी कार्रवाई शुरू हुई।

सुसज्जित भवन । मंच पर सभापति के अतिरिक्त छः सज्जन और एक महिला । सबके भाषण हुए । भाषण अधिकतर फ्रेंच में ही । जिन्होंने अंगरेजी में भाषण किये, उसका अनुवाद फ्रेंच में किया गया । अधिक दर्शक और श्रोता फ्रेंच थे, अतः यह व्यवस्था स्वाभाविक थी । उनके भाषण का सारांश आज की डायरी में देना सम्भव नहीं, वह कल । हाँ, फ्रेंच लेखक ग्वेहेन्नो के भाषण का तौर-तरीका लिखे बिना सोने का उपक्रम करना कठिन है ।

ग्वेहेन्नो इस तरह बोल रहे थे कि यदि अपने देश में उस तरह बोला जाय, तो मजाक ही समझें । वह बैठ कर बोल रहे थे, किन्तु रह-रह कर उठ जाते, कभी इधर झुकते, कभी उधर झुकते, हाथ उछालते, मुँह बनाते । उनके सिर के बाल कभी इधर लटक जाते, कभी उधर लटक जाते । कभी धीमे से, कभी जोर से, बीच-बीच में कभी बहुत देर तक चुप ! ऐसा लगता कि नाटक में कोई पार्ट कर रहा है ! किन्तु श्रोता मुग्ध थे, उन्हें बार-बार तालियाँ मिल रही थीं ।

साढ़े बारह बजे तक सभा चलती रही ; यह दो बजे तक डायरी लिख रहा हूँ । अजीब जिन्दगी है, मेरी ! मौज और मेहनत का कैसा समिश्रण है !

८

कलाकारों से :: पैंथियन में

१७-५-५२
पेरिस

कल हमारी काँग्रेस के उद्घाटन-समारोह के अवसर पर जो भाषण हुए, उन्हें एक वाक्य में यों रखा जा सकता है—कलाकारों, करो या मरो !

तानाशाही का जो राक्षस पश्चिमी सभ्यता को—उसकी कला, विज्ञान और साहित्य को—असने पर तुला हुआ है, उससे रक्षा किस तरह हो और इस रक्षा में कवियों, कलाकारों, चिंतकों और साहित्यिकों का क्या हिस्सा होना चाहिये, सभी भाषणों का मूल तत्त्व यही था ।

भाषण का विषय था—लेखक और वातावरण !

सांस्कृतिक स्वाधीनता काँग्रेस के प्रधानमंत्री श्री निकोलस नबोकोव ने जलसे का उद्घाटन करते हुए देश-देश से आये साहित्यकारों और कलाकारों का स्वागत किया। मई महीने में पेरिस ऐसे सांस्कृतिक नगर में ऐसा जल्सा हो, यह सर्वथा ही उपयुक्त हुआ है, क्योंकि सांस्कृतिक स्वाधीनता के योग्य वातावरण भी तो चाहिये ।

सातबादर द माद्रिगा ने अपने सभापति-पद से दिये गये भाषण में घोषित किया कि वैज्ञानिक, कवि और संत सदा से सत्य, सुन्दर और शिव से ही अनुशासित और अनुप्राणित होते रहे हैं। कला-कृति आप अपने ही में सार्थक होती है और उसकी महत्ता उसके रचयिता की आत्मा की महत्ता पर निर्भर करती है। अपने आवास-स्थान के वातावरण में पलते हुये भी उसका निर्माण-कार्य तो कल्पना-लोक में ही चलता है। एक कलाकार और नागरिक की हैसियत से उसका कर्त्तव्य होता है कि वह उस वातावरण के प्रति सजग रहे, उसकी स्वतंत्रता और स्वाधीनता के लिए लड़े और मरे।

दक्षिणी अमेरिका के उदारदली 'एल टेम्पो' के सम्पादक मि० सैन्टोस ने प्रतिनिधियों का ध्यान स्पेन और लैटिन अमेरिका के उन लेखकों के भाग्य की ओर आकृष्ट किया जो बेचारे आज मौन रहने को बाध्य कर दिये गये हैं। उन्होंने बताया कि जहाँ की स्वतंत्रता खतरे में हो, उस नगर के लेखकों को दर्शक नहीं बनकर रहना है, उसे स्वाधीनता और न्याय के लिए लड़ना है।

फ्राँसीसी लेखक विहेल्नो ने कहा, लेखक का यथार्थ मूल्य इससे प्रगट होता है कि सचाई के प्रति उसका क्या रुख है और अपनी बात को वह कितनी ईमानदारी से रखता है। यह तभी सम्भव है जब वह ऐसे वातावरण में हो जहाँ स्वाधीनता का झँडा ऊँचे लहराता हो। उन्होंने रूस की जनता

के प्रति सद्भावना प्रगट की और आशा की कि एक दिन वे लोग भी स्वतंत्रता और शान्ति की छाया में हम से गले-गले मिलेंगे !

अंगरेज कवि स्पेन्डर ने उन्नसवीं सदी के उन अंगरेज और फ्रांसीसी लेखकों और कवियों की तुलना की जिन्होंने औद्योगिक सभ्यता की कुरूपता और कठोरता का चित्र प्रस्तुत करते हुए उससे मानवता की मुक्ति दिलाने के यत्न में अपनी हविषा डाली थी।

रोजर कायला फ्रांस के सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री हैं। उन्होंने इस बात पर खेद प्रगट किया कि पिछले पचास वर्ष में लेखक और कलाकार कल्पना-लोक में ही विचरते रहे और मानव पर ध्यान नहीं दिया। किसी ने ध्यान भी दिया, तो वह आध्यात्मिक तत्वों में ही उलझा रहा। पियरो प्योवेने, इटालियन लेखक ने इस पर जोर दिया कि राज्य, पार्टी या धर्म के जूए के अन्दर जुता हुआ कलाकार उच्चकोटि की कला दे नहीं सकता। लेखक का कर्त्तव्य है शाश्वत सत्य को प्रगट करना और मानवी समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना।

स्वीजरलैंड के सुप्रसिद्ध लेखक डेनिस रूजमों ने बड़े ही प्रभावशाली शब्दों में कहा—आज संसार दो टुकड़ों में बँटा है। एक में लेखक और कलाकार को अपने विचारों

और भावनाओं को प्रगट करने की स्वाधीनता प्राप्त है और दूसरे में उसके मुँह पर ताला और हाथों में जंजीर हैं। हमें इस स्थिति को कभी नहीं भूलना चाहिये। सामाजिक और आर्थिक ढाँचे के अन्दर लेखक स्वाधीनता का एक अनुपम उपादान है। हर हालत में उसे अपने वातावरण के उन तत्वों के प्रति विद्रोह की आवाज़ उठाना है जो उसकी आवाज़ को रोकना चाहते हैं, नहीं तो एक दिन वह पायगा कि चुप रहने का अधिकार भी वह खो चुका है !

इन भाषणों में जो गम्भीरता थी, उसने मुझे बहुत ही प्रभावित किया। साथ ही बार-बार मेरा ध्यान हिन्दी के अपने उन लेखकों और कवियों की ओर जाता रहा, जो कभी प्रगतिशीलता के नाम पर, तो कभी शान्ति के नाम पर उनलोगों के मकड़जाले में फँसते रहे जो प्रगति और शान्ति दोनो के पथ पर काँटे बिछा रहे हैं।

आज सवेरे, जलपान करने के बाद, पैंथियन देखने गया था। जब वहाँ से लौट रहा था, मन भावनाओं से अभिभूत था !

यह विशाल चर्च ! यह पेरिस के सुप्रसिद्ध संत जेनविये‌व की समाधि पर बनाया गया था। यह इतना विशाल और ऊँचा है कि पृथ्वी की गति जानने के लिए एक लट्टू लटका कर जो प्रदर्शन किया गया था, वह इसी में। बहुत दिनों तक यह गिरजाघर धार्मिक लोगों का तीर्थ रहा; किन्तु जब फ्रांस की

क्रान्ति हुई, क्रान्तिकारी सरकार ने तय किया कि फ्रांस के प्रसिद्ध व्यक्तियों की लाशें इसी के नीचे दफनाई जायँ। ऊपर वह मन्दिर है, नीचे तहखाने में समाधियाँ हैं।

मन्दिर के भीतर पहुँचकर चारो ओर चित्रित सुन्दर चित्रों और सुप्रसिद्ध निर्माताओं द्वारा प्रस्तुत मूर्त्तियों को हम देख रहे थे कि घंटी बजी। मालूम हुआ, अब नीचे का तहखाना खुलेगा। हमलोग उसके पीछे हो लिये। तहखाना खुला, हम नीचे पहुँचे। शान्त, शीतल और स्वच्छ स्थान। धीमी रोशनी। सबसे पहले रूसो की समाधि मिली। रूसो का जन्म स्वीजरलैंड में हुआ था, किन्तु, अपनी सरकार की प्रताड़ना से भाग कर वह पेरिस पहुँचा और जिन्दगी-भर विद्रोह का ही प्रचार करता रहा। रूसो की समाधि के बाद ही वाल्तेयर की समाधि—समाधि के ऊपर एक सुन्दर मूर्त्ति थी, जिसके हाथ में पुस्तक है। अपनी लेखनी के जादू से थर्रा देनेवाला यह अनुपम साहित्यिक। ह्यूगो और जोला की समाधियाँ आमने-सामने है। इन समाधियों की बस्ती में जीन जोरे की समाधि भी देखी—जोरे फ्रांस का सुप्रसिद्ध समाजवादी था, युद्ध का विरोधी था, जब १९१४ में जर्मन-युद्ध शुरू हुआ, पेरिस की एक सड़क पर उसकी खुलेआम हत्या कर दी गई!

बार-बार सोचता, काश, हमारे देश में चित्रकों, लेखकों और कलाकारों की ऐसी पूजा हो पाती!

तहखाने से निकल कर बाहर आये और दीवारों की तस्वीरें देखने लगा। जोन द आर्क की वे चार प्रसिद्ध तस्वीरें यहीं चित्रित हैं, जिनकी प्रतिलिपियाँ हम प्रायः पुस्तकों में पाते हैं। बड़ी-बड़ी तस्वीरें हैं, पूरी दीवाल घेरती हैं। १८८९ में लेने पेन्यू नामक चित्रकार ने इन्हें चित्रित किया था।

एक तस्वीर में जोन ग्रामीण लड़की के रूप में भेड़ें चरा रही है कि उसके नजदीक देवदूत आता है और देश को आज़ाद करने के लिए उसे एक तलवार देता है। दूसरे चित्र में वह घोड़े पर चढ़ी, तलवार लिये, युद्धभूमि में लड़ रही है! तीसरे चित्र में वह फ्रांस के राजा का अभिषेक करा रही और उसके सिर पर अपने हाथों मुकुट पहना रही और चौथे में वह एक खम्भे में बाँधी जाकर जिन्दा जलाई जा रही है!

तस्वीरें बोलती-सी लगती हैं और ऐसा लगता है, अभी-अभी चित्रकार इन्हें बना कर बाहर गया है!

भवन के बीच में कन्वेन्शन की मूर्त्तियाँ हैं—बड़ी प्रभा-वशाली। बीच में स्वतंत्रता की देवी है, दोनों तरफ क्रान्तिकारियों की जमघट। जो कभी देवता का घर था, क्रान्ति ने उसे स्वाधीनता का मन्दिर बना दिया।

दीवालों पर धार्मिक चित्रों की भी कमी नहीं है—खासकर वैसे चित्रों की जिनमें धर्म-पुरुषों द्वारा किये गये बलिदानों

का चित्रण है। एक चित्र में सिर काट लिये जाने पर भ
एक संत का धड़ खड़ा है—रोमांच हो आया, उसे देख कर।

पैंथियन की बगल में ही कालेज द फ्रांस है। लड़के लड़कियों का कलरव व्याप्त था। यह कालेज १५३० में स्थापित हुआ, चार सौ वर्षों का पुराना। इसके पुस्तकालय में सात लाख पुस्तकें, चार हज़ार हस्तलिखित पुस्तकें और तीस हज़ार तस्वीरें हैं।

हम लाइब्रेरी में भी गये। छः सौ आदमी एक ही समय अलग-अलग बैठ कर अध्ययन-मनन कर सकें, इसका बड़ा ही सुन्दर प्रबंध है। पेरिस पर जो किताब लिख रहा हूँ, उसके सम्बन्ध की चीज़ों की मैंने खोज-ढूँढ़ की।

फ्रेंच नहीं जानने के कारण हर जगह कठिनाई होती है—किसी तरह अंग्रेज़ी से या इशारे से काम चला लिया जाता है।

शाम को सीन का किनारा पकड़ कर टहलने गया। शाइलो-भवन में आधुनिक कला संग्रहालय की झाँकी अलग से ही ली। बड़ी सुन्दर मूर्त्तियाँ आँगनाई में थीं। फिर इफेल टावर के उधर मंगल-भूमि की ओर गया। जहाँ पहले परेड होता था, वहाँ अब भावुक कवि एकान्त चिन्तन के लिए पधारा करते हैं! लौट कर शाइलो की फुलवाड़ी को देखते वहाँ आये, जहाँ मार्शल फोश की शानदार मूर्त्ति है। फिर घोंसले में!

६

कौमेदिए फ्रांसिस

१८/५/५२
पेरिस

बड़ी इच्छा थी कि उस रंगमंच को देखूँ, जहाँ फ्रांस का—शायद संसार का—सबसे बड़ा हास्य-अभिनेता मौलियें अपने नाटकों को दिखाया करता था। मौलियें के नाटकों का अनुवाद श्री जे० पी० श्रीवास्तव ने किया था और बचपन के वे दिन याद थे, जब मैं उन्हें पढ़ कर लोट-पोट हो जाता था।

मोलियें साधारण परिवार का व्यक्ति था; अपनी अभिनय-कला-सम्बन्धी धुन के कारण उसे कष्ट भी कम नहीं उठाना पड़ा था। किन्तु, अन्त में उसकी कला की विजय हुई। फ्रांस का सम्राट चौदहवाँ लुई उसपर मुग्ध हुआ। वह अब राजमहल के रंगमंच पर ही अपनी अभिनय-कला का प्रदर्शन करने लगा। किस तरह सम्राट ने उसे अपने हाथ से परोस कर रसोई खिलाई थी, वह कहानी भी दिमाग में चक्कर काटा करती थी! और, अन्त में, बीमारी की हालत में भी नाटक खेलते-खेलते ही रंगमंच पर ही उसका मूर्छित हो जाना और चल

वसना—एक बार भाई मेहरअली, जब वह पेरिस से लौटे थे, इस कथा को कहते-कहते, कैसे भाव-मुग्ध हो गये थे !

वह रंगमंच अब कोमेदिए फ्रांसिस कहलाता है। वह पैलेस रॉयल के एक भाग में अवस्थित है ! सुरंग गाड़ी—मेट्रो का सूत्र पकड़ कर वहाँ पहुँचा। किन्तु, वहाँ पहुँच कर जैसे चकाचौंध लग गई। जिधर देखिये, महल ही महल। एक महल पर समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व के क्रान्तिसूत्र अंकित थे। वहाँ पहुँचा, तो पता लगा, यह तो लुव का ही एक भाग है। कितना बड़ा है संग्रहालय !

वहीं एक वृद्ध सज्जन से भेंट हुई। उन्होंने बताया कि इस भवन के मुख्य द्वार के ऊपरी हिस्से में जो मूर्त्तियाँ हैं—अब वे धुँधली पड़ गई हैं—वे लियोनार्दो द विन्ची की बनाई हुई हैं। उन्होंने यह भी बताया कि अपने अन्तिम दिनों में द विन्ची पेरिस में ही रहता था और उसकी समाधि भी पेरिस में ही है। मोनालिसा के इस चित्रकार की समाधि पर सिर झुकाने के लिए जी मचल उठा, किन्तु, इस समय तो मोलियेर की खोज थी। उन्हीं से पैलेस-रायल का रास्ता पूछ कर ढूँढ़ते-ढाँढ़ते वहाँ पहुँचा।

पैलेस रॉयल—अब उसकी पुरानी शान कहाँ। घर उदास, बगीचा उजाड़। कई सरकारी दफ्तर—कुछ दुकानें। किन्तु सब बन्द। आज रविवार है न ?

किन्तु, यह रविवार ही हमारे लिए वरदान बन गया। आज कोमेदिए फ्रांसिस में मैटिनी शो होने वाला है, यह वहाँ लगी भीड़ को देख कर मालूम हुआ। समूचे महल में इस रंगमंच के ही इर्द-गिर्द चहल-पहल। यदि वहाँ यह रंगमंच नहीं होता और उस रंगमंच से मौलियर का सम्बन्ध नहीं होता, तो आज रॉयल पैलेस का शायद कोई नाम-लेवा भी नहीं मिलता! कलाकारों का सम्मान कर राजभवन अपने को सम्मानित करता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे सामने था।

चार-चार सौ फ्रांक के तीन टिकट खरीद कर शिवाजी और शीला के साथ, नाट्यभवन में दाखिल हुआ। भवन के दरवाजे पर ही मौलियेर, ह्यूगो, रैसिन और कौर्नेलि के बस्ट की सुन्दर मूर्त्तियाँ थीं। ज्यों ही भीतर घुसे एक ओर 'कोमेडी' और एक ओर 'ट्रेजडी' की मनोरम मूर्त्तियाँ देखीं— दो देवियाँ, एक करुणा की मूर्त्ति, एक हास्य की देवी। और सामने वह तालमा की मूर्त्ति, जो इस रंगमंच का शृंगार रहा और जिसे फ्रांसीसी अपने देश का सर्वश्रेष्ठ अभिनेता मानते हैं।

भीतर पहुँचते ही उसके चाक-चिक्य से चकित हो जाना पड़ा। यह रंगमंच लगभग तीन सौ वर्षों का पुराना है। प्राचीनता की सारी शान की रक्षा करते हुए भी नवीन युग के सभी साधन यहाँ प्रस्तुत हैं। फर्श पर हर जगह मखमल। चार मंजिल का रंगमंच। सभी सीटें मखमली गद्देवाली। बिजली की बत्तियाँ ऐसी लगती थीं कि मोमबत्तियाँ जल रही हों।

नीचे से जब हम ऊपर पहुँचे, वहाँ लड़कियाँ खड़ी थीं। एक ने हमारी टिकटें देखीं और हमें ले जाकर उन नम्बरों की सीटों पर बिठा आई। इन लड़कियों को इस सेवा के लिए दर्शकों की ओर से पैसे दिये जाते हैं। कोई जबर्दस्ती नहीं है, किन्तु रिवाज़ यही है।

आज सोफोकल की एक ट्रेजडी खेली जा रही थी। क्या कहने हैं? एक-एक कर तीन पर्दे हटे। एक-एक पर्दा हट रहा था, भीतर से रोशनी तेज़ हो रही थी और संगीत का स्वर भी ऊँचा हो रहा था। फिर संगीत के एक झमाके के साथ पर्दा हटा और लो यह दृश्य! मालूम हुआ, हम किसी प्राचीनकाल की स्वप्न-पुरी में पहुँच गये। एक ओर दूर तक जाती हुई पत्थर की दीवारें। सामने आँगन। आँगन में एक स्तम्भ! स्तम्भ के पीछे पहाड़ी दृश्य—दूर पर दो पेड़ों के प्रतीक। एक ओर राजभवन, एक ओर राजपथ। राज-पथ से राजभवन के द्वार तक सीढ़ियाँ; उन सीढ़ियों पर झुकी हुई मानव-मूर्त्तियाँ। रोशनी धीरे-धीरे तेज ही होती जा रही है और ज्यों-ज्यों उजाला फैल रहा है, त्यों-त्यों मानव-मूर्त्तियाँ स्पष्टतर होती जा रही हैं। अधिकांश स्त्रियाँ, थोड़े मर्द। सबकी रोमन साज-सज्जा। औरतें सुकुमारता की मूर्त्तियाँ, मर्द शौर्य के प्रतीक। सब के कंठ से स्वर-लहरी फूटी और लीजिये, राजभवन से राजा बाहर आये!

फिर नाटक शुरू हुआ। भाषा फ्रेंच, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। किन्तु, अभिनय ऐसा कि भाषा का अज्ञान

भूल जाता था। अपलक दृष्टि से दो घंटों तक देखता रहा। अंग्रेजी नाटक देखे थे, उन में बल था, किन्तु ऐसी सुकुमारता वहाँ कहाँ? अन्त में राजा अपनी आँखें पश्चाताप में आप ही फोड़ कर मंच पर जब आता है और एक छड़ी के सहारे टो-टो कर सीढ़ियों से नीचे उतरने लगता है, उस समय किस दर्शक की आँखें तर नहीं हो गई। स्ट्रैटफोर्ड औन एवन में रिचार्ड का पश्चाताप भी देखा था, किन्तु यहाँ के अभिनय में जैसी कोमलता और सुकुमारता पाई, कहीं दूसरी जगह आज तक देखने में नहीं आई थी। पेरिस अभिनय-कला में सानी नहीं रखती, इसमें तो सन्देह ही नहीं।

फिर एक छोटी-सी कौमेडी खेली गई। अजीब पोशाकें, अजीब चेहरे। रह-रह कर हँसी के फव्वारे छूट रहे थे। उसी हँसी-खुशी में हम रंगमंच से बाहर आये!

इसी भवन में एक छोटा-सा संग्रहालय भी है। बस्ट की गैलरी में मोलियेर, वाल्तेयर, जौर्ज सैंड, विक्तर ह्यूगो, दूमा आदि की मूर्त्तियाँ हैं। बैठे हुए वाल्तेयर की मूर्त्ति बड़ी ही सुन्दर है। कलाकारों द्वारा मोलियेर को ताज पहनाया जा रहा है। आदम और ईव द्वारा मानवता का प्रथम नाटक अभिनीत करने का दृश्य भी सुन्दर है। यहाँ एक पुस्तकालय भी है, जहाँ नाटक-साहित्य के अमूल्य ग्रन्थों और हस्तलिपियों का सुन्दर संग्रह है। इसी संग्रहालय में वह आराम-कुर्सी है जिस पर

बैठ कर मोलियेर ने अपना अन्तिम नाटक खेला था, मूर्च्छित हुआ था और अन्ततः चल बसा था !

शाम को इनवैलिड (नेपोलियन का समाधि-मन्दिर के निकट) की ओर गया, जहाँ एक कार्निवल-मेला लग रहा है। एक तो कार्निवल, फिर पेरिस का रंगीन वातावरण। चारों ओर हँसी-ठहाके, उछलकूद की भरमार ! तरह-तरह के खेल, तरह-तरह की घिरनियाँ, तरह-तरह के झूले, तरह-तरह की भूल-भुलैया ! युवक-युवतियाँ आनन्द मना रहे—सटते, हटते, धक्का देते, लिपटते, वे निर्द्वन्द्व मौज मना रहे थे। हमारे देश के बड़े-बूढ़े देखें, तो किस तरह नाक-भौं सिकोड़ने लगेंगे !

अजीब प्रोग्राम है मेरा। कभी एक-दो बजे रात के पहले सोता नहीं। भोर में ८-९ बजे उठता हूँ। नहा-धोकर कभी म्यूजियम में, कभी किसी दर्शनीय स्थान में जाता हूँ, तो प्रायः बाहर ही भोजन करना पड़ता है। शाम को निकलता हूँ, तो बारह बजे के पहले लौटने का कहाँ ठिकाना ? फिर डायरी लिखना, पेरिस सम्बन्धी पुस्तक लिखना, उसके लिए पढ़ना, फिर कल के लिए कार्यक्रम बनाना, उसके सम्बन्ध में पहले से ही पढ़ लेना, नोट कर लेना—यह तो पेरिस का वातावरण है कि इतना काम हो जाता है। अभी दो बजे सोने जा रहा हूँ !

१०

नई कला: सांस्कृतिक स्वाधीनता

२९/५/५२
पेरिस

आज जब एक काम से कांग्रेस के आफिस में गया, वहाँ 'वायस आफ अमेरिका'—अमेरिकन रेडियो का एक प्रतिनिधि मिला और उसके आग्रह पर मैं हिन्दी में एक संलाप देने को तैयार हो गया। यों तो कम्यूनिस्टों ने अमेरिका के खिलाफ अजीब वातावरण बना रखा है, वह पूँजीवाद का प्रतीक है, जो उससे सम्पर्क रखे, वह ज़रूर डालर का ग़ुलाम है, आदि आदि। किन्तु, मैं उनके प्रचार से डर जाऊँ, यह हीन-भावना मुझमें नहीं है। जिसने अँगरेजों की गुलामी नहीं बर्दाश्त की, वह अमेरिकनों का ग़ुलाम बन सकेगा? हाँ, जो स्वयं दूसरे के ग़ुलाम हैं, यदि वे सभी को अपनी ही कोटि में रखना चाहें, तो आश्चर्य क्या?

वहाँ से हम आधुनिक चित्रकला और मूर्त्तिकला की प्रदर्शनी देखने चले। यह शाइलो भवन में स्थित आधुनिक चित्रकला-संग्रहालय के ही एक भाग में सजाई गई है। इसमें

यूरोप और अमेरिका के प्रसिद्ध संग्रहालयों से चुन कर तथा कलाकारों से प्राप्त कर डेढ़ सौ ऐसी तस्वीरें और मूर्तियाँ रखी गई हैं जो बीसवीं सदी की कला का सही प्रतिनिधित्व कर सकें। और, यह बीसवीं सदी की कला कहाँ भागी जा रही है, इसकी सूचना तभी मिल गई, जब हमने उस प्रदर्शनी के सामने काठ की वह मूर्त्ति देखी, जिसमें ईसा की सलीबी को मूर्त करने की कोशिश की गई है! कंकाल-सा शरीर, चेहरे पर एक अजीब कुरूपता! सारी मूर्ति ईसा के व्यंग्य चित्र-सी लग रही थी! किन्तु लोग कहते हैं, हमें मानना पड़ेगा, यह भी एक कला है और शायद भविष्य की कला यही है।

परिमाण और संख्या के हिसाब से यह निस्सन्देह एक छोटी-सी कला-प्रदर्शनी है, किन्तु यदि विशेषता और गुण को देखा जाय, तो निस्सन्देह ही इसे एक उच्चकोटि की प्रदर्शनी कहा जायगा। कुल मिला कर १५६ चीजें प्रदर्शित की गई हैं, जिनमें १४४ चित्र हैं और १२ मूर्तियाँ। संसार के ६६ उत्कृष्ट कलाकारों की ये कृतियाँ हैं जिनमें चित्रकारों की संख्या ५४ है। पिकासो के चित्रों की संख्या सब से बड़ी है—आठ; उनके बाद जुआन ग्रिस के छः; पौल क्ली, जोर्जेस ब्रैक तथा हेनरी रूसो के पाँच-पाँच और फर्नान्द लेगर, कासीमीर मालेविच, जोन मीरो और पीयत मोंद्रियाँ के चार-चार चित्र हैं। १२ मूर्त्तियाँ १२ मूर्तिकारों के हैं—एक-एक उत्कृष्ट कृति!

ये कला-कृतियाँ यूरोप और अमेरिका के ३० कला-संग्रहालयों से तथा बहुत से कलाप्रेमियों और कलाकारों से संग्रहीत किये गये हैं।

प्रदर्शनी को बड़े ही कलात्मक ढंग से सजाया गया था। चित्रों और मूर्त्तियों को इस सिलसिले से रखा गया था कि ऊब नहीं आये और अन्त तक उत्सुकता और रुचि बनी रही। कितने ही चित्र और मूर्त्ति ऐसे थे कि जिनके भावों या आकृतियों को समझना कठिन था। कहीं रेखायें ही रेखायें, कहीं वृत्त ही वृत्त। रेखाओं में भी कहीं आड़ी-आड़ी, कहीं तिरछी-तिरछी। वृत्तों में भी इसी तरह की विभिन्नता। कहीं-कहीं ऐसा लगता था, सारे कागज पर रंगों के छींटे डाल दिये गये हैं, शायद किसी बच्चे के द्वारा! किन्तु, इन सब के बावजूद ऐसा जरूर लगता था कि कहीं इसमें सत्य जरूर छिपा है, कोई रहस्य है जो अपने को प्रगट करना चाहता है किन्तु कर नहीं पाता! यही नहीं, उन रेखाओं, वृत्तों और रंगों के सम्मिश्रण से एक विचित्र ढंग के सौन्दर्य की भी सृष्टि होती थी, जिससे अपरिचित होने के कारण आँखें ग्रहण करने में सक्षम नहीं थीं, किन्तु तो भी वह मन को भाता था लुभाता था! मूर्त्तियों की भी यही हालत। संगमरमर, साधारण पत्थर, लकड़ी, ताँबा, लोहा, टिन—इन सब से ऐसे आकारों की सृष्टि की गई थी जिन्हें हम बाह्य-जगत में पाते तो नहीं हैं, किन्तु, हमारे अन्तर्जगत में ऐसे आकार प्रायः ही बनते-बिगड़ते रहते हैं, इस बात की याद ये आकार दिलाते थे!

देश-देश के प्रतिनिधि, पुरुष, महिलायें, सब देख रहे थे, अपनी-अपनी रुचियों के अनुसार सराहते या मुँह बनाते थे, मैं भी भार-विभोर घूम रहा था, देख रहा था। जहाँ भीड़ देखता, वहाँ आँखें फाड़-फाड़ कर देखने की कोशिश करता। किन्तु यह तो कहना ही पड़ेगा, इस नई कला के समझने के लिए आँखों को बहुत दिनों तक अभ्यस्त होना पड़ेगा !

प्रदर्शनी से लौटने के बाद आज कहीं बाहर नहीं निकला। अपने होटल—फ्रैंकलिन दि रूजवेल्ट—में ही जम कर वायस आफ अमेरिका के लिए स्क्रिप्ट तैयार करता रहा ! स्क्रिप्ट तैयार होने पर श्री स्प्रैट को पढ़ कर सुनाया। स्प्रैट थोड़ी हिन्दी सीख गये हैं, उन्होंने उसे पसंद किया। अपने संलाप में मैंने इस कला-समारोह का महत्व बतलाया, एशिया में तानाशाही के एजेंटों द्वारा जो सरगर्मी दिखलाई जा रही है उसकी ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और अन्त में इस बात पर जोर दिया कि सांस्कृतिक स्वाधीनता के लिए यह आवश्यक है कि एक ऐसा समाज बने जहाँ सभी सुखी और सम्पन्न हों ; देश, वर्ण के भेदभाव को भूल कर मानव मात्र एक दूसरे को भाई-भाई समझें। अन्त में मैंने कवि रवीन्द्र की सुप्रसिद्ध कविता का हिन्दी रूपान्तर दे दिया, जिसमें उन्होंने बड़े ही अच्छे ढंग से इस ओर संकेत किया है—

जहाँ स्वतंत्र विचार न बदलें मन में मुख में,
जहाँ न बाधक बनें सबल निबलों के सुख में।

सब को जहाँ समान निजोन्नति का अवसर हो,
शान्तिदायिनी निशा हर्ष सूचक वासर हो।
इस भाँति सुशासित हो जहाँ,
समता के सुखकर नियम,
बस उसी स्वतंत्र स्वदेश में, जागें हे जगदीश हम।

श्री स्प्रैट से राजनीतिक बातें भी हुईं। वह राय के साथ थे और पटना के समादर की भी चर्चा करते थे। जयप्रकाशजी के बारे में भी बहुत बातें कीं। जयप्रकाशजी की व्यक्तित्व की बड़ी प्रशंसा करते थे, किन्तु उनकी शिकायत थी कि जयप्रकाश में अनुशासन की कड़ाई नहीं है। वह स्वयं कुछ बोलते हैं, लोहिया और अशोक कुछ और। मैंने निवेदन किया, जब हम जनतंत्र में विश्वास करते हैं, तो पार्टी में तानाशाही क्या उचित होगी? और यदि पार्टी में तानाशाही हुई, तो फिर राजनीति में, शासन में तानाशाही को कौन रोक सकेगा?

स्प्रैट जैसे एक भूत को जगा कर चले गये। अपनी पार्टी के बारे में बहुत देर तक सोचता रहा। पुरानी बातें याद आने लगीं! किस उत्साह से हमने इसको जन्म दिया था, इन बीस-बाईस वर्षों के अन्दर क्या-क्या घटनायें हुईं। पुराने लोगों ने हमें छोड़ा, नये लोग आये! भाई मेहरअली की याद तो इधर बार-बार आती है। वही एक थे, जो पार्टी के लिए एक सांस्कृतिक मोर्चा कायम करने के बारे में गम्भीरता से सोचते

थे। एक बार उन्होंने लिखा था, तुम इस बारे में आगे आओ। नई संस्कृति संघ की स्थापना हुई ; किन्तु, वह जहाँ का तहाँ रह गया। यह सांस्कृतिक स्वाधीनता कांग्रेस—क्या इससे हमारा काम चल सकेगा ?

सोचा था, आज सवेरे सो जाऊँगा, क्योंकि आठ बजे ही इस भाषण को रेकार्ड कराना है। किन्तु घड़ी देखता हूँ, पाँच बज रहा है—अब सोओ, बेनीपुरी !

११

संगीत की मधुर धारा

२०-५-५२
पेरिस

आज का भोर का समय 'वायस आफ अमेरिका' में अपने संलाप को रेकर्ड कराने में ही बीत गया। ठीक आठ बजे उसका एक प्रतिनिधि आया और हमें अपने स्टूडियो में ले गया। पेरिस में इसका अपना स्टूडियो है। स्टूडियो में रेकर्ड कराकर उन्हें अमेरिका भेज दिये जाते हैं ; वहाँ से वे प्रसारित किये जाते हैं।

कल तय हुआ था, मैं अपना संलाप हिन्दी में तैयार करूँगा, सुब्रह्मण्यम् अंगरेजी में। एक बातचीत होगी, जिसमें सर मसानी, स्वैट और देशपाँडे सम्मिलित होंगे। आज मेरे और सुब्रह्मण्यम् के संलापों को रेकर्ड किया गया।

जब मैं बोल रहा था, उसका प्रतिनिधि बड़ी उत्सुकता से मेरा मुँह देख रहा था। वह हिन्दी नहीं जानता था। किन्तु ज्यों ही मैंने खत्म किया, वह मेरी भाषा की मधुरता और प्रवाह की तारीफ करने लगा। वह नहीं जानता था कि हिन्दी भाषा

इतनी मीठी और जोरदार है। रेडियो से मेरा पुराना सम्बन्ध रहा है, अतः मैं उसकी कला का कुछ ज्ञान रखता हूँ। भारत में भी मेरी भाषा और भाषण-कला की प्रशंसा रेडियोवाले करते थे। किन्तु आज जो प्रशंसा हुई, वह मेरी नहीं, हिन्दी-भाषा की हुई, अतः मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। देशपाँडे ने भी बड़ी तारीफ की! मैंने जब अपना स्क्रिप्ट उस प्रतिनिधि को दिया, तो मेरी सुन्दर हस्तलिपि से वह और भी मुग्ध हुआ!

शाम में काँग्रेस के प्रतिनिधियों का एक जुटाव हुआ, जिसमें कल की कान्फ्रेंस के बारे में कार्यक्रम तय किया गया। यहीं स्पेन्डर ने ऑडन और मेकनीस से परिचय कराया। ये तीनों अंगरेजी की नई कविता के आचार्य माने जाते हैं। स्पेन्डर स्वभाव से जितने ही लजीले लगे, ऑडन उतने ही फक्कड़। यों मिले, जैसे बहुत पुराने साथी हों और ऐसा प्रस्ताव किया, कि क्यों नहीं, अंगरेजी-भाषी प्रतिनिधियों का एक अलग जुटाव एक दिन चाय पर हो। ऑडन जैसे बेतकल्लुफ; ठीक उसके विपरीत लुइ मेकनीस, कायदे के पाबन्द। चुस्त पोशाक, सँवारा चेहरा, अपनी प्रतिभा के स्वयं कायल। मेकनीस आयरिश हैं, उनके स्वभाव में भी आइरिशपना! मैंने उनके 'डार्क टावर' की चर्चा चलाई, उन्होंने कहा, वह तो पढ़ने की नहीं, सुनने की चीज है। यह रेडियो-नाटकों का संग्रह है! यहीं स्पेन्डर की बीबी से परिचय हुआ, बड़ी ही नेक और खूबसूरत—कवि को ऐसी ही पत्नी चाहिये!

शाम को आपेरा हाउस की तरफ निकल गया। कहा जाता है, इतना बड़ा रंगमंच यूरोप में नहीं है। इसके निर्माण में कला पर अधिक ध्यान दिया गया है। बाहर ही यूरोप के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञों की मूर्त्तियाँ देखकर चित्त गद्‌गद् हो जाता है।

काँग्रेस की ओर से सब से बड़ा आयोजन किया गया है संगीत का। पूरे एक महीने का प्रोग्राम है। यूरोप और अमेरिका की बड़ी-बड़ी संगीतमंडलियों और संगीतविशारदों को आमंत्रित किया गया है। आरकेस्ट्रा की दस, ओपेरा की तीन, बैले की तीन, कोरस की तीन और क्वारटेट की दो मंडलियों को बुलाया गया है। १६ संगीत संचालक और २३ गायक और गायिकायें इसमें भाग ले रहे हैं। ६३ संगीत-विशारदों की चीजें यहाँ उपस्थित की जायेंगी। थियेटर द शाँ जलीजे, थियेटर नेशनल द ओपेरा, पैलेस द शाइलो, और कौमेदिए द शाँ जेलीजे में भिन्न-भिन्न तिथियों के लिए इनके कार्यक्रम निश्चित हैं।

आज पहली बार इस संगीत महायज्ञ के एक आयोजन में सम्मिलित होने का अवसर मिला। सारा कार्यक्रम हमें भारत में ही भेज दिया गया था, किन्तु हमने सोचा, चलो, पेरिस पहुँचकर देखने-सुनने का प्रबन्ध हो जायगा। किन्तु जबतक हम पहुँचे; सारी सीटें भर चुकी थीं। बड़ी मुश्किल से हमारे लिए कुछ दिनों के लिए सीटों का प्रबन्ध किया जा सका था।

आज का आयोजन शाँ जेलीजे थियेटर में था। हमारे होटल से निकट ही पड़ता था। संध्या को खा-पीकर हम वहाँ गये, तो भीड़ का क्या कहना? यह नाटक-भवन भी बहुत बड़ा है। नीचे की सीटों के अलावा, ऊपर चार मंजिलों में सीटें हैं। सारी सीटें भरी हुईं। अपनी जगह पर बैठकर चारों ओर ही नहीं, नीचे ऊपर भी, नजर दौड़ाई, तो आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ा! नीचे विशाल रंगमंच! लाल मखमली सीटों पर पेरिस की रंगीनियों से ओत-प्रोत दर्शक-दर्शिकायें! ऊपर की छत में मनोरंजक तस्वीरें! यहाँ के रंगमंच क्या हैं, राजमहल ही समझिये।

जब संगीत शुरू हुआ, तो क्या कहने? पहली चीज़ आरनल्ड स्कोयनबर्ग की थी। इसके बारह सुरों वाले संगीत ने यूरोप में हड़कम्प मचाया था। कोई उसे पागल कहता, कोई उसे संगीत का शत्रु समझता। स्कोयनबर्ग ने स्वयं लिखा है—"पचास वर्षों से मैंने संगीत में जो कुछ किया, वह ऐसा लगता है कि जैसे मैं खौलते पानी के समुद्र में फेंक दिया गया होऊँ। मेरी मदद करनेवाला कोई नहीं था, हाँ, बहुत लोग उत्सुकता से देख रहे थे कि मैं कब डूब जाता हूँ। किन्तु मैं कोशिश करता रहा, हाथपैर फेंकता रहा और मुझे यह देख कर आश्चर्य होता है कि मैं जिन्दा हूँ और अब मेरी चीजों को लोग सुनने और सराहने तक लगे हैं।" संगीत की यह प्रणाली कितनी जटिल और विशाल है, मंच को देखकर ही पता चल

जाता था। ८५ आदमी भिन्न-भिन्न साजों को लेकर मंच पर बैठे थे। अजब-अजब ढंग के साज़। भारतीय साजों की शब्दावली में कहें, तो सिंगा, तुरही, वंशी, वीणा, सितार, वायलिन—तबला, ढोलक, नगाड़े—सबके यूरोपीय रूप वहाँ हाज़िर थे। वीणा ऐसी कि जैसे अपनी वीणा की चाची हो; नगाड़ा ऐसा जैसे नगाड़ों का लकड़दादा हो! किन्तु अपने यहाँ के लोगों की तरह उनका मरियल रूप नहीं, सब चाकचक करते! लगभग एक दर्जन तो स्त्रियाँ बजानेवाली थीं, वे प्राय: तारवाले साज़ बजा रही थीं। बीच के चार नगाड़े देखने ही लायक़!

संगीत शुरू हुआ और फिर क्या कहूँ? हमारे कानों के लिए, जो सिर्फ कोमल-कोमल स्वर सुनने के आदी हैं, यूरोपीय संगीत को सराहना मुश्किल पड़ता है! किन्तु यह तो यूरोपीय संगीत का आधुनिकतम रूप स्तोयनबर्ग का संगीत था—सात सुरों-वाला नहीं, बारह सुरोंवाला! जब वह ऊपर की ओर बढ़ता, लगता, क्रुद्ध समुद्र में हिलोरे पर हिलोरे उठ रहे हैं, ऐसा लगता, हम भी उसमें फँस गये हैं और कभी तरंगें हमें सात ताड़ ऊँचे और कभी सात ताड़ नीचे फेंक रही हैं! बीच-बीच में जैसे बिजली कड़क पड़ी! और, जब वह नीचे उतरता, तो लगता, अब हम हिमालय की शान्त हिमानी में आ गये हैं, जहाँ सुरों के स्थान में ज़रा स्पन्दन है; कम्पन है, अरे, अब तो वह भी नहीं, बिल्कुल शान्ति। किन्तु यह न समझिये

कि साज़ बन्द हो गये, देखिये सबके हाथ चल ही रहे हैं—साज़ बज रहे हैं, किन्तु ऐसे धीमे कि स्वर मूर्त्तिमान नहीं हो पाता। एक कैसा चमत्कार!

किन्तु, उसके बाद जो कुछ हुआ, वह तो और भी मुग्ध करने वाला था। रिमस्की-कोर्साकोव... स्कोयनबर्ग के साथ स्ट्राविंस्की का नाम यूरोपीय संगीत में जुड़ा है। स्कोयनबर्ग नहीं रहे, किन्तु स्ट्राविंस्की जीवित हैं। यह वृद्ध आचार्य स्वयं साजों के साथ उपस्थित थे। आज मंच पर १६५ कलाकार उपस्थित थे, तरह-तरह के साजों को लेकर; और बहुत लोग सिर्फ कोरस गाने के लिए! स्ट्राविंस्की "ओडिपस रेक्स" नामक एक ओपेरा उपस्थित कर रहे थे! नीचे संगीत हो रहा, ऊपर, बीच-बीच में कुछ अजीब सूरतें आ रहीं। अजीब सूरतें, अजीब हाव-भाव। कल जो चीज़ चित्रकला में देखी, आज उसे नृत्यकला में देख रहे थे। समझ में कुछ नहीं आता था, किन्तु जब ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, तब भी उसका संकेतनृत्य और उसका अद्भुत स्वर-संधान आँखों और कानों को अभिभूत किये हुए है।

उफ़, अभी हम लोग कला के क्षेत्र में कितना पीछे हैं। आज जो देखा, सुना, उससे तो यही लगा कि जहाँ हमारे पूर्वज हमें छोड़ गये थे, वहाँ से नहीं बढ़े, बल्कि उन्हीं औलादों की तरह बाप ने जो घी खाया था, सो आज हम, अपने हाथ को सूँघ रहे हैं। अपने बाप-दादों का गीत हम कब तक गाते रहेंगे? इस युग में हमने क्या दिया, युग को

हमारा दान क्या है—देखना यह है और इस दृष्टि से अपनी ही आँखों में हम कितना श्रेय ऊँचते हैं।

जब संगीत समाप्त हुआ, लोगों ने कैसी तालियाँ पीटीं! वृद्ध संगीतकार को बार-बार मंच पर आना पड़ा, लोगों जैसे लोगों को अपनी प्रशंसा के प्रदर्शन से तृप्ति नहीं हो रही थी!

बाहर के स्टालों पर स्त्रोयनबर्ग और स्ट्राविन्स्की पर बहुत-सी पुस्तकें बिक रही थीं; किन्तु सबकी सब फ्रेंच में थीं, अतः लेना फिजूल जँचा। यों मेरी आदत है कि जहाँ जाता हूँ, उस सम्बन्ध का साहित्य अवश्य खरीद लेता हूँ, आज भी 'स्कोर' नामक संगीत-पत्रिका का विशेषांक खरीद लिया, जो मुख्यतः स्त्रोयनबर्ग की संगीत-कला पर ही निकाला गया है। उससे यूरोप की नई संगीत धारा पर भी बहुत प्रकाश पड़ता है।

एक अजीब बात हुई है; मेरे कोठरी की कुंजी खो गई है। बार-बार नीचे के पोर्टर से कुंजी लानी पड़ती है। अजीब स्वभाव है मेरा—चीजों को रखने, सँवारने की आदत ही नहीं है। खैर घड़ी कह रही है; रात के दो बजने जा रहे हैं, अब भी तो सोया जाय!

१२

नेपोलियन की समाधि : साहित्य के दो छोर

२२-५-५२
पेरिस

रात ही तय हो चुका था, आज नेपोलियन की क़ब्र देख ली जाय। मैं तो पहली बार की यात्रा में भी इसे देख चुका था, किन्तु शीला के 'डैडी' ने कभी चर्चा कर दी थी नेपोलियन की टोपी की। वह उसे देखने के लिए लालायित थी।

जब हम अलेक्जेन्डर पुल पार कर रहे थे, उधर से फौज आती हुई दिखाई पड़ी। यह अलेक्जेन्डर पुल—पहले दिन सुबह-सुबह हमने इसी पर सीन-नदी पार किया था और इसकी सुनहली मूर्त्तियों को देख कर मुग्ध हुआ था! फौज के इन दस्तों के कारण पुल की शोभा और भी बढ़ गई थी। पैदल, घुड़सवार सेना और पीछे बैंड पार्टी! सच कहूँ; सैनिकों के चेहरे मोहरे ने मुझे प्रभावित नहीं किया! फौजी-जीवन के साथ जो अकड़, शान और बहुत अंशों में एक उद्धतपना सम्मिश्रित है, उसका वहाँ अभाव पाया! चेहरे पर शराफत, चाल में लचक! घुड़सवार सेना काफी तादाद में थी! बैंड

का दस्ता अच्छा था। इनके सुनहले बैज और कामदार कोट, अलेक्जेन्डर पुल की सुनहली मूर्त्तियों की पृष्ठ-भूमि में बहुत ही सुन्दर दीखते थे ! पुल पर से ही इनवैलिड दिखाई पड़ता है। इनवैलिड—जहाँ पहले युद्ध में पंगु बने सैनिकों की परवरिश होती थी, किन्तु अब जहाँ अस्त्र-शस्त्रों का संग्रहालय है और पेरिस के फौजी-दस्तों का हेड-क्वार्टर ! यह इमारत चौदहवें लुई के समय बनी थी। यह डेढ़-लाख वर्ग गज़ ज़मीन को घेरती है और इसकी अँगनाई चौदह सौ फीट लंबी और तेरह सौ फीट चौड़ी है ! इसकी खिड़कियों की संख्या दो हज़ार है !

इमारत के आगे एक खाई है और उसके पीछे कतार में तोपें रखी हुई हैं। अगनाई में घुसिये तो चौदहवें लुई की मूर्त्ति दिखाई पड़ती है ! इमारत के कमरों में, बरामदों पर अस्त्र-शस्त्रों के अनेक नमूने काल-क्रम से सजा कर रखे गये हैं। यहाँ उन पताकाओं को भी सुरक्षित रखा गया है जिन्हें नेपोलियन भिन्न-भिन्न युद्धों में विजयी बन कर दुश्मनों से छीन लाया था !

इसी इमारत के पीछे वह समाधि-मन्दिर है जिसमें नेपोलियन की लाश रखी गई है ! पहले यह गिरजाघर था, माँसार नामक स्थापत्य-कला विशारद ने इसकी रचना की थी ! इसे रोम के प्रसिद्ध गिर्जा-घर 'सेंट-पिटर' के नमूने पर बनाया गया था और पेरिसवालों का कहना है, इसका गुम्बद उससे भी

अधिक शानदार है। जब १८४० में यह तय किया गया कि नेपोलियन की लाश को सेंट-हेलना से लाकर पेरिस में दफनाया जाय, तो उसके लिए इसी स्थान को चुना गया! प्रसिद्ध कलाकार विस्कौंती ने मन्दिर के भीतर जमीन खोद कर समाधिस्थल का निर्माण किया। रूस के 'जार' ने इसके लिए फिनलैंड से लाल पत्थर भेजे और उसका ताबूत इसी का बना। इसी ताबूत के भीतर नेपोलियन सदा के लिए विश्राम कर रहा है!

ताबूत के चारो ओर भित्ति-मूर्त्तियाँ हैं; जिनसे नेपोलियन की महत्ता प्रगट होती है। किस तरह नेपोलियन ने कृषि और उद्योग-धंधों की वृद्धि की, शिक्षा का व्यापक प्रचार किया, अच्छी कानूनी हुकूमत दी, धर्म और राज्य के संघर्ष को दूर किया और अन्त में किस तरह उसने फ्रांस की भूमि से अव्यवस्था और उथल-पुथल की स्थिति को दूर किया। एक लड़की हमें दिखला रही थी। इस अन्तिम मूर्ति को दिखलाते हुए उसने कहा—जैसे आजकल कम्यूनिस्ट अव्यवस्था फैला रहे हैं, नेपोलियन के समय भी यही हालत थी! कैसा लगता है, समूचे पश्चिमी-यूरोप में जिधर जाइये, कम्यूनिस्ट अव्यवस्था की चर्चा साधारण लोगों के मुंह से भी सुनी जाती है। यही वह टोपी है, जिसे पहन कर नेपोलियन अपने विजय-अभियानों में निकलता था!

आज, [illegible] कांग्रेस का [illegible] था। [illegible] पहला जलसा

था। आज का विषय था—आइसोलेशन और कम्यूनिकेशन! बीसवीं सदी का लेखक दो छोरों के बीच झूला झूल रहा है; एक ओर इस सदी ने ऐसी कोलाहलपूर्ण सभ्यता पैदा कर दी है कि वह अपने को इससे दूर हटा कर, अपने को आत्मस्थ कर एक ऐसे साहित्य का सृजन कर रहा है जिसे बिल्कुल व्यक्तिगत साहित्य कहा जा सकता है। दूसरी ओर संवहन के इतने साधन हो गये हैं, अखबार, रेडियो, फिल्म आदि कि उसे बहुत लोगों तक पहुँचाने की लालच में अपनी कला को उसे नीचे की सतह पर उतारना पड़ रहा है—दोनों में कौन वांछनीय है और क्या दोनों का सम्मिश्रण और समन्वय सम्भव है? इस विषय पर अमेरिकन लेखक जेम्स फरेल, इतालियन लेखक क्रोदे मानी, फ्रांसीसी लेखक रोजर कायवा आदि ने अपने विचार प्रगट किये।

सभाभवन में काफी भीड़ थी। पहले से निश्चित लेखकों द्वारा विचार प्रगट किये जाने के बाद अन्य लेखकों को भी बहस में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया गया। आज जिन्दगी में पहली बार मैंने उस यंत्र का व्यवहार किया, जिसे कान में लगा लेने पर, एक भाषा में हुए व्याख्यान को दूसरी भाषा में, अनुवाद के रूप में, सुना जा सकता है। यह प्रबन्ध सिर्फ तीन भाषाओं के लिए था—फ्रेंच, जर्मन और अँगरेजी। व्याख्याता फ्रेंच या जर्मन में बोल रहे हैं और आप उन्हें अँगरेजी में सुन रहे हैं! ऐसा होता है कि व्याख्याता जब मंच पर एक भाषा में बोलते होते हैं, दूसरे

छोर पर उसका अनुवाद दूसरी भाषा में साथ ही साथ किया जाता है और आपके कानों में वही अनुवाद पहुँचता है। किन्तु, इसमें तमाशा यह होता है कि बोलने वाले तो वहाँ मंच से गरज रहे हैं, यहाँ आपके कानों में किसी लड़की की सुरीली आवाज़ आ रही है और जब अनुवाद में कोई कठिनाई होती है, तो उसका हकलना तो और मज़ा ला देता है!

पच्चीस देशों के साहित्यिक आज के जलसे में सम्मिलित हो रहे थे; किन्तु ऐसी भीड़-भाड़ कि कौन किसका परिचय पा सके? आज हमलोगों की ओर से स्पैंट बोले। बड़े ही सीधेसादे ढंग से अपने विचार रखे, विचारों में भारतीयता की पूरी पुट थी। आज की बहस में ब्राजिल की एक लड़की भी बोली—शुरू तो अच्छा किया, किन्तु बोलते-बोलते यों चिल्लाने लगी कि लगता था, बेचारी हिस्टिरिया से परीशान हो! उसकी शिकायत थी कि स्त्रियों के साथ वह व्यवहार नहीं होता, कला और साहित्य के क्षेत्र में भी, जिसकी वे हक़दार हैं! लोगों का खूब मनोरंजन हुआ।

शाम को लुक्जेम्बुर्ग की फुलवाड़ी देखने चले। अब हम पेरिस से कुछ परिचित हो चुके हैं, इसलिए ज्यादा सफर हम मेट्रो—जमीन के नीचे चलनेवाली रेलगाड़ी—से ही करते हैं। इसमें पैसे बचते हैं, आराम भी रहता है। यद्यपि पेरिस की ये पाताल-गाड़ियाँ लंदन की गाड़ियों से बढ़िया

हैं, इनमें दर्जे भी दो हैं, भीड़ अधिक रहती है, खास कर शाम को; किन्तु इनके द्वारा निश्चित स्थान पर कम पैसे में जल्द पहुँचा जा सकता है। मेट्रो से ऊपर आने पर, हमने पाया, हम तो लैटिन कार्टर में हैं। विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों की काफी भीड़। रेस्तोराँ छोटे-छोटे, किन्तु गाना-बजाना हो रहा, प्याले छलक रहे। काले विद्यार्थियों—खास कर हब्सियों की काफी तायदाद देखी।

किन्तु जब तक हम पहुँचे, फुलवाड़ी का फाटक बन्द हो चुका था। अतः हम लौटे। सुन रखा था, इस महल्ले के रेस्तोराँ में कम पैसे में अच्छा भोजन मिलता है। एक रेस्तोराँ में बैठ गये। सचमुच शाँ जेलीज़ के रेस्तोराँ की अपेक्षा आधी क़ीमत में ही हमें बड़ा स्वादिष्ट भोजन मिला!

१२

मेट्रो : मेला : लीडो

पेरिस
२२/५/५२

जब भारत में ही था, कुछ पत्रों में पेरिस में लगनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय मेले का विज्ञापन देखा था। वहीं तय किया था, इसे अवश्य ही देखूँगा। आज सुबह में जलपान करने के बाद उस ओर चला।

यह मेला पेरिस के बहिर्भाग में लगा है। पेरिस अन्तर्राष्ट्रीय मजमों के लिए प्रसिद्ध है—चाहे वे राजनीतिक हों, या सांस्कृतिक! खास कर फैशन की चीजों के मेलों के लिए तो यह संसार में सबसे उपयुक्त भूमि है। कुछ मेले साल-साल लगते हैं, कुछ कई वर्षों के बाद। यह मेला कई वर्षों के बाद लगा है, इसलिए इसका बहुत ही महत्त्व है!

चाहे लंदन हो या पेरिस, पृथ्वीतल से जानेवाली रेल-गाड़ियाँ बड़ी सहूलियत की होती हैं—कम से कम पैसे में जल्द से जल्द आप पहुँच सकते हैं। लंदन की ऐसी गाड़ियाँ जहाँ ट्यूब कही जाती हैं, पेरिस में वे मेट्रो कहलाती हैं! सारी पेरिस के नीचे मेट्रो का जाल बिछा हुआ है। आप किसी

एक सूत्र को पकड़ लीजिये, फिर इधर-उधर जाते रहिये। हर स्टेशन पर नक्शे और चार्ट टँगे होते हैं; थोड़ी समझ-दारी और सूझ से काम लेने पर कहीं भटक पड़ने की गुन्जायश नहीं।

लंदन में इन पाताल-गाड़ियों का एक ही दर्जा है; किन्तु पेरिस में दो। लंदन की ऐसी सफाई और शानदारी भी नहीं है। किन्तु फिर भी अपने देश की सवारियों से उनकी क्या तुलना?

मेट्रो से जब हम ऊपर हुए, ऐसा लगा, मेले के द्वार पर हम पहुँच गये। द्वार ही बताता था, भीतर कैसी रौनक होगी। सदर दरवाजे पर प्रवेश करने के लिए टिकट खरीदने गया, तो पता चला, विदेशी दर्शकों के लिए आज छूट दी गई है। हमारी वेश-भूषा ही मानो हमारे लिए टिकट बन गई।

भीतर पहुँचने पर पता चला, जैसे हम सचमुच मेले में हों। पारसाल इंगलैंड में 'फेस्टेविल आफ ब्रिटेन' का मेला देखा था! लोगों की भीड़ का क्या कहना; किन्तु कहीं धक्कम-धक्का नहीं। यहाँ थोड़ा-थोड़ा अपने देश का मजा आया। बार-बार बदन से बदन टकराते और एक हल्की मुस्कुराहट से माफी मिल जाती!

सारा मेला कई हिस्सों में बँटा। हमने कृषि-विभाग से शुरू किया और शृंगार-विभाग में समाप्त। तरह-तरह

के यंत्र, तरह-तरह के घरेलू सामान, तरह-तरह के श्रृङ्गार प्रसाधन, तरह-तरह के खिलौने, आदि। जिस कतार में निकल जाइये, वहीं चकित हो रहेंगे आप। बार-बार मन में प्रश्न उठता—उफ, मानव ने अपने सुख-साधन के लिए कैसे-कैसे सामान तैयार किये हैं। किन्तु तुरत यह प्रश्न भी मन में उठता—ये साधन कितने लोगों के लिए प्राप्य हैं। खुद अपनी ही बात लीजिये; कितनी ऐसी चीजें थीं, जिनके खरीदने के लिए जी ललच उठता; किन्तु तुरत अपनी जेब की याद हो आती!

जब हमलोग शृंगार-प्रसाधन के विभाग में थे, शीला बेचारी चकित-विस्मित थी। जेवर, साजसज्जा के सामान, सबकी ऐसी भरमार कि लगता यदि कोई एक राज बेच कर भी आवे, तो भी अपनी मनोकामना की पूर्त्ति नहीं कर सके! क्या लिया जायगा, कितना लिया जायगा, कहाँ तक लिया जायगा?

कुछ ऐसी भीड़भाड़ थी कि रास्ते में हमारी संगत टूट गई। मैं एक ओर चला गया, शीला और शिवाजी दूसरी ओर। दोनों ओर से कुछ देर खोजाई हुई। फिर मैं मेट्रो का सूत्र पकड़ कर अपने होटल में आ गया। थोड़ी देर के बाद वे लोग भी चिन्तित लौटे और मुझे यहाँ पाकर आश्वस्त हुए।

भोर में ही तय हो चुका था, आज रात में फिर नैश-विहार का मजा लिया जाय। पेरिस के नैश-विहारों में लीडो

का बड़ा नाम है। यह शाँ जलीजे में ही है। अतः सबेरे ही खा कर हमलोग वहाँ जा धमके। साथ में देशपांडे भी थे।

लीडो में नग्न नृत्य होता है, शराब उड़ती है, हास्य कुतूहल होता है। लोग नाच देखते ही नहीं हैं, नाचते भी हैं। टिकट नहीं लगता, सीट रिजर्व कर लीजिये, खेल के अन्त में बिल चुकाना पड़ता है। यदि भोजन भी कीजिये तो फी आदमी छः हजार फ्रैंक, भोजन नहीं कीजिये, तो सिर्फ चार हजार फ्रैंक। हम भोजन कर चुके थे; अतः चार-चार हजार की ही सीटें रिजर्व कराईं और समय पर जा डटे!

कैसिनो द पेरिस से बिल्कुल अलग है यहाँ का रंग। यह सोलह आने नैश-विहार है। हर टेबुल पर शैम्पेन की बोतल बाल्टी में बर्फ से तर करके रखी हुई है। दो आदमी में एक बोतल शैम्पेन तो आप को पीना ही है, इसी का बिल है प्रत्येक आदमी चार हजार फ्रैंक। यदि अधिक पीना हो, तो पीजिये, नये बिल चुकाइये।

खेल शुरू होने के पहले एक छोकड़ी ने आकर पूछा—क्या इस समय को अमरता देना नहीं चाहेंगे? यानी, फोटो नहीं खिंचा देंगे; बस एक फोटो के लिए सिर्फ दो हजार फ्रैंक! टेबुल पर ही फोटो ले लिया गया और जब लौटने लगे एक केबिनेट साइज फोटो और तीन दियासलाई के डब्बे पर फोटो उसने अर्पित किये।

क्या नृत्य, कैसा नृत्य! पेरिस की ये परियाँ—सुनहले बाल, पतली नाक, सुराहीदार गर्दन, छाती पर खिले अधखिले फूल, पतली कमर, पृथुल नितम्ब, गोल जाँघ, सुडौल पिंडलियाँ! कभी लचकतीं, कभी उछलतीं; कभी कमर को कमानी बना लेतीं, कभी पैरों में पंख बाँध लेतीं —आगे देखिये, पीछे देखिये, अगल देखिये, बग़ल देखिये। शरम क्या, संकोच क्या? लीडो में आप बैठे हैं न! और सामने उस प्याली में लाल परी नाच रही है न! छके जाइये, देखे जाइये!

आपको तो सिर्फ देखना है—देखिये, उधर क्या दृश्य हुआ? हर जोड़ी पर लीडो सवार है। अब तो दर्शक-दर्शिकाओं के नृत्य हो रहे हैं! ओहो, कैसी-कैसी जोड़ियाँ हैं। वह बूढ़े बाबा उस छोकड़ी को कैसे कलेजे से कसे हुए हैं। और वह बुढ़िया उस नौजवान के शरीर को जैसे अपने शरीर में आत्मसात कर लेना चाहती है! अच्छी जोड़ियाँ, जोड़ की जोड़ियाँ भी हैं—किन्तु, मज़ा तो इन बेजोड़ जोड़ियों के देखने में है!

सारा हाल सिगरेट के धुएँ से धुमैला हो रहा है। शैम्पेन की गंध यहाँ की हवा में बस गई है। यों ही सर चकरा रहा है, फिर ये दृश्य! ख़ैरियत है, ढाई बजे और खेल समाप्त हुआ!

होटल : राजदूत : देवीजी !

पेरिस
२३/५/५२

रात तीन बजे सोये, तो स्वभावतः ही देर से जगना था। हाथ-मुंह धोकर बाहर गये, खाना खाया और आकर अपनी पेरिस वाली पुस्तक लिखने लगा। देख रहा हूँ, यह पुस्तक बड़ी मज़ेदार बन रही है। हिन्दी में यह एक ही पुस्तक होगी जिसका सूत्र पकड़ कर लोग पेरिस-यात्रा का पूरा मजा उठा सकेंगे !

इधर कई दिनों से स्नान नहीं किया था। फ्रेंच बाथ पर ही चला रहा था। किन्तु जी भिनभिन कर रहा था। शिवाजी के कमरे में जाकर खूब प्रेम से स्नान किया, तो शान्ति मिली।

बात यों है कि यद्यपि हम शाँ जलीजे के फैशनेबुल महल्ले में है, तोभी हमारा यह होटल मध्यम दर्जे का होटल है। दिक्कत यह भी हुई कि शिवाजी और शीला के लिए होटल में पहले से जगह रिजर्व नहीं थी। अतः हमें सबसे पहले उसी का प्रबंध कर लेना पड़ा और स्वभावतः ही जो सबसे आरामदेह कमरा था, हमने उन्हें दे दिया।

इस होटल में हर कमरे के साथ स्नान घर नहीं है। हाँ, हर कमरे के साथ एक शृंगार-कमरा है, जहाँ आप हाथ-मुँह-पैर धो

ले सकते हैं। पैर धोने के लिए एक ऐसा बर्तन है, जिसमें गरम पानी भर कर उस पानी में दोनों पैर रख कर, कुर्सी पर बैठे-बैठे आप अपनी पूरी थकान उतार सकते हैं। प्रतिदिन स्नान करना यहाँ लाजिमी भी नहीं समझा जाता है। किन्तु हम तो अपने स्वभाव से लाचार हैं! प्रतिदिन नहीं नहाइये, तो मन आश्वस्त होता नहीं है। नीचे स्नान-घर हैं, जहाँ कुछ पैसे देकर आप नहा ले सकते हैं।

किन्तु, मध्यम दर्जे के इन कमरों का मुकाबला आपके देश का अच्छे-से-अच्छे होटल के कमरे भी नहीं कर सकते। मेरा कमरा सिर्फ एक आदमी के लिए है। किन्तु, तो भी दो पलंग। पलंग का सुनहला फ्रेम; नीचे कालीन; पलंग के गुलगुले गद्दे, रेशमी चादर। दो मेजें—एक पर लिखिये, पढ़िये; एक पर नाश्ता-चाय कीजिये। पलंग के सिरहाने फोन; जब चाहिये नीचे से आदमी या दाई को बुला लीजिये। इस कमरे का चार्ज प्रति-दिन के लिए नौ सौ फ्रांक है—यानी करीब चौदह रुपये। इंगलैंड की तरह होटल-चार्ज में नाश्ते का चार्ज शामिल नहीं है। आप नाश्ता कमरे में मँगा सकते हैं, या नीचे जाकर खा ले सकते हैं। भोजन तो हमलोग प्रायः बाहर ही करते हैं; नाश्ते के लिए भी कोई अनिवार्यता नहीं कि यहीं करें। नीचे जो आदमी हैं, उनसे आप सब काम ले सकते हैं. नाश्ता, सिगरेट, सब वे ला देंगे। हम अपनी चिट्ठियाँ भी उन्हीं को दे देते हैं, वे उन्हें भेज देते हैं और उसका चार्ज बिल में दर्ज कर देते हैं। टैक्सी,

थियेटरों के टिकट आदि का प्रबंध भी आप उनके द्वारा करा ले सकते हैं !

सुबह-शाम आपके कमरे की सफाई और सजावट कर दी जायगी। मेरे ऐसा लस्टम पस्टम आदमी—सारी चीजें बिखरा कर निकल जाता हूँ; जब लौटता हूँ, पाता हूँ, सभी चीजें सजा कर क़रीने से रखी हैं। सफाई का काम एक लड़की करती है। इतने दिनों में उससे जान-पहचान तो हो ही गई है। देखते ही हँस कर नमस्कार करती है। किन्तु भाषा का व्यवधान—कुछ बोलचाल क्या हो सकती है? उसका नौजवान पति भी इसी होटल में काम करता हूँ। दोनों काफी स्वस्थ, सुन्दर। होटल के भीतर तो वे अजीब चोगे डाले होते हैं। किन्तु सारे काम कर-धर कर, जब वे अपनी पोशाक पहन कर बाहर निकलते हैं, तो आप क्या समझेंगे कि ये नौकर-दाई का काम करते हैं—सोलह आने लेडी और जेन्टिलमैन, या यहाँ की भाषा में मदाम और मोशियो !

होटल के नीचे दो कमरे ऐसे हैं, जहाँ आप जाकर अख़बार पढ़ सकते हैं, मित्रों से घुलमिल कर बातें कर सकते हैं। 'न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्युन' का पेरिस संस्करण अंगरेजी में छपता है। हम उसी के द्वारा पेरिस और संसार की जिन्दगी से अपना दिमाग़ी सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

नीचे का पोर्तर थोड़ी अंगरेजी जानता है और वह लड़की भी जो इस होटल की संचालिका है। लड़की की लिखावट कितनी

सुन्दर है—मोतियों की जैसी ! विनय, शालीनता, खुशमिजाजी की तो पूछिये मत। हर आदमी को ऐसा लगेगा कि यह मुझी पर सबसे अधिक मेहरबान है।

दिन का भोजन देर से किया, फिर एक झपकी ली। आज शाम को चाय के लिए अपने राजदूत महामहिम मल्लिक के घर पर निमंत्रण था। वहाँ गया। पेरिस में भी अपने देश के झंडे को लहराते देख कर कितनी प्रसन्नता हुई ? राजदूत के घर की सजावट में काफी भारतीयता थी। स्वागत-सत्कार में भी भारतीयता की काफी पुट थी। उनकी पत्नी और साली हमलोगों के सत्कार में तत्पर थीं। यह लड़की हमारे ही साथ 'एयर इन्डिया' से आई थी। यूरोप की राजनीति के सम्बन्ध में बातें हुईं। यूरोप पर इस समय रूस का भूत सवार है। यहाँ की राज-नीति का केन्द्र यही है कि रूस के साथ कैसा व्यवहार रखा जाय ? मल्लिक साहब ने अपनी राय प्रगट की, किन्तु बड़े ही संयत शब्दों में, अपने को सदा तटस्थ रखते हुए, जैसा राजदूत को करना चाहिये।

किन्तु, वहाँ मि० दास नाम के एक सज्जन अपनी पत्नी के साथ आ गये थे। मि० दास भारत के क्रान्तिकारी भगोड़ों में थे, बंगाली हैं, भागकर अमेरिका गये। अब भारत-सरकार के मुलाजिम हैं। उन्होंने अमेरिका में ही एक स्त्री से शादी की, जिनके रक्त में रूसी सम्मिश्रण है। यह श्रीमतीजी तो खुल्लम खुल्ला रूस का पक्ष ले रही थीं। जब इन्होंने मल्लिक साहब के

बातों का सूत्र पकड़ा, तब फिर क्या मजाल कि कोई बीच में बोल सके। धड़ाधड़ बोले जा रहीं—हाथ नचातीं, भौं मटकातीं; क़सम पर क़सम खातीं। उनके विचार से सारा संसार युद्ध के लिए उत्सुक है, बेचैन है; एक सिर्फ रूस है, जिसने संसार में शान्ति कायम कर रखी है। भारत-सरकार की नीति की आलोचना करने में भी उन्हें झिझक नहीं थी। भारत-सरकार के एक मुलाज़िम की पत्नी के मुँह से ये बातें—इस सरकार की ख़ुदा ही ख़ैर करे! किन्तु दास साहब बड़े ही परिमित भाषी—जैसे उन्हें अपनी जिम्मेवारी की सदा याद हो।

आज हमारी कांग्रेस की फिर बैठक थी। हमने सोचा था, राजदूत के आतिथ्य से तुरत फुर्सत पाकर हम उसमें शामिल हो सकेंगे। आज वहाँ पहुँचना जरूरी भी था, हमारे साथी देशपांडे अपना लेख पढ़नेवाले थे। किन्तु, श्रीमती दास की बकझक में हमारा बहुत समय लग गया। जब तक हम लौटें, कांग्रेस का जलसा समाप्त हो चुका था। देशपांडे ने बताया, उनके लेख का अच्छा स्वागत हुआ। कम्यूनिस्टों के भौतिकवादी दर्शन पर उन्होंने करारी चोट की थी। इस लेख को उन्होंने मुझे पहले भी दिखलाया था। लेख विचारपूर्ण था। किन्तु मुझे ऐसा लग रहा है कि हमलोग कम्यूनिस्टों को खामख्वाह कुछ अधिक महत्व दे रहे हैं। उनकी इतनी निन्दा कर रहे हैं कि उनके प्रचारक हमीं बन रहे हैं!

१५

श्मशानभूमि और रंगभूमि

पेरिस
२४/५/५८

भाई मेहरअली ने अपनी अन्तिम पेरिस-यात्रा के बाद मुलाक़ात होने पर उस श्मशानभूमि की चर्चा की थी; जहाँ सुप्रसिद्ध नाटककार मौलियर की क़ब्र है। तभी निर्णय कर चुका था, कभी पेरिस जाने का मौक़ा मिला, तो इस क़ब्र की धूल शीश पर अवश्य चढ़ाऊँगा।

इधर जब पेरिस की गाइड-बुक देखने लगा, तो पता चला, यहाँ कई प्रसिद्ध श्मशान-भूमियाँ हैं, जिनमें फ्रांस के सुप्रसिद्ध व्यक्तियों को दफ़नाया गया है। चार तो उनमें बहुत प्रसिद्ध हैं। किन्तु मुझे तो उस श्मशानभूमि को देखना था, जहाँ मौलियर को दफ़न किया गया; क्यों कि उस भूमि के साथ भाई मेहरअली की स्मृति भी संलग्न है।

यह श्मशानभूमि पेरिस की सबसे बड़ी श्मशानभूमि है और पेरिसवालों का दावा है, कहीं एक जगह इतने बड़े-

बड़े आदमी दफ़न नहीं किये हैं। अपने नगर की तरह इस श्मशानभूमि को भी वह अद्वितीय मानते हैं।

मेट्रो का सूत्र पकड़ कर वहाँ पहुँचा। मेट्रो का छोटा-सा नक्शा हर जगह मिलता है, मुफ्त ही। उसे ले लीजिये और गाइड-बुक से मिलाकर स्थान को निश्चित कर लीजिये कि वह किस लाइन के किस स्टेशन के नज़दीक है, फिर कोई कठिनाई नहीं होती। यदि कोई गड़बड़ हुई, तो किसी आदमी को नक्शे में जगह बता दीजिये, वह आपको सही रास्ता बता देगा।

यह श्मशान भूमि एक पहाड़ी पर है। यों तो बड़े-बड़े लोगों की क़ब्रें यहाँ होने से इसकी प्रसिद्धि थी ही, १८७१ में जब पेरिस के ग़रीबों ने विद्रोह करके अपनी कम्यून कायम की, और अन्त में लड़ते-लड़ते इसी क़ब्रगाह में जा छिपे और अन्ततः उन्हें खदेड़ कर, इसकी दीवाल से सटा कर, गोलियों से मार दिया गया, तबसे यह एक राजनीतिक तीर्थ-स्थान बन गया है।

मेट्रो से ऊपर आकर हमने एक पहाड़ी-सी ऊँची जगह देखी और ऊपर जाने की सीढ़ियाँ भी। हम उसी रास्ते ऊपर चले गये। यह तो पीछे पता चला कि यह इसका सदर दरवाजा नहीं है। सदर दरवाजे पर अच्छे गाइड मिल जाते हैं और क़ब्रों पर चढ़ाने के लिए फूल-आदि भी।

ऊपर जाकर कब्रों की कतारें ही देख कर हम घबड़ा गये। देखा, वहाँ माली की तरह के कुछ लोग हैं। उनसे पूछने लगा, वे हमारी अँगरेजी भाषा तो समझते नहीं थे; तो भी उन्होंने जान तो लिया ही कि हम दर्शक हैं और जब हमने मॉलियर वाल्ज़क आदि के नाम लिये तो एक नक्शा हमारे हाथ में देकर लाल पेन्सिल से उन तक पहुँचने का निशान बना दिया। इसके बदले में हमने कुछ पैसे उन्हें दिये और आगे बढ़े।

बीच में रास्ते, दोनों तरफ कब्रें। तरह-तरह की, नाना आकार-प्रकार की। किन्हीं-किन्हीं के ऊपर खुशनुमा मन्दिर, किन्हीं-किन्हीं पर मृत व्यक्तियों की मूर्त्तियाँ, किन्हीं-किन्हीं कब्रों पर फूल भी। एक कुनबे के मृत व्यक्तियों की कब्रें कहीं-कहीं एक ही स्थान पर दिखाई पड़ीं। नक्शे को लेकर हम आगे बढ़ रहे थे, तोभी प्रायः रास्ते भूल जाया करते थे। सबसे पहले वालज़क की कब्र मिली; कब्र पर उसकी एक मूर्त्ति भी। कब्र के निकट खड़ा करके शीला ने हमलोगों के फोटो लिये। उसके बाद आस्कर वाइल्ड की कब्र मिली। यह कब्र अजीब है। उसके ऊपर एक चट्टान-सी रखी हुई है, जिसके नीचे के भाग में एक नंगे आदमी की मूर्त्ति अंकित है, मानो वह उस कब्र पर लटका हुआ हो और उसके गुप्तांग भी लटक रहे।

वहाँ से सारा बर्नहार्त की कब्र की खोज में बहुत समय लगा। जब इंगलैंड में पिछली बार गया था, शेक्सपीयर के गाँव

के थियेटर के सिलसिले में उसकी प्रसिद्धि का ज्ञान हुआ था। पेरिस के जो पाँच राजकीय रंगमंच हैं, उनमें एक इसके नाम पर है। शेक्सपीअर के नाटक में इसने ओथेलो और हेमलेट का पार्ट किया था। अतः उत्सुकता स्वाभाविक थी। किन्तु बड़ी खोज-ढूँढ़ के बाद भी उसकी क़ब्र नहीं पा सका।

फिर नक्शा देखते, भूलते भटकते, मोलियर की क़ब्र के निकट पहुँचा। बहुत पुरानी क़ब्र है। दो पत्थर के खम्भों पर एक ताबूत है। बड़े चाव से, प्रेम से, श्रद्धा से मैंने ताबूत को चूमा। बहुत अफ़सोस हुआ, माला या फूल नहीं ला सका था।

इस खोज-ढूँढ़ में ही बहुत देर हो चुकी थी, अतः १८७१ की कम्यून के शहीदों की वधस्थली को नहीं देख सका।

इस श्मशानभूमि में कौन-कौन नहीं है—लेखक-कवि; योद्धा-शहीद; नाटककार-अभिनेता; चित्रकार-संगीतकार; दार्शनिक-संत—वे बड़े-से-बड़े लोग यहाँ अनन्त निद्रा में सो रहे हैं जिन्होंने पेरिस को पेरिस बनाया, जिन्होंने फ्रांस को वह गौरव दिया जिसके बल पर वह बार-बार पराजित होने पर भी उठ कर खड़ा होता है! यह श्मशानभूमि फ्रांसिसियों के लिए इतनी प्यारी है कि नेपोलियन ने मरते समय यह इच्छा प्रगट की थी कि उसकी लाश को इसी श्मशान में दफ़नाया जाय।

आज जब घर से निकल रहा था, सड़कों की भीड़ के विज्ञापन के खम्भों पर बड़े-बड़े पोस्टर लगे हुए मिले, जिनमें

उल्लेख था कि विक्टर ह्यूगो की १५० वीं जयन्ती २६ मई से ६ जून तक मनाई जायगी। फ्रांस के राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री पैंथियन में जाकर ह्यूगो की क़ब्र पर फूल चढ़ायेंगे और उस विशाल इमारत पर राज्य की ओर से दीवाली की जायगी। नृत्य, संगीत, अभिनय आदि के भी प्रोग्राम हैं। काश, पंडित नेहरू हमारे तुलसीदास के स्मारक पर फूल चढ़ा आते? क्या काशी के रहने वाले श्री सम्पूर्णानन्दजी को ही यह बात सूझी? तुलसीदासजी पैदा कहाँ हुए, इस पर झगड़ा कर लीजिये, किन्तु काशी में ही अस्सीघाट पर उनका निधन हुआ, यह तो इतिहास-सिद्ध है।

शाम को यों ही टहलते हुए हम ओपेरा-भवन की ओर निकल गये। कई दिनों से इसके चारों ओर हम चक्कर लगा जाते हैं किन्तु टिकट नहीं मिल पाते। होटलवालों से कहा, तो वे बड़े महँगे टिकट की ही बात करने लगे। पर यह संयोग देखिये, आज जब उसके भीतर इसलिए घुसे कि कम से कम भीतर का चाक-चिक्य ही देख लें, तो वहीं सस्ते टिकट मिल गये! फिर हमारे आनन्द का क्या कहना?

ओपेरा-भवन के भीतर जाते ही दिमाग़ चकरा जाता है। यह पेरिस का सबसे पुराना और सबसे बड़ा रंगमंच है। इस भवन के निर्माण में दो करोड़ रुपये खर्च हुए थे। यह आज भी माना जाता है कि संसार भर में ऐसा शानदार रंगमंच कहीं

नहीं है। इसका विस्तृत वर्णन देने के लिए यहाँ न समय है, न स्थान। पेरिस वाली पुस्तक के लिए ही इसे सुरक्षित रखता हूँ। यहाँ इतना ही कहूँगा, जो लोग यूरोप गये और ओपेरा-भवन में जाकर कोई नाटक नहीं देख सके, उनका वहाँ जाना, मेरी दृष्टि में, अधूरा ही रहा।

टिकट लेकर हम जल्दी-जल्दी ऊपर चढ़े। संगमरमर, कालीन, मखमली पर्दे, बड़े-बड़े शीशे, ज्यों-ज्यों हम ऊपर चढ़ते गये, हम पर अपना रोब जमाते गये। चौथे मंजिल पर के लिए हमारे टिकट थे। पहले हम जहाँ बैठाये गये, वहाँ से भी स्टेज तो अच्छी तरह दिखाई पड़ता था किन्तु मैं तो सारे रंगमंच की सम्पूर्ण झलक देखना चाहता था। मेरी इस मनो-कामना को मानो एक महिला समझ गई; ज्यों ही बीच में रिसेस हुआ, उसने मेरे लिए अपनी अगली पंक्ति की जगह खाली कर दी। उफ, नीचे से ऊपर तक सारी सीटें भरी हुईं। कितना बड़ा भवन है यह; कैसे कलाप्रिय हैं यहाँ के लोग!

और, वह रंगमंच पर क्या हो रहा है? आज एक ओपेरा और एक बैले का अभिनय हो रहा था। पहले ओपेरा हुआ, बाद में बैले। ओपेरा में सभी पात्र संगीत में ही वार्त्तालाप करते हैं—वार्त्तालाप क्या? अपने हृदय के भावों के संगीत के रूप में रंगमंच पर ऊँडेलते हैं! संगीत के सिवा एक शब्द भी नहीं। यों ही बैले में रंगमंच पर मुँह से एक शब्द भी नहीं निकाला जाता।

सारे मनोभावों को नृत्य के माध्यम से ही प्रगट किया जाता है। नृत्य की गति और ताल को निर्देशित करने के लिए मंच के नीचे साज बजते होते हैं !

जब खेल समाप्त हुआ, बार-बार मन में प्रश्न उठता—हमारे देश में ये सब कब सम्भव हो सकेंगे ? अभी तो अच्छे नाटकों के लिए भी हमारे पास अभिनेता, अभिनेत्री, रंगमंच और साज-सज्जा नहीं मिल पाते—फिर ओपेरा और बैले तो हमसे दूर हैं। ओपेरा-भवन को पर्याप्त सरकारी सहायता भी प्राप्त है। उसका डाइरेक्टर किसी मिनिस्टर से कम रुतबा या महत्व नहीं रखता ! हम अभी कला के क्षेत्र में कितने पिछड़े हुए हैं—न कला की पूजा है, न कलाकार की पूछ ! आह !

१६

वन-विहार : चिड़ियाखाना

पेरिस
२५।५।५२

जब शहर से चित्त उखड़ता है, जंगल में भागने की इच्छा होती है। किन्तु, जंगल किसको मयस्सर है? अतः घुट-घुट कर शहर की गलियों में ही लोग जिन्दगी काट देते हैं।

पेरिस के नागरिक इस सम्बन्ध में अवश्य दूरदर्शी हैं। वे जानते थे कि उनके शहर में अनेकानेक मनोरंजन के साधन होने पर भी कभी आदमी का मन उचाट में आ सकता है, वह एकान्त खोज सकता है, ऐसा एकान्त जहाँ वह प्रकृति के साथ तदात्मता स्थापित कर सके। अतः उन्होंने शहर के अन्दर, अनेक बगीचे ही नहीं बनाये, शहर के दो छोरों पर दो जंगल भी रख छोड़े हैं। और, प्रति सप्ताह रविवार को इन दोनों जंगलों में मंगल मच जाता है।

आज रविवार है। हमने तय कर लिया है कि इन दो जंगलों में से एक को आज देख लें। वारसाई जाते समय उनमें से एक जंगल की झलक देख ली थी, जो पश्चिमी छोर पर है। अतः आज पूर्वी छोर के जंगल की ओर ही चलना उचित

समझा। फिर इसी जंगल में वह चिड़ियाखाना भी है जो यूरोप के चिड़ियाखानों में अपना खास स्थान रखता है।

भोर की खुनक; हवा में सुरूर। पेरिस के नागरिकों और नागरिकाओं के चेहरों पर छुट्टी की मस्ती। रंगीनी और गहरी हो गई है। वाचालता कुछ और बढ़ गई है। होठों की हँसी आज गालों पर गड्ढे बनाती है। मेट्रो में भीड़ है। यदि किसी के कंधे से आपका कंधा लड़ जाता है, तो परवाह नहीं। यह लंदन नहीं, पेरिस है। यहाँ अनावश्यक शिष्टाचार का चलन नहीं। दोनों ओर से आँखें मिलीं, होठों पर मुस्कान की हल्की रेखायें खिची और बात खत्म!

मेट्रो के सुरंग से ऊपर आइये कि देखिये समाँ। बसें हैं, टैक्सियाँ हैं, ट्राम-गाड़ियाँ हैं। जंगल के जिस छोर पर चाहिये, ये पहुँचा देंगी। जाने के पहले वन-विहार के लिए कुछ सामान भी रख लीजिये। फूल बिक रहे हैं, फल बिक रहे हैं, रोटियाँ बिक रही हैं और वह देखिये, छोटी बोतलों की लाल परी भी आपको देख कर मुस्कुरा रही है! पेरिस की लाल शराब मशहूर है। दाम कम; नशा कम। बस, आँखों में थोड़ी लाली आ गई; बदन में कुछ सुरसुरी दौड़ गई।

मैं संस्कृति का चिन्ह फूल को मानता हूँ। जहाँ जितने फूल हों, फूलों की दूकानें हों, समझ जाइये, वह नगर उतना ही सुसंस्कृत है। पेरिस संस्कृति की नगरी है। यहाँ पेट में गेहूँ डाल

कर ही लोग संतोष नहीं करते जब तक कि सीने पर गुलाब नहीं टँका हो !

हमलोगों ने कोई सवारी नहीं की ! पैदल ही चले—भूलते भटकते । बन-विहार और सवारी !—यह भी कोई बात हुई !

जंगल में ज्यों-ज्यों घुसते गये, उसका वातावरण हम पर हावी होता गया । हरे-हरे पेड़, घनी-घनी छाया; जहाँ-तहाँ कुंजें—कुंजों में रंगीन फ्राक, फ्राक की बगल में भूरे कोट लोट रहे हैं । कहीं बच्चों की किलकारियाँ, कहीं भूलों की पेंगे ! कहीं खाया जा रहा है, कहीं पीया जा रहा है, कहीं खेला जा रहा है, कहीं लेटा जा रहा है ! कहीं सटसट कर, कहीं हटहट कर ! उछल कूद भी है, दौड़-धूप भी है, उठापटक भी है ! पेरिस छुट्टी मना रही है, मौज में है । यहाँ बाधा नहीं, बंधन नहीं—सब कुछ निर्द्वन्द्व, स्वच्छन्द, उन्मुक्त !

बीच में झीलें हैं, झीलों में नावें हैं, नावों पर नाजनीन हैं ; जो पतवार खे रहा है, उसकी मौत !

यह जंगल प्राकृतिक है; किन्तु मनुष्य ने उसके सँवार-सँभाल में काफी हिस्सा लिया है । बीच-बीच में सड़कें बना दी गई हैं, पगडंडियाँ बना दी गई हैं । झीलों के पानी को साफ रखा जाता है, कीचड़-काई की सफाई की जाती है । जो पेड़ सूखते हैं, उनकी जगह नये पेड़ लगा दिये जाते हैं । यह गरमी का मौसम है । नये-नये पत्ते, धुलेपुँछे ! ऊँचे-ऊँचे देवदार-

ऐसे पेड़ों के बीच-बीच छोटे-छोटे फूल वाले पेड़ों की भी बहार। वे फूलों से लदे हैं, उनकी डालियाँ झूम रही हैं! झील के किनारे के झाड़ों की फुनगियाँ बार-बार लहरों को चूम रही हैं।

मस्ताने लोग, मस्ताना समाँ। हमारे पैर चलते-चलते थक रहे हैं, किन्तु हमारी आँखें अघाती नहीं हैं! बेर ढल रही है, पेट कुलबुला रहा है। झील के बीच में एक टापू है—टापू के बीच रेस्तोराँ है। चारों ओर फूल: टेबलों के इर्दगिर्द फूल। थोड़ा खाना, बनारस का रहना—हलका जलपान; फिर चिड़ियाखाने की ओर।

यही है, निकट ही है, पहुँच ही गये। किन्तु चलते-चलते पैर थक गये। बीच में खेल का मैदान—युवक-युवतियाँ तरह-तरह के खेलों के, दौड़ के, घुड़दौड़ के, साइकिल-दौड़ के अभ्यास में रत हैं। सुन्दर, सुपुष्ट शरीर, देखकर ईर्ष्या होती है, अपने युवक-युवतियों के शरीर-वैभव पर शरम आती है।

उधर बच्चे मैदान में पतंगे उड़ा रहे हैं—कागज़ के ही पतंगे, या रबर के; किन्तु उनमें से अधिकांश की शकल हवाई-जहाज़ की। अभी से हवा से खिलवाड़ के बहाने उसपर विजय प्राप्त करने की भावना उनमें भरी जा रही है।

सड़कों को, पगडंडियों को थके पाँव से पार करते आखिर हम चिड़ियाखाने के निकट पहुँचे। टिकट कटाये, भीतर

दाखिल हुए। अन्य चिड़ियाखानों से सबसे बड़ी विशेषता यह कि यहाँ के सभी जानवरों को उनकी स्वाभाविक स्थिति में ही रखने-रहने का प्रबंध किया गया है। एक पहाड़ी के इर्दगिर्द यह चिड़ियाखाना है, इससे यह सहज ही सम्भव हो सका है। मान लीजिये, यहाँ सूअर हैं। तो पहाड़ी के निचले हिस्से में जमीन की सतह से तीन-चार फीट नीचे कुछ गुफायें बना दी गई हैं, उसके सामने चहबच्चे बना दिये गये हैं। सूअर गुफाओं में सो रहे हैं, या चहबच्चों में नहा रहे हैं, आप ऊपर से उन्हें देख रहे हैं। जंगली बकरियाँ हैं, तो पहाड़ी के ऊपर उनके लिए खोह बना दिये गये हैं, वे पहाड़ी पर चर रही हैं, या इधर-उधर बैठी है। बाघ और सिंह भी वहाँ स्वतंत्र ही दीख पड़ते हैं। पहाड़ी के नीचे उनकी माँद है, सामने बड़ा-सा आँगन है फिर इतनी चौड़ी खाई है कि वे उसे उछल कर पार कर नहीं सकते, खाई में पानी भरा है। हाथी के लिए ऐसे तालाब हैं, जिसके किनारे वे बैठे रहें, या पानी को हलमलते रहें! सूँड़ उठा कर वे आपसे उपहार भी ले सकते हैं।

यह देखिये, बाघ और बाघिन मस्त हो किलोल कर रहे हैं! कैसा अद्भुत प्रेम-व्यापार। दोनों एक दूसरे की गरदनों पर जोरों से दाँत जमाते हैं, उछलते हैं, कूदते हैं, चीखते हैं, चिल्लाते हैं। दोनों अलग हो जाते हैं, अलग-अलग बैठकर उजले-उजले दाँतों के बीच से लाल-लाल जीभ निकाल कर हाँफते हैं। फिर एक कूद कर दूसरे के निकट पहुँचता है,

सूँघता है, उसके शरीर को जीभ से सहलाता है, अब दोनों खड़े हुए और फिर वही प्रेम-क्रीड़ा शुरू हुई।

किन्तु सिंह-दम्पत्ति तो शान्त भाव से सोये हैं। किस तरह दोनों सट-सट कर सोये हैं, लगता है, दोनों प्रबल आलिंगन-पाश में बंधे हों! मृगराज का यह शानदार केसर! मृगरानी की वह पतली कटि! और, उधर देखिये, इनके छौने किस तरह खेलवाड़ कर रहे हैं। लगता है, जैसे बड़े-बड़े बन-बिलाव हों। खेलते-खेलते ये कभी-कभी झगड़ पड़ते हैं, शोर मच जाता है। मृग-राज की नींद तो गाढ़ी है, किन्तु मृगरानी की आँखें खुलती हैं, वह उस ओर देखती है, ज़रा-सी गुर्रा देती है—कि बच्चे शान्त हो गये! मुझे मृगरानी की यह क्रिया देखकर अपनी रानी की याद आती थी, जिसकी एक कुटिल भृकुटि से ही बच्चों का सारा कोलाहल बन्द हो जाता है!

तरह-तरह के पशु, पंछी, सरिसृप को देखते अन्त में हम बीच की पहाड़ी पर चढ़े जो २२५ फीट ऊँची है। ऊपर जाने के लिए लिफ्ट भी है। ऊपर पहुँच कर सारी पेरिस की एक झलक हमने ली। मैंने अब तक पेरिस को एक सांस्कृतिक नगरी ही समझ रखा था; ऊपर से देखने पर पता चला, इसके आस-पास कितनी फैक्टरियाँ भी हैं, जिनकी चिमनियों से धूएँ निकल रहे थे। इन फैक्टरियों में विशेषकर शृंगार-प्रसाधन की साम-ग्रियाँ ही तैयार होती हैं, जिनके लिए पेरिस बहुत प्रसिद्ध है।

थके-माँदे जब लौटे, तो सिवा खाकर सोने के कोई काम सम्भव नहीं था। किन्तु, यहाँ तो आदत है, जब तक तारीख नहीं बदली, पलकों के पाँवड़े पर निद्रादेवी का पदार्पण होता ही नहीं। एक अध्याय पेरिसवाली पुस्तक का लिख डाला; फिर यह डायरी लिखने लगा और अब पाता हूँ, मेरे अनजाने में ही मेरी घड़ी की घंटवाली सूई दो की सीमा को पार कर चुकी है।

१७

चित्रकला की आत्मा

पेरिस
२६/५/५२

अब पेरिस छोड़ने की चर्चा चल रही है। सुब्रह्मण्यम् सीधे यहाँ से बम्बई लौटेंगे। उनकी बच्ची बीमार है; बेचारे इसकी खबर सुनकर बहुत चिन्तित थे। अब सोचता हूँ, इस बार यह अच्छा हुआ कि मैंने यहाँ का अपना पता ही किसीके पास नहीं भेजा। विदेश में कोई दुःसम्वाद मिलता है, तो यात्रा का सारा मजा ही किरकिरा हो जाता है। हाँ, अपना कुशल-क्षेम प्रायः ही लिखता रहता हूँ—वह भी एक जगह नहीं, भिन्न-भिन्न मित्रों को।

सर मसानी यहाँ से लंदन जायँगे। इधर एक दुर्घटना हो गई, जिससे उनकी तबीयत खराब है। एक दिन वह सड़क पार कर रहे थे, तब एक टैक्सी से टकरा गये। यहाँ टैक्सी की रफ्तार पर कोई रोक नहीं है; चाहे जिस गति से जहाँ चलाइये, शर्त यह है कि मोटर पर आपका पूरा नियंत्रण हो। पूरा नियंत्रण था या नहीं, इसका निर्णय कौन करे? अतः यूरोप की सड़कों पर चलने में सदा सावधान रहना ही चाहिये। एक बात और भी है। इंगलैंड को छोड़कर सारे यूरोप में मोटरें दाहिनी

ओर से जाती हैं। हमलोग, जो बाईं ओर चलने के अभ्यस्त हैं, इस उल्टी रफ्तार से भूलभुलैया में पड़ जाते हैं। मसानी साहब तो कई बार यहाँ आ चुके हैं, यहाँ के नियमों से अच्छी तरह परिचित हैं; तोभी यह हालत, तो अनजाने लोगों का क्या हो ? हम उनके होटल में जाकर अपनी सहानुभूति अर्पित कर आये हैं।

स्पैट भारत में ही बस गये हैं। बीस-पचीस वर्षों के बाद अपनी मातृभूमि (इंगलैंड) के दर्शन करने जा रहे हैं। घर की, खासकर अपनी माँ की चर्चा करते समय उनकी आँखें प्रायः ही सजल हो जाती हैं। अब जब घर के निकट आ गये हैं, घर का मायामोह पूरी तरह उनपर सवार हो चला है।

सिर्फ देशपांडे हमारे साथ रहेंगे। पहले वह सोचते थे कि समुद्री पथ से वह लौटेंगे, किन्तु अब हमारा साथ ही देना उन्होंने तय किया है। पेरिस से लंदन रेल के पथ से; फिर लंदन से जिनेवा हवाई रास्ते से; जिनेवा से रोम रेल के पथ से, और वहाँ से हवाई रास्ते बम्बई। पहली जून को हम पेरिस छोड़ देंगे और २० जून को बम्बई पहुँच जायेंगे—बाकी दिनों में, जहाँ तक सम्भव हो, इंगलैंड, स्वीट्जरलैंड और इटली को देखेंगे !

सोचता था, इस बार उत्तर की ओर फिनलैंड तक जाऊँ—किन्तु, अब ध्रुव देशों को देखने के लिए तीसरी बार आना ही पड़ेगा।

विदेश-यात्रा को हमारे देश में हौआ बना लिया गया है। छः-सात हजार रुपये में दो महीने की यूरोप-यात्रा बड़े मजे में कर ली जा सकती है और इस अर्से में चार-पाँच देशों के भ्रमण का लुत्फ उठाया जा सकता है। हाँ, साथ में मन के लायक एक-दो साथी रहें, तो और भी आनन्द हो। एकाकी यात्रा उतनी बुरी नहीं, जितनी बड़ी जमात के साथ की यात्रा !

आज फिर कांग्रेस के दफ्तर में गया। वहाँ से कांग्रेस सम्बन्धी कुछ कागज-पत्र लिये और फिर उसके फोटोग्राफर के दफ्तर में जाकर कुछ फोटो लिये। तरह-तरह के फोटो थे, जिन्हें जो पसंद आया, चुन लिया।

यूरोप के लोगों में संगठन की शक्ति कुछ अद्भुत ढंग से विकसित हो गई है। इतना बड़ा जल्सा किया जा रहा है; किन्तु कहीं भी हल्ला-हंगामा नहीं—आफिस में, सभाभवन में, सब जगह सुचारु व्यवस्था। अपने यहाँ ऐसी चीज की जाती, तो तूफान बरपा हुआ रहता। कार्यकर्ता परीशान रहते, अतिथि परीशान रहते; हर जगह क़यामत का शोर होता। लेकिन यहाँ सब कुछ पहले से तै है, उसीके अनुसार सारे काम घड़ी की सूई की तरह निश्चित गति से हुए जा रहे हैं! न आफिस में दौड़-धूप, न सभा में धक्कमधुक्का !

आज प्रायः दिन भर घर में ही रहा। पेरिसवाली किताब को यहीं पूरा कर लेना चाहता हूँ। उसके सात अध्याय लिख भी चुका। यों [illegible] पूरी हो चुकी है।

आज सन्ध्या को फिर कांग्रेस की बैठक थी—विषय था "बीसवीं सदी की चित्रकला की आत्मा।" इस बैठक की अध्य-

ज्ञता की फ्रांस की आधुनिक कला के संग्रहालय के अध्यक्ष जीन कासाऊ ने और इसमें रूसी कलाकार व्लादिमिर विल्दे, इटली के लियोनेलो वेनतुरी, आस्ट्रिया के रुदोल्फ रिप्पर तथा इँगलैंड के हरबर्ट रीड ने भाग लिया। व्याख्यानों का स्तर बहुत ही ऊँचा था! रीड ने इसी सिलसिले में, प्रसंगवश, एक बात कही, जो मुझे बहुत भाई! उसने कहा—हमें कम्यूनिज्म से लड़ना है, तो उससे अधिक क्रान्तिकारी होना पड़ेगा! सिर्फ रक्षा की भावना तो प्रतिक्रिया की सूचना देती है और प्रतिक्रिया हमेशा ही दकियानूस होती है!

एक विचित्र बात पाई है। कम्यूनिज्म के बारे में सिर्फ इँगलैंड के लोग ही अभावुक और तार्किक ढंग से सोचते हैं, बाकी लोग तो उसमें भावुकता की इतनी पुट दे देते हैं कि वह प्रायः ही अतार्किक हो जाता है!

संध्या को शाँ ज़लीजे की सड़क पर थोड़ी चहल कदमी की! असल में पेरिस का सौन्दर्य तो सन्ध्या के बाद ही खुलता है! टहलते-टहलते कन्कर्द तक चला गया! सड़कों पर मोटरों का रेलपेल; दोनों ओर की पगडंडियों पर घुमक्कड़ों की टोलियाँ! एक भारतीय टोली से अचानक भेंट हो गई! दो पुरुष और तीन स्त्रियाँ! वे लोग इँगलैंड में रहते हैं, उनमें से एक महिला भारतीय दूतावास में रहती हैं! वे लोग लैटिन क्वार्टर में ठहरे हुए हैं! बताते थे, वहाँ का जीवन काफी सस्ता है! पगडंडियों की बगल में जोड़ियों का चुम्बन-आलिंगन उसी निर्बाध रूप से चल रहा था! कारखाना चालू है [illegible] ने इस प्रक्रिया का यही नाम दे रखा है!

१८

जापानी लेखिका : एशियाई संगठन

पेरिस
२७/५/५२

कल की कांग्रेस की बैठक में ही उस जापानी लेखिका से भेंट हुई थी, जो इस कांग्रेस में जापान की प्रतिनिधि होकर आई हैं। आपका नाम श्रीमती हीराबायाशी है। नाम सुनकर लगा, जैसे भारतीय हीराबाई का यह जापानी रूप हो। और जहाँ तक शील-स्वभाव का सवाल है, देखा उनके चेहरे पर भारतीय महिला के सद्गुणों की पूरी छाप है।

वह हमलोगों से बातें करना चाहती थीं, अतः आज सबेरे-सबेरे हमारे होटल में पहुँची। वह अँगरेजी नहीं जानतीं; इस-लिए अपने साथ एक जापानी युवक को रखती हैं, जो यहाँ पेरिस में ही पढ़ रहा है। उसीके माध्यम से बातें हुईं।

श्रीमती हीराबायाशी मध्य वयस की एक प्रौढ़ विचारों-वाली महिला हैं। आपकी पुस्तकें जापानी साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान रखती हैं। बच्चों के लिए उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने बच्चों के लिए एक उपन्यास लिखा है, जो जापान में बहुत प्रचलित है। जब उन्हें मालूम हुआ, मैं भी बच्चों के लिए लिखता हूँ, उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई।

उनकी वेशभूषा भी निराली थी। वह अपनी जापानी पोशाक में ही यहाँ घूमती-फिरती हैं। जिनमें एकाध उजले हो चले हैं, ऐसे बालों का जापानी जूड़ा, जिसके पिछले हिस्से में दो-तीन फूल खोंसे हुए। कंधे से घुटने से नीचे तक पीले रंग का तहबंद लबादा। हाथ में पंखा जिसे स्वाभाविक ढंग से हमेशा झलती रहतीं। यद्यपि यहाँ भोर में काफी जाड़ा पड़ता है, तोभी पंखा लगातार डुलाती जा रहीं।

उनसे पता चला, जापानी साहित्य बहुत ही भरा-पूरा है। पिछले महायुद्ध में जापान के पराजय के कारण जापान की स्थिति बुरी होने से उसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है, किन्तु तोभी साहित्यिकों ने अपनी लेखनी को विश्राम नहीं लेने दिया है। जापानी कलाकारों को इस बात का दुःख है कि जिस तरह पहले यह मान लिया गया था कि वे फासिस्टों के समर्थक हैं, उसी तरह आज मान लिया गया है कि वे कम्यूनिस्टों के भ्रमजाल में पड़ गये हैं।

जापानी लेखक देशभक्त हैं; इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उनकी देशभक्ति सदा प्रगतिगामी रही है। आज भी वे देश को अपनी लेखनी से प्रगति की ओर ले जाना चाहते हैं; किन्तु, वे तानाशाही से हजार गुणा अच्छा प्रजातन्त्र को समझते हैं! हाँ, उन्हें यह स्वीकार नहीं कि प्रजातन्त्र के नाम पर कोई दूसरा देश उनपर कब्जा किये बैठा रहे। यों ही हिरोशीमा के अणु-विस्फोट को वे भूल नहीं सके हैं। उनकी यह भी धारणा है कि एशियाई

मुल्क होने के कारण ही इस संहारलीला का लक्ष्य उन्हें बनाया गया।

श्रीमती हीराबायाशी चाहती हैं कि एशियाई साहित्यकारों का भी एक सम्मेलन किया जाय—खासकर ऐसे साहित्यकारों का, जिन्हें जनतंत्र पर विश्वास हो। ऐसा सम्मेलन भारत में हो, उनकी यह भी इच्छा है और जब मैंने कहा, क्यों नहीं उसे बुद्ध की भूमि में, बिहार में, किया जाय, तो उनका चेहरा खिल उठा, आँखें चमक पड़ीं! जापान में आज भी बौद्धधर्म का ही सबसे अधिक प्रभाव है। हीराबायाशी तो बौद्धधर्म की ही अनुयायिनी हैं।

शाम को हमारी चित्रकला की प्रदर्शनी में कौकटेल पार्टी थी। सचमुच आधुनिक चित्रों को शैम्पेन होंठ में लगाकर ही समझा जा सकता है! हाथ में रंगबिरंगे पेय पदार्थों से भरे चमकीले नन्हें ग्लासों को लिये, उन्हें जब-तब होंठों से लगाते, लोग चित्रों और मूर्त्तियों के सामने घूम या घूर रहे थे!

इस पार्टी में ही सिलोने से भेंट हुई। इगनात्सियो सिलोने इटली के सुप्रसिद्ध लेखक हैं। "God That Failed" में इनका लेख पढ़ चुका था। सिलोने जीवन के प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारी रहे हैं। अट्ठारह साल की उम्र में ही इन्होंने एक अखबार निकाला था—समाजवादी विचारों से ओतप्रोत। मुसोलिनी के जमाने में इनका अखबार जब्त हुआ, इनपर वारंट निकला। देश छोड़कर स्वीजरलैंड भाग आये। फिर गुप्तवेश से अपने देश

में पहुँच और पाँच वर्षों तक छिपे-छिपे काम करते रहे; किन्तु अन्ततः उन्हें अपने देश को फिर छोड़ देना पड़ा। स्वीज़रलैंड में फिर वापस आये। यहाँ उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं, जिनके कारण उनकी शुहरत यूरप में फैल गई। कुछ दिनों के लिए वह कम्यूनिस्ट पार्टी में भी शामिल हुए थे; किन्तु स्टालिन के कारनामों ने उनकी आँखें, यूरप के अन्य कितने महान लेखकों की तरह खोल दीं। पिछली लड़ाई के समय जब मुसोलिनी ने इटली में प्रवेश किया, फिर गुप्तवेश में, जर्मनों के घेरे को चकमा देकर, वह अपने देश में पहुँचे और अब अपने देश के नव-निर्माण के लिए लोगों को नवीन आदर्शों की ओर प्रेरित कर रहे हैं।

सिलोने मध्यम कद के बड़े सभ्य पुरुष दीखे। ललाट काफी बड़ा, आँखें बड़ी सलोनी। स्वभाव शान्त। दिक्कत यह कि वह भी अंगरेजी नहीं जानते; लेकिन उनकी पत्नी काफी होशियार, अंगरेजी जानने वाली। उन्हीं के माध्यम से उनसे बातें हुईं और तय हुआ, एक दिन वह हमलोगों से होटल में ही बातें करेंगे!

आज यहीं एक अमेरिकन-दम्पति से परिचय हुआ—पति महाशय कवि हैं; पत्नी चित्रकला से शौक रखती है। साधारणतः अमेरिकनों में जो औद्धित्य दीख पड़ता है, उसका बिल्कुल अभाव। यूरोप में पहली बार आये हैं दोनों। दोनों के हृदयों में शायद इस बात की कचोट, कि उनकी मंशा पर शक किया जाता है, उन्हें नई साम्राज्यशाही का प्रतीक माना जाता है?

क्या रूस के टाल्स्टाय या गोर्की को रूसी जारशाही का प्रतीक माना जा सकता था? क्या रोम्याँरोलाँ या जीद फ्रेंच-उपनिवेश-वाद के प्रतीक थे? और, क्या आज भी सार्त्रे, स्पेन्डर या सिलोने को उन देशों की सड़ीगली सामाजिक पद्धति के समर्थक या पोषक मान लिया जाता है? तो फिर हम अमेरिकन कलाकारों ने ही क्या कसूर किया है? उन लोगों की जिह्वायें बंद थीं, किन्तु, उनकी आँखें ये बातें पुकार-पुकार कर कह रही थीं। उन दोनों ने बहुत आग्रह किया, एक बार आकर हमारे देश को भी देख लीजिये।

रात में फिर बीसवीं सदी की सर्वश्रेष्ठ कृतियों के सिलसिले में एक ओपेरा देखने गया। आज का ओपेरा लंदन की सुप्रसिद्ध नाट्यसंस्था 'कार्वेंट गार्डेन' द्वारा दिखाया गया था। इसका निर्देशन किया है, ब्रिटन नामक एक नौजवान संगीतज्ञ ने। इसका नाम था 'बिली बड'। ब्रिटेन नौजवान है, किन्तु संगीत कला में उसने बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली है। 'बिली बड' उसकी प्रसिद्ध कृति है। 'स्कोर' नामक पत्रिका में उसपर आलोचना पढ़ चुका था। दो आलोचकों ने दो तरह के विचार प्रगट किये हैं। सोचा, आज अंगरेजी भाषा रहेगी, अतः सोचने-समझने के लिए अच्छा मसाला मिलेगा।

किन्तु, बात उल्टी निकली। अंगरेजी संगीत के सुर में बँध कर भाषा उसी तरह बिखर गई थी, जिस तरह अपने संगीतज्ञों के आलापों में सूर या तुलसी के गीत बिखर जाते हैं। हाँ, जहाँ-

तहाँ भाषा की एक झलक मिल जाती थी, जिससे टूटे तारों को जोड़कर कुछ-कुछ समझने की चेष्टा की जा सकती थी। समूचा खेल एक जहाज पर होता है! मंच पर जहाज का उतारना कितना कठिन कार्य? किन्तु आज के विज्ञान के युग में क्या असम्भव है? जहाज का ऊपरी छत भी है, नीचे का हिस्सा भी है। खेल का कुछ हिस्सा ऊपर होता है, कुछ नीचे। ओपेरा है, सब संगीत ही संगीत में है। नीचे से ब्रिटेन स्वयं साजों का संचालन कर रहा था। जब-जब इन संगीत संचालकों को छड़ी घुमाते हुए, सारे शरीर को डुलाते हुए, गर्दन हिलाते हुए और बालों को उड़ाते हुए देखता हूँ, अजीब कुतूहल होता है। खेल काफी लम्बा था। काफी देर हुई, एक बजे खेल समाप्त हुआ!

वहाँ से लौट कर होटल आया। बैठकर आगे की यात्रा की पूरी स्कीम बना ली गई है। पहली की सुबह की गाड़ी से यहाँ से रवाना हो जाना है। १० तक लंदन में रहकर वहाँ से हवाई जहाज द्वारा जिनेवा। जिनेवा से इन्टरलाकेन होते, जुंगफ्राउ देखते वेनिस, फ्लोरेंस होते हुए रोम। रोम से १९ को बम्बई के लिए उड़ना!

घड़ी देखते हैं तो तीन बज चुके! चलिये, गुलगुले गद्दे पर; सोइये! अब पेरिस में तीन दिनों के ही मेहमान हैं आप!

१९

क्रान्ति और कला

२८-५-५२
पेरिस

क्रान्ति और कला—मेरा जीवन किस प्रकार इन दो आक-र्षणों के बीच चक्कर काटता रहता है। बहुत दिन हुए, एक दिन एक ज्योतिष ने मेरा हाथ देख कर कहा था, तुम्हारे हाथ में दो शिरोरेखायें हैं; अतः अपने जीवन को दो समानान्तर वृत्तों में घूमते पाओगे। शायद उसने मेरा स्वभाव ही देख कर ऐसा कहा था, क्योंकि उसकी झलक जब-तब मैं भी देखता ही रहता हूँ।

इधर कला-कला में ही फँसा रहा। आज सोचा, क्रान्ति के कुछ शेष अवशेषों को भी देख लूँ। पिछली बार बेस्टिल को देख चुका था, जहाँ फ्रांस की क्रान्ति का जन्म हुआ था। इस बार उसे अच्छी तरह देख लेना चाहा।

अन्य मित्र सौदे-बाजी में लग गये थे, अतः मैं अकेले ही उस ओर चला। मीठी-मीठी धूप! बड़ा सुहावना मौसम। गर्मियों में पेरिस पूरे निखार पर रहती है। अकेला था, अतः मनमाने ढंग से देखता-सुनता बेस्टिल पहुँचा।

बेस्टिल अब एक विशाल, खूबसूरत चौराहा है। बीच में बेस्टिल की स्मृति में एक ऊँचा स्तम्भ है, जिसके ऊपर स्वतंत्रता की देवी की एक सुन्दर मूर्त्ति है। मूर्त्तिकला में फ्रांस प्रसिद्ध रहा ही है; इस स्वतन्त्रता की मूर्त्ति के निर्माण में बड़ी ही सुरुचि, शक्ति और शालीनता का ध्यान रखा गया है। सचमुच लगता है, यदि स्वतंत्रता की कोई देवी हो, तो उसका रूप यही हो सकता है!

इतिहास से पता लगता है, चौदहवीं सदी से ही यहाँ एक किला था, जिसका उपयोग जेलखाने के रूप में किया जाता था। इस जेल में सख्ती नहीं थी, यह बाबू कैदियों के लिए ही सुरक्षित था, जहाँ वे सारी सुविधायें उपयोग करते। बीच में एक गुंबज था, जहाँ पर खड़े होकर वे बाहर के दृश्य भी देखा करते।

१४ जुलाई, १७८९ को पेरिस में क्रान्ति की आग भड़की। क्रान्तिकारियों ने एक जत्था बनाया और अपने साथ मिले हुए कुछ सैनिकों को लेकर इस जेलखाने पर चढ़ाई कर दी। थोड़ी देर तक संघर्ष हुआ, बेचारा जेलर टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया, बचे हुए लोगों ने आत्मसमर्पण किया। क्रान्तिकारियों ने अपने नेताओं को जेल से निकाला और जुलूस बनाकर शहर में घुमाया। चारों ओर क्रान्ति की जय-जय गूँज उठी।

तब से पेरिस ने कितनी ही बार क्रान्ति की लपटें देखी हैं, और यह विचित्र बात है कि बेस्टिल सदा ही उनका केन्द्र

सिद्ध हुआ है। १७९० में उस किले को ध्वस्त कर दिया गया और यहाँ जो फाँसी का तख्ता खड़ा किया गया, उस पर ११७२ आदमियों को बलि चढ़ाया गया। १८०३ में यहाँ पर एक चौराहा बनाया गया। १८३० और १८४८ की क्रान्ति के अवसर पर भी इस चौराहे पर घमासान युद्ध हुए और १८७१ की क्रान्ति की जननी भी यही भूमि रही। अभी उस दिन मजदूरों के एक जुलूस के साथ पुलिस की मुठभेड़ यहीं हुई है।

बीच का यह स्तम्भ "जुलाई-स्तम्भ" कहलाता है। यह १६९ फीट ऊँचा है। समूचा स्तम्भ धातु का है। स्तम्भ पर सोने के अक्षरों में उन शहीदों के नाम लिखे हैं, जिन्होंने अपने जीवन को स्वतन्त्रता के नाम पर उत्सर्ग किया। स्तम्भ के नीचे संगमरमर का गोल चबूतरा है, जिसके भीतर शहीदों की अस्थियाँ संग्रहीत हैं!

मोटरों के रेलपेल को पार कर मैं चबूतरे के निकट पहुँचा और फिर टिकट कटाकर स्तम्भ पर चढ़ा। स्तम्भ के भीतर से ही सीढ़ियाँ हैं। एक-एक कदम ऊपर चढ़ रहा था और मन ही मन फ्रेंच जाति पर अपने को न्योछावर कर रहा था जो अपने शहीदों का ऐसा सम्मान करते हैं! स्तम्भ के ऊपर जाकर सारे पेरिस की एक अच्छी झाँकी ली। आसमान में बादलों का एक दल बड़े वेग से पेरिस की ओर बढ़ रहा था। मैं जल्दी-

जल्द नीचे आया, क्योंकि आज विक्टर ह्यूगो का स्मृति-मन्दिर भी मैं देख लेना चाहता था।

जब मैं टैक्सी के इन्तजार में खड़ा था, एक सज्जन पास ही में आकर खड़े हो गये। लगा ये हमलोगों की ही तरफ के हैं। वह सज्जन भी बार-बार मेरी ओर देख रहे थे। मैंने बढ़ कर पूछा, तो पता चला, वह ईरान से आये हैं, इन्जीनियर हैं, वह भी ह्यूगो का स्मारक देखना चाहते हैं। हम दोनों एक ही टैक्सी पर स्मृति-मन्दिर की ओर चले।

स्ट्रैटफोर्ड में शेक्सपीअर का स्मारक देख चुका हूँ, लंदन में कीट्स का स्मारक देखा था, किन्तु जितना भरा-पूरा यह स्मारक है, उतना वे कहाँ?

यह भवन विक्टर ह्यूगो का अपना भवन था। बीच में एक बगीचा है, चारों ओर गोलाकार घेरे में मकानों का सिलसिला है। इन्हीं लगातार बने मकानों के एक हिस्से में विक्टर ह्यूगो रहते थे। विक्टर ह्यूगो अच्छे खान्दान से थे। उनके पिता एक सेनापति थे। भीतर पहुँचते ही मकान का रोब दिल पर छाने लगता है। तिमंजिला मकान है। ऊपर के दो मंजिलों पर विक्टर के स्मृति-चिन्हों का विपुल संग्रह है। इस मकान को विक्टर ह्यूगो ने खुद सजाया-सँवारा था! उनकी मृत्यु के बाद भी उसे उसी रूप में रखा गया और अन्त में उनके वारिशों ने इस भवन को सरकार को अर्पित कर दिया! अब सरकार ने उसे म्यूजियम के रूप में परिणत कर दिया है!

सीढ़ी से ज्योंही ऊपर चढ़िये, ह्यूगो का व्यक्तित्व और महत्व आपके हृदय पर स्थायी प्रभाव डालने लगता है ! नीचे से ऊपर तक चित्रों का ताँता है, जिनसे विक्टर ह्यूगो की भिन्न-भिन्न आकृतियाँ और उसके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक घटनायें स्पष्ट होती जाती हैं ! फिर कमरे शुरू हो जाते हैं, तीन बड़े-बड़े कमरे जिनमें अनेक स्मृति चिन्ह ! फिर पाँच छोटे-छोटे कमरे ! हम इनमें से अन्तिम कमरे से ही शुरू करें

इस अन्तिम कमरे में विक्टर ह्यूगो सोते और विश्राम करते थे ! उनका पलंग रखा है—गद्दे, तकिया, आदि से सुसज्जित ! पलंग से ऊपर एक चित्र है, उनकी मृत्यु हो जाने के बाद की। मालूम होता है, वह अमर कलाकार अपने पलंग पर अनन्त निद्रा में सोया हुआ है। पलंग की बगल में एक टेबुल है; काफी ऊँचा। ह्यूगो का क़द ठिंगना था। वह खड़े-खड़े लिखा करते थे। रात में कभी-कभी सोते से उठकर भी लिखने लगते थे। टेबुल के ऊपर उनकी दावात और क़लम भी उसी रूप में रखी हुई हैं। मैंने दोनों को चूमा। लिखते समय वह अपना एक पैर टेबुल के निचली डांडी पर रखा करते थे। उसके घिस्से उस डांडी पर अब तक मौजूद हैं। इच्छा होती थी, उसे भी चूम लूँ।

उसके बाद के कमरे में ह्यूगो पढ़ते-लिखते थे। दीवाल की खूँटियों से उनकी चीजें लटक रही थीं। उनकी पोशाकों से उनकी श्रीसम्पन्नता टपक रही थी। कई जरदार चोगे लटक

रहे थे। दो तलवारें भी लटक रही थीं। जो टोपी वह पहना करते थे, वहाँ वह भी रखी है।

तीसरे और चौथे कमरे उनके परिवार से सम्बन्ध रखते हैं। उनकी पत्नी बहुत सुन्दरी थी, उसके कई चित्र वहाँ हैं। विवाह होने के पहले जो उसने प्रेमपत्र लिखे थे, वे सब वहाँ सुरक्षित रखे गये हैं। उनकी सन्तानों के चित्र भी वहाँ हैं। पाँचवें कमरे में रोदिन की बनाई ह्यूगो की काँसे की एक मूर्ति है। रोदिन की कला पाकर कलाकार की आकृति सजीव हो उठी है। इसी कमरे में ह्यूगो के बालों के चार गुच्छे हैं जो चार अवस्थाओं में उतारे गये थे—१८३५, १८४८, १८५७, और १८८५ में! जो १८३५ में सुनहले चमकीले थे वेही बाल १८८५ में कैसे श्वेत-शुभ्र बन गये थे!

बड़े घरों में से दो में खाने-पीने की सामग्रियाँ रखी जाती थीं और भोजन किया जाता था। तरह-तरह की रकाबियाँ, तश्तरियाँ, प्यालियाँ, ग्लास आदि एकत्र करने का शौक ह्यूगो को था। इनके अगणित सेट वहाँ सजाकर रखे गये हैं। बड़े ही सुन्दर; निश्चय ही बहुमूल्य। खाने के कमरे में एक टेबुल है, जिसपर कभी फ्रांस के चार कलाकार एक साथ बैठे थे, गप्पें लड़ाई थीं, खाना खाया था और इन क्षणों को स्थायी रखने के लिए उन चारों ने एक-एक कार्ड पर कुछ लिख दिया था। चारों की चार दावातें, चार कलमें टेबुल के ऊपर रखी हुई हैं और चारों

कार्ड उसके दराजों में। ह्यूगो, ड्यूमा, सांद और लामार्तिन—ये ही चार कलाकार! लामार्तिन की लिपि सबसे सुन्दर है—ह्यूगो बहुत ही फेंक कर लिखते थे और काट कूट भी किया करते थे। ह्यूगो की पुस्तकों की जो हस्तलिखित प्रतियाँ हैं, उनमें भी बहुत कटकूट पाई जाती है।

बहुत देर तक देखते-घूमते नीचे उतरे। वहाँ कुछ तस्वीरें खरीदीं, एक पुस्तिका भी। पुस्तकें फ्रेंच में ही थीं, अतः उनका खरीदना व्यर्थ ही था।

आज कांग्रेस की साहित्यिक बैठक में लुई मैक्निस बोलने वाले थे। अतः वहाँ गया। लुई की जबान भी बड़ी तेज-तर्रार है!

दोपहर से ही टिप-टिप हो रही थी। घर पर आकर अपना वेदर कोट खोजता हूँ, तो गायब। पिछली बार जब आया था, प्रायः ही वर्षा हो जाया करती थी। अतः शुरू में उसे सदा साथ रखा करता था। मालूम होता है, जल्दबाजी में कहीं छोड़ आया! अब जब उसकी जरूरत पड़ी तो पाता हूँ, उसे खो चुका हूँ! अजीब स्वभाव मेरा! चीजों को सम्हाल कर रखना तो जानता ही नहीं हूँ। किसी तरह यात्रा कट जाय, तो समझूँ, निबह गई।

२०

फुलवाड़ी : दूतावास : सिलोने

२६।५।५२
पेरिस

स्वभावतः ही देर से उठा। डायरी लिखते-लिखते ही तो ढाई बज चुके थे रात। फिर पेरिस वाली किताब भी तो बहुत समय ले लेती है।

पहले से ही तय था, आज रेल में सीट रिज़र्व करा ली जाय। शिवाजी और देशपांडे गये और यह काम करा लाये।

खा-पीकर हम लुक्जमबुर्ग की फुलवाड़ी देखने चले—जंगल देख लिया था, छोटे-छोटे पार्क भी देखे थे, तिवलरी की सैर भी कर चुका था, सोचा, पेरिस की इस सुप्रसिद्ध फुलवाड़ी को भी चलते-चलाते देख ही लेना चाहिये। एक दिन इसके फाटक से लौट आया था, अतः उत्सुकता बनी ही हुई थी।

यह फुलवाड़ी बहुत पुरानी है। क्रान्ति के कई झोंकों का सामना इसे करना पड़ा है, तोभी बहुतों की दृष्टि में, यह पेरिस की सबसे ख़ूबसूरत वाटिका है। इसका क्षेत्रफल ५६ एकड़ है। चारों ओर घने पेड़ों से घिरी, अनेकानेक सुन्दर मूर्त्तियों से

सजी, बीच में एक दर्पण ऐसे तालाब से सुशोभित यह फुलवाड़ी सचमुच देखने ही लायक है। कहा जाता है, यह फुलवाड़ी कवियों और कलाकारों की प्रेरणाभूमि रही है और उनमें से कई के जीवन से इसका गाढ़ा सम्बन्ध रहा है।

आज धूप अच्छी खिली हुई थी; अतः यहाँ बच्चों और खिलाड़ियों की जमघट जुटी हुई थी। घने पेड़ों की छाया से निकल कर ज्योंही हम फुलवाड़ी के सामने हुए, आँखें चकाचौंध हो गईं। क्यारियों में रंग-बिरंगे फूल फूल रहे; रविशों पर चलते-फिरते फूल नज़र आते। बीच-बीच की कला-मूर्त्तियाँ मानो उन नाज़नियों को चुनौती देतीं, बताओ, ब्रह्मा की सृष्टि सुन्दर या कलाकार की। बच्चे उछल-कूद रहे; उनमें से कितने ही बीच के तालाब में अपनी कागजी नावें सँवा रहे और जब-तब तालियाँ पीट रहे।

फुलवाड़ी से सटा लुकजेम्बुर्ग का महल। इस महल को फ्लोरेंस की राजकुमारी मेरी दू मेडिसी ने बनवाया था, जब वह फ्रांस की सम्राज्ञी के पद पर अधिष्ठित हुई थी। फ्लोरेंस के पेत्ती-महल के नमूने पर ही इसे बनाया गया था और उसीके अनुरूप इस वाटिका की सृष्टि की गई थी। यह महल भी कितने ही ऐतिहासिक उतार-चढ़ाव देख चुका है। कभी यह राज-भवन रहा, कभी यह जेलखाना बना, अब यह कलाभवन के रूप में अवस्थित है। क्रान्ति के बाद कितने ही बड़े लोगों को इसीमें कैद करके रखा गया था। सुप्रसिद्ध क्रान्ति-नेता दान्तन

यहीं कैद किया गया था। इसकी अँगनाई कितने ही नामी लोगों के खून से कई बार सींची जा चुकी है।

पिछली लड़ाई के समय जर्मनों ने फ्रांस पर कब्जा करने के बाद इस महल को अपने हवाई बेड़े का अड्डा बनाया था। इसके चारों ओर उन्होंने नाकेबंदी की थी; किन्तु उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ गये और यह स्थान आसानी से मुक्तिसेना के हाथों में आ गया!

इस बगीचे में पुतली के नाच का थियेटर भी है, जिससे यह बच्चों का बहुत प्यारा स्थान बन गया है! उन बच्चों को देखते हुए मैं अघाता नहीं था! गोरे-गोरे, तन्दुरुस्त, प्रसन्न बच्चे, किलक रहे, उछल रहे! मातायें अपने शिशुओं को लिये धूप में बैठी, आनन्द मना रहीं। एक गुल्ला-गुल्ला बच्चा अपनी माँ की गोद में बैठा हमें बड़ी उत्सुकता से घूर रहा। मैंने आगे बढ़ कर उसे जरा दुलरा दिया, बच्चे ने अपने दूध-धोये दाँतों को चमकाते हुए मेरी ओर हाथ बढ़ा दिया। माँ उसकी यह हालत देख कर मुस्कुरा पड़ी। यह शह पाकर मैंने भी उसके सामने अपने हाथ बढ़ा दिये। बच्चे ने हाथ पकड़ लिया; वह छोड़ता ही नहीं था। उसकी माँ बच्चे की भावुकता पर हँस रही थी, बच्चा आनन्द से उछल रहा था, मैं तो ऐसा भाव-मुग्ध था कि आँखों से आँसू छलक आये। अरे, सब देश के बच्चे एक-से होते हैं—सँवलिया भाव के भूखे!

मेरी भावुकता बढ़ी। उसे गोद में ले लिया और शीला से कहा, उसका फोटो ले लो; उसकी माँ को भी बगल में खड़ा कर लिया। शीला ने फोटो लिया; माँ के चेहरे से भी भावुकता टपकी पड़ती थी। उसने मेरी डायरी में अपना पता लिख दिया! न-जाने फोटो कैसा आता है? अच्छा आने पर उसके पास एक जरूर भेज दूँगा।

शाम को भारतीय दूतावास में हमारे सम्मान में कालेलकर ने एक पार्टी रखी थी। उन्होंने भिन्न भिन्न देशों के प्रेस-एटैचियों को भी निमंत्रित किया था। कालेलकर की पत्नी अतिथियों का सत्कार कर रही थीं। सुना, वह गुजराती हैं, एक बड़े ही अच्छे खानदान की लड़की। आगत सज्जनों के साथ कितनी ही श्रीमतियाँ भी आईं। मिश्र के प्रतिनिधि ने बड़ी देर तक बातें कीं! युगोस्लाविया के प्रतिनिधि का सौजन्य भी सराहनीय था। मैंने उनसे कहा कि किस प्रकार इच्छा रहते हुए भी मैं उनके देश को देखने से अब तक वंचित रहा। उन्होंने एक बार वहाँ आने का आग्रह किया। बेलजियम और बर्मा के प्रतिनिधि भी बड़े मिलनसार थे। कालेलकर ने बताया, उन्होंने 'लौहावृत पर्दे' वाले देशों के प्रेस-प्रतिनिधियों को भी निमंत्रित किया था; किन्तु आज अचानक उन सबों ने आने में असमर्थता प्रगट की! क्यों? क्या यह इसलिए कि सांस्कृतिक स्वाधीनता की यह कॉन्फ्रेंस तानाशाही की निन्दा करती है!

यहीं हमने दूतावास के एक सज्जन को देखा, जो पार्टी के

पूरे समय तक छोकरियों में ही उलझे रहे ! पता चला, बेचारे बड़े भाग्यशाली हैं—जब तक पढ़ते रहे, परीक्षाओं में सदा अन्तिम स्थान पाने का सौभाग्य प्राप्त किया ! किन्तु बड़े घर के बेटे, फिर उससे भी बड़े घर की लाड़ली लड़की से शादी कर ली ! फिर क्या है, यहाँ एक बड़े पद पर भेज दिये गये हैं ! उनकी बीबी दिल्ली में मजे लूट रही हैं ! यह पेरिस की रंगीनियों में डूबे हुए हैं ! आफिस आते हैं, रोब जमाते हैं, चल देते हैं। एम्बेसेडर को भी क्या हिम्मत कि इनसे रोकटोक करें !

अजीब दशा है, जहाँ जाते हैं, भारतीय दूतावासों की भद्दी कहानियाँ सुननी पड़ती हैं !

हाँ, आज सबेरे ही सिलोने से बातें हुईं। वहीं उनकी पत्नी के माध्यम से। भारत की भाषाओं की प्रवृत्तियों पर बातें चलीं। फिर स्वाधीनता और तानाशाही के तत्वों पर बातें हुईं। इटली के सम्बन्ध में भी हमने पूछताछ की ! सिलोने सिर्फ लेखक नहीं हैं, वह स्वाधीनतायुद्ध के सेनानी भी हैं। अतः राजनीतिक चर्चायें भी हुईं। उन्होंने बताया कि इटली में कम्यूनिज्म की बाढ़ रुक गई है और वह धीरे-धीरे नष्ट हो जायगी—इटली की धार्मिक प्रवृत्तियाँ इसे जनता में जड़ नहीं जमाने देंगी। जब उन्हें मालूम हुआ, हिन्दी क्षेत्रों में, जिसकी जनसंख्या बीस करोड़ के लगभग है, एक भी कम्यूनिस्ट नहीं चुना गया, तो उन्हें दुखमिश्रित आश्चर्य हुआ। राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर भी बातें हुईं। हमारे एक दोस्त ने कहा, दक्षिण में उसका विरोध हो रहा

है। उन्होंने तुरत पूछा—वे चाहते क्या हैं ? जब कहा गया—अँगरेजी, तब वह झुँझला उठे। सचमुच किसी विदेशी के लिए यह कल्पना भी अद्भुत लगती है कि कोई देश दूसरे देश की भाषा को अपने लिए राष्ट्रभाषा बनाने को भी सोच सके। हमारे वह मित्र भी बहुत झेंपे। उन्होंने कैफियत दी—सिर्फ थोड़े दिनों के लिए ही ऐसा चाहा जा रहा है, जिसमें लोग हिन्दी पढ़-लिख लें। किन्तु सिलोने के चेहरे पर की शिकन इतने से ही नहीं गई।

—०—

२१

कांग्रेस का आखिरी जल्सा

३०/५/५२
पेरिस

स्वीज़रलैंड और इटली के लिए विज़ा लेना था, कालेकर ने कहा था, दूतावास से वह प्रबंध करा देंगे। अतः हम सवेरे सबसे पहले दूतावास की ओर गये और वहाँ से स्वीज़रलैंड के दूतावास में आये। इसी में काफी समय लग गया, अतः सोचा गया, अब इटली का विज़ा लंदन में ही बनवा लेंगे।

इसी विज़ा के चलते हम भोर में उस सिनेमाघर में नहीं जा सके, जहाँ इस कांग्रेस की चित्रावली दिखलाई गई थी। सुना, हम सब लोग उस चित्रावली में आये हैं।

शाम को संगीत-भवन में कांग्रेस का अन्तिम जल्सा हुआ, जहाँ इसका उद्घाटन-समारोह हुआ था। आज भी भवन में लोग खचाखच भरे हुए थे! आज सम्मेलन में आये कुछ विशिष्ट लोगों को ऊपर के मंच पर बिठलाया गया था—भारतीय प्रतिनिधिमंडल को भी वहीं बिठलाया गया था। मेरी बगल में ही जापानी लेखिका श्रीमती हीराबायाशी

बैठी हुई थीं। बेचारी कुछ बातें करना चाहती थीं, किन्तु भाषा का व्यवधान—रह-रह कर सिर्फ मुस्करा देतीं।

आज के वक्ताओं में ओडेन, फाकनर, रूजमों, मादारियागा और आन्द्रे मालरो थे। फाकनर ने ही प्रारम्भ किया। नोबेल-पुरस्कार-विजेता के मुँह से हम अधिक सुनना चाहते थे; किन्तु उन्होंने दस-पन्द्रह वाक्यों में ही समाप्त कर दिया। ललाट पर बार-बार उलझ जाते हुए बालों को सम्हालते हुए ओडेन ने एक अच्छी वक्तृता दी। किन्तु, सबसे महत्वपूर्ण भाषण तो था आन्द्रे मालरो का। वह सुनने ही लायक नहीं, देखने लायक भी था। बार-बार तालियाँ पिटी जाती थीं, वह बड़े जोशोखरोस से बोल रहे थे। फ्रेंच भाषा में होने के कारण हम उनका भाषण समझ तो नहीं सकते थे, किन्तु इधर-उधर जो शब्द पकड़ जाते थे, उससे अनुभव कर रहे थे, वह क्या बोल रहे हैं। जब वह बोल रहे थे, बीच में ही किसी ने ऊपर की बालकनी से कुछ पर्चे नीचे गिराये! उन पर्चों ने मालरो को और उत्तेजित किया, क्योंकि वह जानते थे, किन लोगों की यह शरारत हो सकती है। जोशोखरोस के साथ उनकी भावभंगिमा भी देखने लायक थी। हाथ उछल रहे थे, उँगुलियाँ नाच रही थीं, स्वर में उतार-चढ़ाव, चेहरा बार-बार इधर-उधर होता, कभी-कभी उत्तेजना में वह कुर्सी पर जोरों से हुमच जाते। उस दिन ग्विहेलो का भाषण सुना था, आज मालरो का भाषण सुन रहे थे। फ्रांस के लोग प्राणपण से बोलते हैं—

हमारे बंगाली भाइयों की तरह ! बार-बार कैमरे उनकी भिन्न भिन्न भंगिमाओं को पकड़ने के लिए जैसे होड़ कर रहे हैं।

शाम को एक सज्जन के घर पर कौकटेल पार्टी थी। जब से यहाँ आया, पार्टियों की भरमार है। मैं उन सब में शामिल नहीं हो सका ; क्योंकि ऐसी पार्टियों में बहुत समय लग जाता है। पीजिये, गप्प कीजिये और तब तक नहीं लौटिये जब तक पैर डगमग नहीं करने लगें। मैं तो अपने समय का उपयोग मुख्यत: देखने-सुनने और पढ़ने-लिखने में ही करता रहा। पेरिस की कारपोरेशन के अध्यक्ष ने भी एक पार्टी दी थी ; उनका शानदार निमंत्रण-पत्र अभी तक रखा है, किन्तु वहाँ भी नहीं जा सका। किन्तु सोचा, अब एक ही दिन रहना है ; तो इस अन्तिम पार्टी में चलना ही चाहिये।

खोजते-ढूँढ़ते उस सज्जन के घर पर पहुँचा। काफी शानदार पार्टी थी। पेरिस का सामाजिक जीवन बड़ा ही रंगीन है। बड़ी सहृदयता से मिलते हैं, बड़े ही खुलकर बातें करते हैं। घरों की सजावट में कला पर काफी ध्यान दिया जाता है। फ्रांस में कसीदे का काम कला के अन्तिम छोर तक पहुँच गया हो जैसे। हर घर में ऐसे कुछ काम लटकते हुए मिलेंगे। लड़कियाँ कहेंगी, यह मैंने तैयार किया है, यह अमुक कलाकार की अमुक कृति पर तैयार किया गया है। प्रौढ़ायें कहेंगी— जब मैं कुमारी थी, इसे तैयार किया था और यह तो मेरी सास

की कृति है। अपने यहाँ भी कसीदे का काम बहुत अच्छा होता था। बचपन में देखता था, मेरी फूआजी, बहनें कसीदे में लगी रहती थीं। अब तो उसे पुराना कह कर छोड़ दिया गया है और रंगीन तागों से बने थोड़े फूल और पत्तियों पर ही सन्तोष कर लिया जाता है।

कांग्रेस के जलसे से लौट कर जब अपने कमरे में लौटा हूँ—बार-बार सोचता हूँ—क्या इस कांग्रेस में शामिल होना फल-दायक हुआ। जब चलने लगा था, आचार्य नरेन्द्रदेवजी ने एक पत्र लिखा था, देखियेगा, जरा होशियारी से वहाँ की गतिविधि समझने की कोशिश कीजियेगा। उनके पत्र ने मुझे और भी हिचकिचाहट में डाल दिया था। किन्तु, यहाँ आने पर जो कुछ देखा सुना, मुझे प्रसन्नता ही है कि यहाँ आया! मानता हूँ, यहाँ कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो खामखा कम्यूनिस्टों का हौआ लिये फिरते हैं; वे इस संस्था को अपना राजनीतिक जामा पहनाना चाहते हैं जिसका उद्देश्य हो रूस के प्रति घृणा पैदा करना। किन्तु, मुझे यहाँ ऐसे लोग अधिक मिले, जो सांस्कृतिक स्वाधीनता के प्रति ईमानदारी से सोचते हैं और उसकी रक्षा में कला और संस्कृति की रक्षा, या यों कहिये, तो मानवता की रक्षा समझते हैं। अमेरिका के लोगों की अधिकता रही इसमें, उस दिन श्रीमती हीराबायाशी ने भी इस ओर ध्यान आकृष्ट कराया था। किन्तु मैंने देखा, उनमें से भी बहुत से लोग ऐसे हैं, जो स्वतंत्र चिन्तक हैं। किसी देश का लेबुल

लगा कर किसी को बदनाम करना—यह मुझे बहुत ही बुरा लगता है। यहाँ तो उसके प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिले। हिन्दी में रूस और चीन के लिए जितना प्रचार मैंने किया, शायद ही किसी ने किया हो। 'लाल रूस' और 'लाल चीन'—मैंने दो पुस्तकें भी लिखीं और आज भी उन पुस्तकों के लिए मुझे पश्चाताप नहीं है। जो जिसका अधिकारी है, वह उसे दिया ही जाना चाहिये। किन्तु, वह एकांगी नहीं होना चाहिये। जहाँ बुराई दिखे, उसे नहीं कहना, अच्छाई के साथ अन्याय करना है; यों ही, किसी बुराई के चलते अच्छाई को भी पी जाना, अन्याय है!

आज संसार में ऐसी प्रवृत्तियाँ फैल रही हैं जो कला के लिए, संस्कृति के लिए, सभ्यता के लिए, मानवता के लिए खतरनाक हैं। ऐसी प्रवृत्तियों के विरुद्ध आवाज़ उठाना और साथ ही एक स्वतंत्र, सम्पन्न, सुखी, आनन्दी समाज की सृष्टि के लिए प्रयत्न करते जाना—यह सिर्फ साहित्यकार या कलाकार का ही कर्तव्य नहीं है, वरन् युग की पुकार भी यही है।

२२

पेरिस, सलाम !

३१।५।५२
पेरिस

आज पेरिस का अन्तिम दिन है। बहुत देखा, बहुत सुना, बहुत पढ़ा, बहुत लिखा। 'अब तो चलाचली की वेला' !

भोर में एक अनोखा आयोजन था। सिनेमा-घरों में दिखलाये जाने के लिए एक सवाक् चित्रावली तैयार करने के लिए एक साहित्यिक गोष्ठी एक स्टूडियो में आयोजित की गई थी। उसमें हम दो भारतीय थे—सुब्रह्मण्यम् और मैं। सबेरे ही हमें मोटर से उस स्टूडियो में ले जाया गया।

दो-दो आदमियों का एक-एक दल बनाया गया। मेरे साथ श्रीमती पोर्टर थीं—अमेरिका की सुप्रसिद्ध लेखिका। बहुत वृद्ध हो गई हैं, किन्तु अब भी लिखे जा रही हैं। यहाँ की साहित्यिक मंडली में उनका बड़ा सम्मान देखा। बड़ी शान्त स्वभाव की।

पहले उनके साथ स्टूडियो में प्रवेश करते समय की चित्रावली ली गई। हम दोनों कुछ बातें करते, स्टूडियो में

प्रवेश कर रहे हैं। बीच में अचानक मुझे हँसी आ गई। माना गया, यह बड़ा ही स्वाभाविक हुआ !

फिर हम टेबुल के चारो ओर बैठ गये। श्रीमती पोर्टर ने बातें शुरू कीं। साहित्य को राजनीति का पुछल्ला बनाने से उसकी गति रुक जाती है, राजनीति उसपर प्रभुत्व करने लगती है, वह मानवता से अपना नाता तोड़ कर किसी पार्टी के पहिये में बँध जाता है, उसकी महत्ता नष्ट हो जाती है—वार्तालाप का प्रमुख सूत्र यही था। इसी विषय पर हमें बारी-बारी से अपने विचार रखने थे। अजीब अनुभव। मुँह के सामने माइक, सामने कैमरा। कभी एक सूत्र में भी गड़बड़ी हुई, तो फिर से दुहराना पड़ता। मैंने बताया, हमारे देश में सदा सरस्वती के सपूतों की महत्ता राजनीतिज्ञों के ऊपर रही है। अकबर की अपेक्षा तुलसीदास का प्रभाव भारतीय जीवन पर अधिक है। इस युग में भी रवीन्द्रनाथ का जैसा प्रभाव हम पर है, महान नेहरू का वैसा नहीं है। नेहरू का नाम लेते समय मैंने जानबूझ कर महान शब्द जोड़ा !

अन्त में हमें उस स्टूडियो में लगे चित्रों को देखते हुए निकलना पड़ा—वही स्वाभाविक ढंग से, सिगरेट का धुआँ उड़ाते, किसी-किसी चित्र के निकट जरा ठहरते, इधर-उधर नजर दौड़ाते। यह चित्रावली यूरोप और अमेरिका में दिखलाई जायगी ; कहा गया, भारत में भी वे इसे भेजेंगे।

वहाँ से आकर जल्दी जल्दी खा-पी लिया फिर चले लाफेत गैलरी में चीजें खरीदने। सुना था, पेरिस में बहुत मोल-तोल होता है, इस दूकान में इसकी झंझट नहीं। प्रयोजन की सारी चीजें यहाँ एक ही जगह मिल जाती हैं, यह दूसरी सुविधा। पिछली बार भी यहीं सौदे खरीदे थे। इसी की तरह की एक और दूकान भी है, किन्तु, परिचित स्थान में ही जाना उचित समझा। बच्चों के लिए कुछ रेशमी कपड़े और अन्य प्रियजनों के लिए कुछ रूमाल, टाई आदि। फिर यदि पेरिस में इत्र-लेवेन्डर आदि नहीं खरीदा, तो सौदा ही क्या हुआ? एक डेढ़-घंटे में ही दो-तीन सौ रुपये स्वाहा करके हँसते-हँसते लौटा।

शाम से ही जोरों से बूँदाबूँदी होने लगी। पिछले साल जिस दिन चलने लगा था, पेरिस ने यही रूप धारण किया था। क्या अपनी अन्तिम झाँकी दिखाने से पेरिस लजाती है? या वह चाहती है, लोग कुछ अरमान दिल में लिये हुए जाँय। या अपने प्रिय अतिथियों की बिदाई की कल्पना ही उसकी आँखों में आँसू ला देते हैं।

हाँ, हम उसके प्रिय अतिथि हैं। इन बीस-इक्कीस दिनों में पेरिस से हमने प्रेम का नाता जोड़ लिया है। शीलाजी कह रही है, यदि काफी पैसे हों, तो वह शाँ जलीजे में ही एक मकान लेकर जिन्दगी गुजार दें। पेरिस कलाकारों की प्यारी भूमि रही है। यूरोप के बड़े से बड़े कलाकार ने अपनी कला की सार्थकता तब

सबकी जब पेरिस ने उसपर स्वीकृति की मुहर लगा दी। यहाँ का सारा वातावरण कलात्मक है। यदि कोई कला का अध्ययन ही करना चाहे, तो अपनी पूरी जिन्दगी यहाँ उसमें लगा दे सकता है। पुरानी कलाओं के संग्रह के रूप में म्यूज़ियम आदि तो हैं ही, कला के नित-नये प्रयोग यहाँ होते रहते हैं, जिनके नित-नये रूप सामने आते रहते हैं। एक छोटा-सा कलाकार तो मेरे हृदय में भी बैठा हुआ है; वह इस पुरी को प्रेम से क्यों नहीं देखे ? इससे बिछुड़न की कल्पना पर वह क्यों नहीं पसीज उठे।

पिछले साल सिर्फ तीन दिनों के लिए पेरिस रहा, इस बार तीन सप्ताह गुजरे। किन्तु तृप्ति नहीं हुई। वर्षा की ये बूँदें कहती हैं, कितनी भी आँखें गीली करो, आँसुओं की झरी लगा दो, कामनायें कभी तृप्त नहीं हुईं—नहीं हुईं !

इस बूँदाबूँदी में भी शाम को बाहर निकल ही पड़ा अर्क-द-ट्रम्फ के नीचे जाकर 'अज्ञात शहीद' की ताबूत पर जलती स्मृति-शिखा को सिर नवाया। इस ताबूत के निकट, इसकी इस सतत प्रज्वलित स्मृति-शिखा के निकट, किस-किस के सिर नहीं झुके हैं। अभी दिन, यूरोपीय सेना का अमेरिकन सेनापति इसनहावर जा रहा था, तो उसने यहाँ आकर सलामी दी। परसों उसकी जगह रिजवे आया, तो सबसे पहले यहीं आकर सिर झुकाया। पिछले महायुद्ध में जब कि गोले की मुक्ति-सेना ने पेरिस में प्रवेश किया, सबसे पहले वह यहीं आया

और झुककर सलामी दी और जब पेरिस की मुक्ति के बाद चर्चिल पहली बार पेरिस पहुँचा, तो उसने भी सबसे पहले यहीं आकर सिजदा किया ! संयोग, जिस दिन हमलोग आये थे, सबसे पहले इसी को देखने का सौभाग्य प्राप्त किया था और आज अन्तिम बार इसी को सलाम करके जा रहा हूँ ।

अहा ! इस बूँदाबूँदी की सुहानी फिजा में आर्क-द-ट्रम्फ से कन्कर्ड तक का समाँ कैसा सुहावना लग रहा था ! लाल, हरी, उजली रोशनी से सारा पथ जगमग हो रहा था । कन्कर्ड का वह मिश्री स्तूप बिजली की जगमगाहट और बूँदों की झड़ी के बीच कैसा दिव्य-भव्य लग रहा था । यह शाहंशाह की भूमि, यह क्रान्ति की भूमि—बीच में शाँ जलीजे की रूमानी झलमल ! पेरिस की सारी गरिमा यहाँ एकबारगी ही आँखों के सामने जगमग कर उठी ! इस जगमग की स्मृति लिये, पेरिस को इस बार की अन्तिम सलामी देकर, दो बजे रात को सोने जा रहा हूँ—सलाम पेरिस ; कला की देवी, क्रान्ति की देवी, नमस्ते, नमस्ते !

२३

इँगलैंड की ओर

लंदन
१/६/५२।

पेरिस से लंदन—यह क्रम ही गलत है। पहले लंदन देखिये, फिर पेरिस पहुँचिये। लंदन में मानव का उद्योग, पराक्रम, नियमित जीवन आदि देख लीजिये; फिर पेरिस में जाकर सौन्दर्य, राग-रंग, और स्वच्छन्द जीवन देखिये और उसकी मधुर स्मृति लिये अपने देश पहुँचिये। सौन्दर्य देखनेवाली आँखें शौर्य पर तुरत नहीं टिकतीं, किन्तु शौर्य के बाद सौन्दर्य बहुत ही प्यारा लगता है न?

तभी तो आज शाम को लंदन पहुँच कर जब हम सांध्य-भ्रमण को निकले, हमारे साथियों को लंदन सूना-ही-सूना, रूखा-ही-रूखा लगा। कहाँ शाँ जलीजे और कहाँ पिकेडली! पिकेडली लंदन की सबसे अधिक गुलजार चौक है, किन्तु शाँ जलीजे के सामने यह क्या है? न वह रंग, न वह रूप। फ्रांस की बेटियों के रूप से इंगलैंड की बेटियाँ कौन-सा चेहरा लेकर मुकाबिला करेंगी? यों सीधे भारत से जाइये, तो उनके

गोरे-गोरे चेहरे आपको मोहेंगे ; किन्तु जब पेरिस की परियों को देख लिया, फिर आपकी आँखों पर जल्द कोई रमणी टिक नहीं सकती।

पिकेडली से ट्राफलगर स्क्वायर, फिर ह्वाइटहॉल, टेन डाउनिंग स्ट्रीट, पार्लियामेंट-भवन, पुल पर से टेम्स की झांकी— किन्तु, हमारे साथियों का मन कहीं नहीं रम सका।

यहाँ आज रात में जिस होटल में ठहरना पड़ा है, कहाँ यह और कहाँ फ्रैंकलिन द रूजवेल्ट! और तमाशा यह कि एक रात के लिए यहाँ हमें पेरिस के होटल की अपेक्षा दूने पैसे देने पड़े हैं। हमारे साथियों को ऐसा लगा कि हम स्वर्ग से पृथ्वी पर पटक दिये गये—नरक में नहीं गिरे, यही गनीमत!

आज भोर में ही पेरिस छोड़ दिया। छोड़ते समय मन कुछ भारी लग रहा था। खैर, छोड़ना था, छोड़ दिया। आखिर कहाँ-कहाँ घोंसला बनाया जाता?

रेल में जिस डब्बे में मैं बैठा, मेरे सामने की सीट पर एक छोटी-सी बच्ची और उसकी माँ बैठी थीं। बच्ची कितनी खूबसूरत! सुनहरे बाल, चम्पे की कली-सी मुखाकृति, नीली आँखें, लाल होंठ, छींट का फ्राक—सचमुच देवकन्या-सी लगती थी। हाथ में एक गुड़िया लिये थी। उसकी माँ बच्ची के साथ इँगलैंड जा रही थी, हाथ में फ्रेंच के माध्यम से अँगरेजी सीखने की एक किताब थी। वह बेचारी बड़े ध्यान से उसे पढ़ रही थी। अपनी बच्ची की ओर स्नेह से निहारता हुआ मुझे देख कर

दो-चार शब्द कहे। अंगरेजी उच्चारण बहुत अजीब ढंग से करती थी!

रास्ते-भर फ्रांस की देहात देखते आये। असल में हम जिसे गाँव कहते हैं, वैसे गाँव यूरोप भर में नहीं हैं। न कहीं फूस के घर, न गंदगी का समुद्र, न फटेहाली की हद। घर-पर-घर, जैसे अपने देश के गाँवों में होते हैं, वैसी बस्ती भी नहीं। खेतों में, हरियालियों के बीच, जहाँ-तहाँ कुछ खपरैल मकान, काफी साफ, सुन्दर। यही गाँव है। फ्रांस आर्थिक दृष्टि से यूरोप में बहुत ही गिरा हुआ देश है, तोभी उसके गाँवों को देख कर मन ललचा रहा था। यदि अपने देश के गाँवों में इसी तरह के ईंट और खपरैल के मकान बन जाँय; मकानों के आस-पास फलों और फूलों के पेड़ और पौधे हों, खेतों में हरियाली उमड़ रही हो, जहाँ-तहाँ पुष्ट गायें चर रही हों—यदि इतना भी हो जाय, तो फिर क्या कहना?

फ्राँस के सीमा पर पहुँच कर हमने सामने समुद्र को उफनाते हुए देखा। यहाँ से इँगलैंड के बीच इक्कीस मील का समुद्र है। इस बन्दरगाह का नाम डीएप है और यहाँ से चल कर हमारा जहाज इंगलैंड के न्यूऐवन बन्दरगाह पर लगेगा। पिछले महायुद्ध के सुप्रसिद्ध डनकर्क-कांड की रंगस्थली यही जगह रही है, जब ऊपर से जर्मनों के बम्बर गोले बरसा रहे थे और नीचे से अँगरेजी सेना जहाज पर, अग्निबोट पर, नाव पर भागी जा रही थी। जर्मनों के गोलों के निशान अब तक वहाँ

बने हुए हैं—बन्दरगाह पर, चट्टानों पर अबतक उस संहार-लीला के दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। अँगरेजों की साढ़े लाख सेना यहाँ से भागी थी, किन्तु, इँगलैंड के तटों पर पहुँचते-पहुँचते उनकी संख्या आधी हो गई थी !

हमारा जहाज छोटा था—पटना-पलेजा-घाट तक चलने-वाले कई जहाज भी उससे बड़े हैं। हाँ, उसकी लम्बाई अधिक थी और वह बड़ा खूबसूरत लगता था। बड़ी सफाई, बड़ी चकमक। बूँदा-बूँदी होने लगी थी। ओवरकोट खो ही चुका था, भींगते-भागते जहाज पर पहुँचा। हमारा फर्स्टक्लास का टिकट था। भीतर गद्देदार सीटें, सफाई और सुघराई का क्या कहना ? थोड़ी देर तक वहाँ बैठ कर अपने को गरमा लिया। जब मैं बैठा, पाया, मुझसे दूर बैठी हुई वह फ्रेंच-बच्ची मेरी ओर देख कर मुस्कुरा रही है। मैंने हाथ के इशारे से अपनी ओर बुलाया। उसने माँ की ओर देखा, माँ मेरी ओर देख कर मुस्कुराई, फिर उसे इजाजत दे दी। रास्ते भर यह बच्ची मेरे निकट आती रही। वह मस्ती में रह-रह कर नाचने लगती।

ज्योंही जहाज बन्दरगाह से बाहर हुआ, मैं ऊपर चला आया। कितना सुन्दर दृश्य। नीला-नीला समुद्र, उसमें छोटी-छोटी तरंगें उठ रहीं। तरंगों के टकराने से उजली-उजली बूँदें यहाँ-वहाँ रह-रह कर झलमला उठतीं। इस नीले समुद्र को जब हमारा जहाज तीव्र वेग से चीरता हुआ बढ़ने

लगा, तब का दृश्य कितना मनोरम ! जहाज के अगल-बगल और खास कर पीछे उजले-उजले फेन उफना रहे, कोटि-कोटि बूँदें बन रहीं, उछल रहीं। नीले पानी पर वे ऐसी लगतीं कि नीलम की थाल में किसी ने पारे की महीन बूँदियाँ बिखरा दी हों। बहुत-से लोग तृषित नेत्रों से इस दृश्य को देख रहे थे। ऊपर बादल उमड़ रहा था, रह-रह कर बूँदाबूँदी हो जाती थी, नीचे से पानी के फुहारे भी ऊपर आ जाते थे।

जब जाड़ा कलेजे को कँपाने लगा, फिर जहाज के केबिन में चला गया। जब अपने में गरमी लाने को कुछ चाय-काफी पीने के लिए रेस्तोराँ में गया, देखा, लोग फ्रेंच फ्रैंक को अंगरेजी शिलिंग पाउण्ड में बदल रहे हैं। यादगार के लिए कुछ रख कर सारे फ्रेंच सिक्कों को बदल लिया।

इस इक्कीस मील की दूरी को यह जहाज तीन-साढ़े-तीन घंटों में पार करता है। जहाज बीच समुद्र में गया, कुछ उबकाई-सी आने लगी। बेचारी शीला तो इससे और परेशान थीं। आँख मूँद कर सोने की चेष्टा की, झपकी आई और लीजिये, यह अंगरेजी बन्दरगाह सामने है।

बन्दरगाह पर काफी भीड़। समुद्र के पानी को काबू में रखने के लिए जो बाँध बाँधे गये हैं, उनपर खड़े और बैठे बहुत-से लोग बंसी से मछलियाँ पकड़ रहे। कुछ लोग किनारे पर बैठे समुद्री हवा का आनन्द ले रहे। कुछ मनचले समुद्र में तैर भी रहे—तरंगों के झूलों पर कभी ऊपर जाते, कभी

नीचे आते। आज रविवार है, छुट्टी का दिन है। काम के दिन में अँगरेज काम ही काम करता है और छुट्टियों के दिन में छुट्टियाँ ही छुट्टियाँ मनाता है। इसमें जरा भी व्यवधान नहीं होता।

हम जहाज से उतरे, कस्टम आफिस में गये। कोई भी झंझट नहीं हुई। व्यापार का कोई समान तो नहीं, हमसे पूछा गया, हमने 'जी नहीं' भर दी और छुट्टी पाई। किन्तु, यह भी देखा, जिनपर सन्देह होता, उनके सामानों की बड़ी कड़ी जाँच होती।

रेलगाड़ी लगी थी। हम उसपर बैठे और लीजिये, यह इँगलैंड की देहात सामने आ गई। शिवाजी, शीला, देशपांडे, और मैं—हम चार साथी! ऐसे साथी सबको मिलें।

थोड़ी दूर जाने पर ही अंगरेजों के उद्योग और पराक्रम की झाँकी मिलने लगी। चारों ओर खेत लहरा रहे हैं। तलहटी से जोतना शुरू किया है, तो पहाड़ियों के सिर तक जोत डाला है। कितने खेतों में अभी पीले-पीले अंकुर ही निकल रहे हैं। जहाँ-तहाँ फलों और फूलों के बगीचे—सबके सब रंग-बिरंगे पत्तों और फूलों-फलों से लदे। जहाँ घासें हैं, उनमें भी फूल निकल आये हैं—नीले, पीले वे फूल आँखों को तृप्त कर रहे हैं। चरागाहों में पुष्ट गायें और कहीं-कहीं भेड़ें। एकाध घोड़े भी। गावों के वे सुन्दर, छोटे-छोटे मकान। जहाँ-तहाँ जो मर्द, औरत, बच्चे दिखाई पड़ते हैं, वे भी हृष्ट-पुष्ट, आनन्दी, मस्त।

शाम के पहले ही हम लंदन पहुँच गये। लंदन-स्टेशन का वही बूढ़ा रूप ! क्यों नहीं, जरा इसे सँवार-सुधार किया जाता है ? पोर्टर द्वारा सामान स्टेशन से बाहर लाकर टैक्सी कर ली और चले अपने निश्चित अड्डे की ओर !

पहले ही से एक होटल वाले को हमने सूचना दे दी थी, किन्तु, हम एक शाम पहले पहुँच गये। होटल से मालूम हुआ, हमारे लिए कल से जगहें रिजर्व हैं। अब रात कैसे काटी जाय ? बगल के ही एक होटल से बातें कीं, उसने पैसे कस कर लिये, जगह भी अच्छी नहीं दी, किन्तु हमारे लिए चारा क्या था ? फुट-पाथ पर सामान रखे, हम उस होटल से बन्दोबस्त कर रहे थे कि एक सज्जन ने आकर नमस्कार किया और लगे पटना का हाल-चाल पूछने ? उनके कारण बड़ी सहूलियत हुई। शाम को खाने के लिए वह भारतीय विद्यार्थियों के एक होस्टल में ले गये। वहाँ पूड़ी और गोस्त बड़े प्रेम से खाया। तीन सप्ताह के बाद पूड़ी, तरकारी और गोस्त—सब भारतीय ढंग से बनाये—से भेंट हुई थी। खूब खाया। वहाँ कई भारतीय विद्यार्थियों से भेंट हुई, आधे दर्जन तो बिहारी विद्यार्थी थे।

यह मेरा सौभाग्य रहा है कि जहाँ जाता हूँ, कोई-न-कोई ऐसे मिल जाते हैं, जो मेरी चीजें पढ़ चुके हों, या मेरा नाम सुन चुके हों। देशपांडे कहते थे, भाई विदेशों में ही देखा, तुम कितने जनप्रिय हो !

इन्हीं विद्यार्थियों से मिल कर हमने इंगलैंड के लिए कार्य-क्रम भी बना लिया।

भोजन करके हम सांध्य-भ्रमण को निकले—सबसे पहले, पिकेडली लंदन की चौरंगी! किन्तु, वह आज हमें फीकी ही फीकी लगी। फिर ट्रफल्गर स्क्वायर—बृटिश सिंह की विशाल मूर्त्तियाँ, नेलसन का स्तम्भ, जल-जंतुओं के मुँह वाले झरने, कबूतरों के झुंड, उनका हाथों और कंधों पर बैठना—हमारे साथियों के मन को नहीं लुभा सके। ह्वाइटहाल- शहीदों की समाधि, टेन डाउनिंग स्ट्रीट—नहीं, कुछ नहीं। टेन डाउनिंग स्ट्रीट का कितना नाम, जहाँ बृटिश साम्राज्य का सबसे बड़ा आदमी—प्रधान मंत्री—रहता है, किन्तु न वहाँ पुलिस की पल्टन, न कोई चाकचिक्य! हाँ, यदि कोई इसकी खिड़की के निकट पहुँच कर भीतर झाँकना चाहता है, तो पुलिस का कोई जवान बड़ी शिष्टता से उसे कहता है, भीतर जाने के लिए आज्ञा-पत्र की आवश्यकता होती है? वहाँ भीड़ नहीं हो, इसलिए पुलिस के कुछ जवान इधर-उधर घूमते रहते हैं।

पार्लि[illegible] बेन, टेम्स का पुल, टेम्स के [illegible] मन कहीं नहीं रम रहा। शीला कहती है—कहाँ पेरिस, कहाँ लंदन। मैं भी कहता हूँ, पेरिस के बाद लंदन—यह क्रम ही ग़लत है।

२४

गुलाब की दुनिया

लंदन
२/६/५२

कल शाम को भारतीय विद्यार्थियों से बातें करते समय तय होगया था, मि० ठाकुर हमें आज रिचमौंड और क्यू गार्डेन दिखलाने को ले जायँगे।

मि० ठाकुर गुजरात के हैं, यहाँ बैरिस्ट्री पढ़ रहे हैं। बड़े अच्छे स्वभाव के, जैसा कि प्रायः गुजराती होते हैं। हिन्दी भी सीख ली है। बड़े प्रेम से घुमाते, दिखलाते रहे। एक विचित्र आदत है इनमें ; हर अच्छी चीज को 'साला' शब्द से सम्बोधित करेंगे। उनके मुँह से, अटपटी भाषा में, यह प्यारा शब्द और भी प्यारा लगता था!

रिचमौंड, लंदन से दूर टेम्स के किनारे, देहात में है। छुट्टी के दिनों में लंदन के लोग यहाँ झुंड के झुंड पहुँचते और आनन्द मनाते हैं। हमलोग बस से वहाँ पहुँचे। ज्योंही टेम्स के किनारे पहुँचे, चारों ओर रंगीनियाँ ही रंगीनियाँ दीख पड़ीं।

किनारे पर कहीं कुंज, कहीं बगीचे, कहीं हरे-भरे मैदान। बीच-बीच में खाने-पीने के लिए रेस्तोराँ। फूलों की रंगनियों और पौधों की हरियालियों के बीच बच्चे फुदक रहे, युवतियाँ किलक रहीं, युवक छाती ताने, या प्रेयसी की कमर में हाथ डाले, इधर-उधर घूम रहे। कुछ नदी में नावों पर सैर कर रहे—युवक नंगे बदन, पुष्ट बाहों से डाँड़ चला रहे, उनके सामने उनकी प्रेयसी खिलखिला रही, या नाव को हिला कर ऊधम मचा रही। कुछ लोग पानी में तैर भी रहे। कितना जाड़ा, किन्तु जहाँ उमंग हो, वहाँ शीत-त्रास कहाँ? कहीं-कहीं मैदान में बच्चे गेंद उछाल रहे, और वहीं कुछ युवक-युवती विभोर, एक-दूसरे से लिपटे पड़े। बूढ़े-बूढ़ियों की आँखों में भी अनुराग की लाली दिखाई पड़ती।

बहुत देर तक घूमते और देखते रहे। फिर वहीं, नदी के किनारे पर रेस्तोराँ में जा कर भोजन किया। थोड़ी-सी जगह को भी इस तरह सजा कर रखा है कि अधिक से अधिक लोग एक साथ खा सकें, तोभी उन्हें भीड़-भाड़ या हो-हल्ला का बोध न हो पाय। सफाई का क्या कहना?

रेस्तोराँ से ज्यों ही हम निकले, बूँदाबूँदी होने लगी। एक 'पब' में घुस कर वर्षा, बिताई—छुट्टी, वर्षा, बसंत का मौसम—वहाँ खुल कर लोग पी रहे थे!

जब हम चले, बार-बार मैं सोचता, न तो हम काम करना जानते हैं, न छुट्टियाँ मनाना। काम के वक्त गप करेंगे, छुट्टी के

दिन भर में सोये रहेंगे। नदियों का उपयोग हम क्या जानें! टेम्स-नदी का क्या-क्या न उपयोग किया है इन्होंने। एक हम हैं, जो गंगा का उपयोग इसके किनारे शौच करने या इसके पानी में कुल्ली-खखार फेंक कर उसी में गोते लगाने में करते हैं! गंगा ऐसी नदी—यदि इस पराक्रमी जाति को मिली होती!

रिचमांड से हम 'क्यू गार्डन' में आये। लंदन से दूर, यह विशाल बगीचा—संसार भर के पेड़ों को, पौधों को, फूलों को, लताओं को यहाँ लगा रखा गया है। विशाल-से-विशाल वृक्ष, जिनकी उम्र हजार साल से नहीं। छोटे-से-छोटे पौधे जिनके फूल जमीन में झाँकते हुए हँस रहे। गरम देश के पौधों के लिए एक 'गरम-घर' बना दिया गया है, जहाँ का ताप मान ७५ डिग्री से नीचे नहीं होने दिया जाता। जब बाहर बरफ गिरती होती है, हड्डी ठिठुरती होती है, इस घर के भीतर गरमी बनी रहती है। शीशे का यह घर है, जिसमें पौधों को धूप मिलती रहे।

हमने इसके भीतर जाकर देखा, अपने देश के सारे पेड़-पौधे लगा रखे गये हैं यहाँ। अफ्रिका, एशिया, अमेरिका के भी पेड़-पौदे यहाँ लगे हैं। वह देखिये, वह केले में घौद लटक रहा है, खजूर सर हिला रहा है, कद्दू लतर रही है, गेंदा फूल रहा है। लेकिन, एक बात तो है? ये पौदे बोतल के दूध पर पले बच्चे ऐसे लगते हैं—किसी में रौनक नहीं, स्थूलता भले ही हो।

वहाँ से निकलकर हम गुलाब की क्यारियों में आये। अँग्रेजों को अपने गुलाब पर नाज़ है। 'इँगलिश रोज़' एक

प्रतिष्ठित फूल माना जाता है। किन्तु, यहाँ तो तरह-तरह के गुलाब की क्यारियाँ नहीं, खेतियाँ देखीं। भिन्न-भिन्न रंग के, भिन्न-भिन्न आकार के। गुलाब का तो एक खास रंग है ही, हमने जिसे गुलाबी नाम दे दिया है। किन्तु, यहाँ तो पीला, उजला, लाल—फिर फीका और गाढ़ा आदि भेद से इन रंगों के भी अनेक सम्मिश्रण देखे। इतने बड़े-बड़े गुलाब, कि उनके निकट कमल की क्या बात, सूरजमुखी भी मात खाये। फिर इन तरह-तरह के गुलाबों की क्यारियाँ लगाने में कैसी सुरुचि दिखलाई गई है—रंगों का ऐसा मेल रखा गया कि आँखों में ज़रा भी खटक न हो, वे जहाँ पड़े, वहीं गड़े! इच्छा होती थी, इसी गुलाब की दुनिया में विचरण करता रह जाऊँ। मैं कहा करता हूँ, आज की दुनिया तो गेहूँ की दुनिया है, मैं इसके स्थान पर गुलाब की दुनिया बसाना चाहता हूँ। यह गुलाब की दुनिया कितनी रंगीन होगी, इसकी सही कल्पना आज ही कर सका।

और, इस गुलाब की दुनिया के इर्द-गिर्द मँडराती हुई चलती-फिरती गुलाबों की दुनिया। चलती-फिरती, उछलती-कूदती! जिन्हें भगवान ने गुलाब बना कर इस धराधाम पर भेजा, वे ही इस गुलाबों की दुनिया की कद्र कर सकेंगे, इसकी सार्थकता यहीं देखी। किसी उर्दू-कवि ने कहा है—चेहरे के सामने चिराग़ लेकर वे कहते हैं, देखना है, पतंग इधर आता या उधर जाता है। यहाँ लगता था, यही बात यहाँ भौंरों से कही जा रही थी—उसी शोख़ी और ग़रूर से

—देखें भौंरा उसे अचल गुलाबों पर जाता है या इन चंचल गुलाबों की ओर टूटते हैं ! छः पैर वाले भौंरों के असमंजस को कौन समझे ; दो पैर वाले भौंरे तो कसमसाहट में पड़े थे, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हम पा रहे थे ।

इन गुलाबों की दुनिया में खड़े होकर हमने कुछ तस्वीरें खिंचवाईं और खींची भी । यह इँगलैंड है—यहाँ ऐसी छोटी माँगों में ना नहीं मिला करती ।

ठाकुर चाहते थे, हमें इस बगीचे के सभी नायाब चीजें दिखला दी जायें—एक ही जगह हम जम जायें, यह उचित भी नहीं था । हम वहाँ से बढ़े, फूलों और कुंजों की बहार लूटते, झीलों और तालाबों के किनारों के मजे लूटने लगे । फिर हमें बड़े-बड़े ऐतिहासिक वृक्षों की ओर चलने को प्रेरित किया गया । किन्तु ; यह क्या ? बूँदाबूँदी शुरू होगई । दर्शकों की भीड़ों ने कुंजों की शरण ली । किन्तु, वर्षा झमाझम होने लगी । आहा ! कभी, किसी एक कदम्ब के नीचे, किसी एक कृष्ण की कमली से किसी एक राधा ने वर्षा में अपनी साड़ी को भीगने से बचाया, तो हमारे यहाँ कविता पर कविता लिख दी गई । यहाँ तो हर वृक्ष के नीचे, कितने ही जोड़े, एक ही बरसाती लबादे से अपने तन को भींगने से बचा रहे हैं—किन्तु, मन को ?

लेकिन, सिर्फ बूँदें ही तो नहीं झमक रहीं । अरे, ये तो बनौरियाँ भी गिर रही हैं । कितनी ठंढक ; हमारे पास बरसाती भी नहीं । जब चला था, धूप थी । अतः सोचा

गया, अब लौट चलें। किन्तु, ठाकुर ने चाहा, कम कम से कम यहाँ की म्यूजियम तो देख लें। तरह-तरह के बीज, तरह-तरह के फल, तरह-तरह के पत्ते। बीज फल और फूल का उपयोग किस-किस रूप में होता है, उसके भी नमूने। अपने आम को भी देखा, एक ताजा फल रखा था, लगता था, अभी डाल से तोड़ कर लाया होगा। और, वहीं आम का एक ऐसा फल देखा जो आज से पचास साल पहले एक प्रदर्शनी में रखने के लिए भारत से मँगाया गया था और जिसे आज भी सुरक्षित रखा गया है, न वह सड़ा है, न सूखा है! हाँ, इसका पुराना रंग नहीं रह गया है।

प्रदर्शनी देख, भींगते-भागते घर की ओर चले। बस से गये थे, ट्रेन से लौटे। चढ़े थे, जमीन के ऊपर; उतरे जमीन के नीचे के स्टेशन पर। रास्ते भर ठाकुर के 'साला' का मजा लेते रहे! जब अपने होटल में पहुँचे, होटल की लड़की ने एक पुर्जा दिया, इसी साहब ने आपको फोन किया था, इस नम्बर से। सोचा, कपड़े बदल कर फोन करूँ; किन्तु, मैं अपने कमरे में ही था कि ओम् प्रकाश धमक पड़े। तुम्हें कैसे खबर हुई? आप भूल जायँ, किन्तु, मुझे तो खोजना ही था। यही नहीं, पकड़ कर अपने घर ले गये। वहाँ देखा परिवार में एक इजाफा हुआ है, एक लक्ष्मी पधारी हैं। बच्ची को दुलराता; हलराता और उसकी माँ के हाथ की बढ़िया खिचड़ी के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा करता हुआ, जब घर लौटा, तो निद्रा देवी जैसे सिरहाने बैठी थीं।

डायरी भी खतम नहीं कर पाया, कि ....

२५

संग्रहालयों के बीच

लंडन
३/६/५२

ऐसी गाढ़ी नींद आई कि ८।। बजे नींद टूटी। यह लंदन है, पेरिस नहीं। समय पर ही जलपान या भोजन मिल सकता है यहाँ; शराब पीने तक का समय बँधा हुआ है। पेरिस के होटलों में तो सिर्फ रहने तक का सम्बन्ध होता है, भोजन और जलपान आप जहाँ करें। लंदन में होटल के साथ 'बेड ऐंड ब्रेकफास्ट' — शय्या और जलपान दोनों संलग्न हैं। अतः जल्द-जल्द हाथ-मुँह धोकर जलपान कर लिया।

सिर के बाल बढ़ गये थे। एक सैलून में जाकर बाल बनवाये—छः शिलिंग लगे। बाल काटने से अधिक सावधानी रखी गई दाढ़ी बनाने में। फिर धोबी की दुकान पर जाकर अपने कपड़ों को धोने के लिए दिया। आज जैसे सफाई का दिन हो—स्नान-घर में जाकर छोटे-छोटे कपड़ों, रूमाल, तौलिया, गंजी आदि को साफ किया। खूब प्रेम से स्नान हुआ—मलमल कर, टब में चुभुक चुभुक कर। 'एयर इण्डिया' के आफिस में

जाकर हमने यहाँ से रवाना होने के लिए सीट भी रिजर्व करवा ली। 'एयर इन्डिया' के लंदन आफिस में भी देखा, हमारे साथ बहुत अच्छा बर्ताव हुआ।

आज एक अजीब बात हुई। देशपाँडे के साथ जब मैं हजामत बनाने के लिए सैलून में गया, पहले उसने देशपाँडे की हजामत बनाई। मैं प्रतीक्षा कर रहा था। हजामत बनाते हुए उसने देशपाँडे से पूछा—क्या यह आप के बेटे हैं? क्या पढ़ रहे हैं? आप उन्हें देखने आये हैं? देशपाँडे ने जब यह घटना कही, हमलोग खूब हँसे। मुश्किल से मुझ से एक-दो वर्ष बड़े होंगे, किन्तु उनके बाल सुफेद हो गये हैं, चेहरे पर झुर्रियों की भी कमी नहीं! और एक यह मेरी सिट्टी है कि उनका सम-वयस्क होने पर भी मुझे उनका पुत्र अनुमान किया! आज दिन-भर जब-तब मैं देशपाँडे को 'आई डीयर फादर' कह कर हँसता हँसाता रहा!

कल ही तय हुआ था, ओम्प्रकाश हमें ब्रिटिश-म्यूजियम और साइंस-म्यूजियम की सैर करा देंगे। ओम्प्रकाश साइंस के विद्यार्थी हैं, पटना विश्वविद्यालय से एम०एस०सी० करके आये हैं। यहाँ कई वर्षों से हैं। पत्रकारिता का भी काम करते हैं। अतः लंदन के पूरे जानकार। खा-पी कर उन्हीं के साथ हम पहले ब्रिटिश म्यूजियम की ओर चले।

पिछले साल भी ब्रिटिश म्यूजियम देख चुका था, किन्तु, इस विशाल सँग्रहालय को तो जितनी ही बार देखिये, उतना ही

ज्ञान बढ़ेगा, आश्चर्य बढ़ेगा। अँगरेजों को अपने इस संग्रहालय की विशालता और विविधता पर गर्व है। रोमन, ग्रीक, मिश्री कला के उदाहरणों के साथ पुस्तकों और पाण्डुलिपियों का विशाल संग्रह है यहाँ। जिस विषय पर पुस्तकें चाहिये, आप पा सकते हैं। यदि कदाचित कोई पुस्तक यहाँ नहीं मिले, तो आप इन्हें सूचित कीजिये, किसी उपाय से ये मँगा देंगे। अँगरेजी के सभी सुप्रसिद्ध लेखकों की पाण्डुलिपियाँ और पत्र आदि संगृहीत हैं। उन सबको देखते और मन ही मन अफसोस करते कि वह दिन कब आयगा कि हम सरहपा से लेकर आज तक के हिन्दी लेखकों और कवियों की रचनाओं को एक ही साथ देख सकेंगे। वहाँ से उसके पूर्वीय विभाग में आया। इस बार उस सज्जन से मिला, जो हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। बड़े बूढ़े। जब मैंने अपना नाम बताया, इस तरह बातें कीं, जैसे मुझे पहले से जानते हों। अपने सहकारी को आदेश दिया कि मेरी लिखी पुस्तकों को वे ले आवें। दुःख है, मेरी लिखी तीन ही पुस्तकें वहाँ हैं—विद्यापति की पदावली, बिहारी सतसई और लाल रूस। उन्होंने मेरी शेष पुस्तकों के नाम और प्रकाशन-संस्थाओं के पते पूछे। मैंने कहा मैं स्वयं सभी पुस्तकें भेज दूँगा। उनका कहना था, यदि उन्हें हिन्दी की अच्छी पुस्तकों की सूची प्राप्त हो, तो वे स्वयं मँगा ले सकेंगे। मैं जिन देशों में गया हूँ, सब जगह ऐसी सूची की माँग है। क्यों नहीं, आधुनिक साहित्य की सौ पुस्तकों की एक विवरणात्मक सूची तैयार की जाय और उसे देश-विदेश के सभी पुस्तकालयों को मुफ्त भेज दिया जाय।

यह हिन्दी की बहुत बड़ी सेवा होगी, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु प्रश्न यह है कि इस आवश्यक काम को करे कौन ? हिन्दी साहित्य सम्मेलन ऐसी संस्था भी तो दलबंदी के दल-दल में पड़ी हुई है। इस म्यूजियम में देशपाँडे की भी मराठी की कई पुस्तकें थी।

वहां से साइंस-म्यूजियम। विज्ञान के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष जानकारी के लिये ऐसे संग्रहालयों की कितनी आवश्यकता है, यह इसी से सूचित है कि जब-जब मैं इस म्यूजियम में गया हूँ, हमेशा बच्चों के झुंडों को शिक्षक या अभिभावक साथ यहाँ एक-एक चीज को देखते समझते पाया है। रेल, जहाज, मोटर, बिजली, आदि के अलग-अलग विभाग हैं, जहाँ उनके पूरे विकास को प्रत्यक्ष किया गया है। पहली रेलगाड़ी कहाँ बनी, कैसी थी, कैसे-कैसे उसमें उन्नति होती गई। इंजिनों का ताँता है, जिन्हें चला कर भी देखा जा सकता है। समय जानने के लिये पहले क्या-क्या प्रयत्न होते थे, धूप-घड़ी, जल-घड़ी आदि; फिर किस तरह आधुनिक घड़ी बनी और उसमें वृद्धि होती गई। यों ही हर विभाग में देखा जा सकता है। सिंचाई पहले किस तरह की जाती थी और आज पम्प क्या कमाल कर रहे हैं? यही नहीं, पृथ्वी किस तरह चलती है, सौर-मंडल में हर ग्रह की गति कैसी है, किस तरह ग्रहण लगते हैं, किस तरह चन्द्रमा के खिंचाव से समुन्द्र में तरंगें उठती हैं।

इन्हें देख कर आश्चर्य्य होता है। पृथ्वी के तत्व क्या हैं,

कितने हैं; अणु-परमाणु क्या हैं, वे कैसे टूटते हैं, बनते हैं, संक्षेप में कहिये, तो इस संग्रहालय को अच्छी तरह देख लेना, साइंस के हर पहलू से परीचित हो जाना है। बच्चे किस उत्सुकता से इन चीजों को देख रहे हैं, आनन्द और आश्चर्य से उनकी आँखें चमक रही हैं। फिर किस तरह इधर-उधर वे दौड़-दौड़ कर जा रहे, उछल रहे, स्वयं देख रहे और अपने मित्रों को दिखला रहे। जो इस तरह के वातावरण में पलेंगे, उनमें किसी दिन न्यूटन और फैरेडे तो पैदा होंगे ही।

यादगार के रूप में मैंने 'Science since 1500' नाम की एक पुस्तक खरीदी जो इस म्यूजियम से ही प्रकाशित है। विज्ञान के हर विभाग का साढ़े पाँच सौ वर्षों के इतिहास इसमें संकलित है। ज्यों ही पुस्तक खोली, पहला-चित्र लियोनार्दो द विंची का देखा! लियोनार्दो, वह इतालवी चित्रकार जिसकी कृतियों को देख कर संसार की कोई भी चित्र-शाला अपने को धन्य समझती है, यूरोप में विज्ञान का भी पिता था, क्या यह हम कलाकारों के लिये गौरव की बात नहीं है?

ज्ञान-विज्ञान के बाद मनोरंजन हक ही हो जाता है। हमलोग पार्क पहुँचे। सबसे पहले झील में जा कर नौका-नयन की बहार लूटीं। थोड़ी लूटी, बहुत देखी। झील में, मैदान में किनारे पर, वृक्षों की छाया में—सब जगह रंगीनियाँ! तन उछल रहे हैं, मन उछल रहे हैं, कहीं भाग-दौड़, कहीं उठा-पटक। हाहा हीही; खिलखिल खिलखिल!

हर बगल में बगलगीर ! संध्या का सुहाना समय । पंछी घोंसले में पहुँचे; मानव-पंछी घोंसले से बाहर चरने-चुगने को निकल पड़ा है ! क्या उल्लू से कोई छूना-छाला नाता है इसका ?

रात में पूरी मंडली के साथ ओमप्रकाश के घर भोजन ! वहाँ से लौटा हूँ, तो दो दिनों की डायरी एक साथ लिखकर सोने के पहले घड़ी देख रहा हूँ, तो १२॥ बज गये हैं और कुछ चिट्ठियाँ लिखनी ही है।

२६

खुला रंग-मंच

लंदन
४/६/५२

आज एक बड़ी अच्छी चीज देखी, जिसके देखने के लिए बहुत दिनों से लालायित था। जब बी० बी० सी० गया, वहाँ पता चला, आजकल रिजेंट पार्क में "ओपन एयर थियेटर" चल रहा है। इधर लंदन में बी० बी० सी० का आफिस मेरा एक अड्डा बन गया है। वहाँ कितने ही हिन्दीभाषी सज्जन रेडियो में काम कर रहे हैं। हिन्दीभाषी प्रवासी भाइयों से भी वहाँ प्रायः मुलाकात हो जाती है। तुजा अभी हैं हो, कुमार लोदी, सतीश, आलेहसन, देवहुति आदि परिचितों से गप्पें करने का मौका मिल जाता है।

एक तो रिजेंट पार्क का वातावरण। झीलों में बड़े-बड़े राजहंस तैर रहे। पार्कों में तरह-तरह के गुलाब खिल रहे। झाड़ी, कुँज, दूब, सब मनोहर। उतावली में हम कुछ पहले पहुँच चुके थे। टिकट कटा कर पार्क में इधर-उधर

घूमते रहे। एक खुले रेस्तोराँ में बैठ कर चाय भी पी। फिर, समय पर, थियेटर के हाते में घुसे।

रिजेंट पार्क में चारों ओर वालझाड़ियों से घिरा यह खुला मंच है। वालझाड़ियाँ सघन हैं, ऊँची हैं। उनमें एक तरफ कई फाटक बना दिये गये हैं। उन्हीं से प्रवेश करना होता है। भीतर पहुँचने पर पाया, एक ओर चन्द्राकार रंगमंच है। रंगमंच के पीछे, पर्दे की जगह झाड़ियाँ ही झाड़ियाँ हैं। हरे-हरे पत्ते वाले पेड़ों के बीच में लाल-पीले पत्तों वाले पेड़-पौधे लगा दिये गये हैं, जिनसे झाड़ी बहुत खूबसूरत और रंगीन बन गई है। उन झाड़ियों में कई पगडंडियों-सी हैं, जिनसे हो-कर पात्र-पात्रियाँ रंगमंच पर आते हैं। रंगमंच पर एक दरी या जाजिम तक नहीं—हरी-हरी दूब उगी हुई। दो पत्थर की चट्टानें दो जगहों पर पड़ी हैं, जब पात्रों को बैठ कर बातें करनी हो, तो इन पर बैठ जायँ। एक तरफ एक छोटा-सा झाड़ीदार पेड़ है—नेपथ्य से देखने या बात करने का रस्म इसी से पूरा किया जाता है। चन्द्राकार रंगमंच के किनारे-किनारे जमीन से सटी, जरा-सी ऊँची एक टट्टी-सी है; गेट से देखने पर बिजली की रोशनी का प्रबंध यहाँ है।

दर्शकों के बैठने की जगह ढालवीं है। बिना बाँही की, बिना गद्द की कुर्सियाँ रखी गई हैं। आगे-पीछे के हिसाब से उनके दर्जे हैं। हमने फर्स्ट क्लास के टिकट लिये थे, सबसे अगली कतार में थे। कुछ लोग कुर्सियों पर नहीं बैठ कर तीन

ओर की ऊँची हार जमीन पर बैठे हैं, लब्जे पर बैठ कर, सरसब्ज संगीनी में, मन को हरा करने वाले, अभिनय को, बड़ी तन्मयता से देख रहे और जैसा की हमलोग चिनिया बादाम फोड़-फोड़ कर खाते हैं, उसी तरह कुछ चीजें फोड़ कर चबा रहे! किन्तु, जो लोग मजे से खाना-पीना चाहें, उनके लिए भी प्रबंध है। बगल की झाड़ियों में दूकानें सजी हैं, जो चाहिये, खाइये, पीजिये!

आजकल वहाँ शेक्सपीअर का " एज यू लाइक इट " चल रहा है। रॉबर्ट आटकिंस का निर्देशन था। ऑरलैंडो का पार्ट बैसिल हौस्किस ने और रोजालिंद का पार्ट मेरी केरीज ने। टचस्टोन का पार्ट थौर्नडाइक ने और ड्यूक का पार्ट ट्रिस्टन रॉबसन ने।

शेक्सपीअर के नाटकों का मजा तो रंगमंच पर देख कर ही पूरा लिया जा सकता है। फिर यह नाटक तो लगता है, जैसे खुले रंगमंच पर, इन पेड़-पौधों के वातावरण में ही खेलने को, बनाया गया था। वनवास में पड़े एक ड्यूक की कहानी है। जंगल में ही रोजालिंद और ऑरलैन्डो में प्रेम होता है। उसके बहुत से पात्र भी जंगल-निवासी हैं। अतः, लगता था, शेक्सपीअर ने मानो इस नाटक की रचना इसी दिन के लिए की थी जब उसके देश के भावी कलाकार उसे इसी तरह खुले आकाश के नीचे, खुली हवा में खेल सकेंगे।

पर्दे तो हैं नहीं, खेल के आरम्भ की सूचना किस प्रकार दी जा सकेगी—मैं सोचता था। दो बार घंटी बज चुकी थी,

अतः दर्शक इधर-उधर से सिमट कर अपनी सीटों पर बैठे उत्सुकता से मंच की ओर देख रहे थे। इतने ही में एक पगडंडी से एक आदमी ठेलागाड़ी खींचता हुआ आता दिखाई पड़ा. वह बड़ी तेज़ी से आ रहा था और उसके पीछे एक बूढ़ा दौड़ा आ रहा था—दोनों इस तरह कि लगता था, नौजवान शायद रंगमंच को बुहारने आ रहा है और बूढ़ा उसे समझा रहा है! रंगमंच के बीच में आकर नौजवान ने ठेलागाड़ी को खड़ा कर दिया और बूढ़े से बातें करने लगा। तब लगा, अरे, यह तो नाटक शुरू हो गया है। और, इसी तरह बातें करते ठेलागाड़ी को घसीटते वह नौजवान उस बूढ़े के साथ दूसरी पगडंडी से झाड़ी के भीतर चला गया, तो मालूम हुआ, एक दृश्य समाप्त हो गया! एक तरफ की झाड़ी से कुछ पुकार हुई, दूसरी ओर से उत्तर की पुकार हुई और फिर दो पात्र आकर बातें करने लगे; कभी एक ही ओर से कई आदमी लड़ते-झगड़ते आये; इसी तरह पात्र आते रहे और फिर उसी नाटकीयता के साथ जाते रहे कि कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं दिखाई पड़ती थी।

नाटक का पूरा अभिनय बहुत ही सुन्दर था। गॉंवसन के अभिनय में बड़ी ही गम्भीरता और उच्च कुल की शान थी। ऑरलैंडो में यौवन-जनित, प्रेम और शौर्य का अच्छा प्रदर्शन हुआ था। थौर्नडाइक ने टचस्टोन का काम बड़ी सफलता से किया। मेरी केरोज सुप्रसिद्ध अभिनेत्री हैं, उनके अभिनय में भी कमाल था। किन्तु मुझे लगा, उनकी उम्र इतनी अधिक हो गई है कि सारे अभिनय-कौशल और मेक-अप के

बावजूद वह किशोरी, मुग्धा रोजा लिंद के रूप में खप नहीं पाती थीं। जब कलकत्ता में मैंने शिशिरकुमार भादुड़ी को युवक मधुसूदन का पार्ट करते देखा था तो मुझे ऐसा ही लगा था। किन्तु, यूरोप के नाटकों में दो-चार बड़े अभिनेताओं के अभिनय पर ही सारी सफलता निर्भर नहीं करती। एक-एक पात्र, छोटा-से-छोटा पार्ट, इस खूबी से अदा करता है कि उनका सम्मिलित प्रभाव सारे नाटक को चमका देता है। यदि छोटे पात्रों के पार्ट को हटा दीजिये तो सारी चीजें सपाट लगें। इस दृष्टि से, यहाँ एक-एक पात्र का अभिनय बहुत ही सुन्दर रहा। रोजा लिंद के अतिरिक्त सीलिया, फिबे, औड्रे और वह गाने वाली लड़की—सबने कमाल दिखलाये। यों ही पुरुष पात्रों में दरबारियों से लेकर गड़ेरिये तक ने अपने छोटे-छोटे अभिनयों के द्वारा ऐसे सम्मिलित प्रभाव की सृष्टि की कि नाटक में चार चाँद लग गये!

जब कुछ दिन था, तभी से नाटक शुरू हो गया था। ज्यों-ज्यों अँधकार होने लगा, धीरे-धीरे रंगमंच पर रोशनी बढ़ती गई, किन्तु इस स्वाभाविक रूप में कि पता न चले कि कब रोशनी की गई। जब संध्या भींगी, बर्फ के गाले गिरने लगे, हमारे बालों पर, कोटों पर वे किस तरह चमकते थे। कभी-कभी अधिक वर्षा गिरती है या झमाझम वर्षा हो जाती है! वैसे अवसरों के लिए, इस रंगमंच की बगल में, एक ढँका हुआ रंगमंच तैयार रखा गया है—ऊपर से कन्वास का शामियाना-सा तना है!

आज दो खेल हुये थे, तोभी काफी लोगों की भीड़ थी। बहुत-से भारतीय भी थे—फर्स्ट क्लास में अधिक भारतीय चेहरे ही दिखाई पड़े।

बी० बी० सी० में हुआ ने आग्रह किया कि दो चीजें हूँ। एक, इस थियेटर पर दूसरा पेरिस पर।

इटली के दूतावास में जाकर वहाँ के लिए विसा लेने की कोशिश की। उफ, कितनी झंझट! दो-दो फोटो चाहिये, कम कर फीस चाहिये। उस दिन पेरिस में स्वीट्जरलैंड का विसा किस आसानी से मिल गया था।

मदाम तुसाओं की मोम की मूर्त्तियों वाली प्रदर्शनी फिर देख आया। हमारे साथी देख कर आश्चर्य-चकित रह गये। सचमुच चीज ही ऐसी है। हाँ, पिछली बार जहाँ ब्रिटिश मंत्रिमन्डल में मजदूर-सरकार के सदस्यों की मूर्तियाँ थीं, इस बार उनकी जगह चर्चिल आदि की मूर्त्तियाँ देखीं। इसे सब प्रकार नूतन-तम बनाने की कैसी चेष्टा की जाती है!

२७

कैम्ब्रिज : बच्चन

लंदन
५/६/५२

पिछली बार आक्सफोर्ड देख आया था; सोचा, इस बार कैम्ब्रिज देख आऊँ। ये दोनों विश्वविद्यालय तो भारतीयों के लिये गुरुकुल रहे हैं न ? हमारे बड़े-से-बड़े विद्वानों का गर्व यही रहा है कि वे इनको विश्वविद्यालयों से गुरुमुख हो कर आए हैं।

फिर एक आकर्षण और था। वहीं बच्चन थे। बच्चन से मेरी निकटता कैसे हुई, यह भी एक कहानी है। जब बच्चन ने मधुशाला की पुकार दी, सारा हिन्दी संसार उसमें बह चला। हमनें अपने को 'पवित्रतम' समझने वाले पं० बनारसीदास चतुर्वेदी तक उसके दौर में आ गये। एक मैं था, जो खड्गहस्त खड़ा था। मुझे चिढ़ एक प्रत्यक्ष अनुभव से हुई थी। एक बारात में गया था, देखा, कवि कहलाने वाले कुछ जन्तु मधुशाला की पँक्तियाँ गुनगुनाते हुए प्याले पर प्याले खाली

कर रहे हैं—जैसे उन्हें गुनाह के लिये एक कुरान मिल गया हो ।

एक दिन मैं अपने आफिस में बैठा था, एक अपरिचित व्यक्ति आया—भला-भला सा आदमी, घुँघराले बाल, हँसमुख चेहरा। आते ही उसने प्रणाम किया और कहा — "कर कुठार आगे यह सीसा।" मैं बच्चन हूँ!

'अतिथि देवो भव' की परम्परा में पला मैं—भला' घर में आये आदमी को कैसे दुत्काऊँ। बिठलाया, स्वागत-सत्कार किया। जब मालूम हुआ, उनकी पत्नी बीमार हैं उसे दिखलाने को पटना-अस्पताल में ले आये हैं, तब तो सारा क्रोध काफूर हो गया, करुणा जगी। जहाँ तक बन पड़ा, उनके लिये करता रहा। यही नहीं, धीरे-धीरे मैं बच्चन के सरल, भावुक व्यक्तित्व का प्रशंसक बन गया। उधर बच्चन ने भी धीरे-धीरे मधुशाला का जामा उतार फेंका; उनकी प्रतिभा प्रेम और विरह के अनमोल मोती उगलने लगी।

वही बच्चन कैम्ब्रिज में हैं, अतः उन्हें सूचना कर दी और चल पड़े, कैम्ब्रिज की ओर। किन्तु, यहाँ इटली के विसा के चलते एक ट्रेन देर से हम चले और वहाँ गये तो पता चला वह कहीं बाहर चले गये हैं।

खैर, एक भारतीय विद्यार्थी मिल गये और उन्होंने ही कैम्ब्रिज दिखलाया। कैम्ब्रिज नाम की उत्पत्ति 'कैम' नदी से हुई है जिसके कितने पुल (ब्रिज) को कई बार हमें पार करना

पड़ा। नदी छोटी है और इसी के किनारे-किनारे विश्वविद्यालय का विस्तार है। कुल मिलाकर २१ कालेज हैं यहाँ। उनमें से कुछ प्रमुख कालेजों को देखा। ट्रिनिटी कालेज को भी देखा, जिसमें कभी पं० जवाहर लाल नेहरू पढ़ चुके हैं। मुझे ऐसा लगा, जैसी शानदार इमारतें आक्सफोर्ड में हैं, वैसी कैम्ब्रिज में नहीं हैं, किन्तु, यहाँ सफाई और सिलसिला अधिक पाया। आक्सफोर्ड में मुझे धार्मिक वातावरण भी अधिक दिखाई पड़ा था।

जब हम पहुँचे, खुल कर धूप लगी थी। यह तो इंगलैंड के लिये न्यामत है। देखा, खेल के मैदानों में इस दुपहरिया में भी विद्यार्थियों की भीड़ है। खेल के समय भी नियम बद्धता अलग से ही स्पष्ट घोषित होती थी। जहाँ तक अपने देश के विश्वविद्यालयों की तुलना की बात है, यहाँ के विश्वविद्यालयों में एक खास अन्तर तुरत दिखाई पड़ता है। अपने यहाँ विश्व-विद्यालय रुग्न विद्यार्थियों का क्षेत्र मालूम होता है, खिंचे-खिंचे, चेहरे; या फिर छोकरों की जमात, जहाँ देखो, हुड़दंग! लेकिन यहाँ ऐसा लगता है, मस्तिष्क के विकास के साथ व्यक्तित्व के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है और साहसिकता के साथ अनुशासन की छाप हर चेहरे पर पड़ी दीखती है।

यहाँ की सुप्रसिद्ध लाइब्रेरी को हम देख आये। यह भी आशा थी कि बच्चन कहीं यहीं न पढ़ रहे हों। एक विद्यार्थी ने बतलाया था, उनका अधिक समय यहीं बीतता है। किन्तु, मेरे साथ जो विद्यार्थी थे, उनके पास गाउन नहीं था, अतः लाइब्रेरी

में उनका प्रवेश भी निश्चित था। संयोग से एक दूसरे भारतीय विद्यार्थी गाउन के साथ दिखाई पड़े और उन्हीं से गाउन लेकर हमारे विद्यार्थी ने हमारे लिये पास ला दिये। भीतर जाकर देखा, पुस्तकों का कैसा विपुल संग्रह है और उनमें से इच्छित पुस्तक पाने की कैसी सुविधापूर्ण व्यवस्था है। कोई भी पुस्तक चाहिये; पाँच मिनट के अन्दर आपको उस विशाल संग्रहालय से निकाल कर दे दी जा सकती है।

कुछ प्रयोगशालायें भी दिखलाई गईं। विज्ञान से अपरिचित होने के कारण मैं अधिक रस तो नहीं ले सका, हाँ, बड़े आश्चर्य से देखता रहा। पाया, प्रयोगशालाओं में तरह-तरह के प्रयोग चल रहे हैं।

डारविन ने देश-देश के जानवरों की जो हड्डियाँ और ठठरियाँ एकत्र कीं, उनका संग्रहालय देखने के लोभ को हम कैसे छोड़ सकते थे। उन्हें देख रहा था और सोच रहा था, कैसा था वह दिमाग जिसने इन्हें इस तरह करीने से सजा कर जीवों के विकास का एक क्रमबद्ध इतिहास तैयार कर दिया। इन हड्डियों को पहले भी कितने लोगों ने देखा होगा, किन्तु, एक प्रतिभाशील वैज्ञानिक की आँखों ने इनमें से एक इतना बड़ा तथ्य निकाल दिया कि सृष्टि के सम्बन्ध में लोगों की धारणा ही बदल गई।

कैम्ब्रिज से लौटते समय स्टेशन पर" एन्थ्रिन विवान

की पुस्तक 'इन प्लेस ऑफ फीअर' खरीदी। रास्ते में जहाँ तक पढ़ सका हूँ, उसमें उसके विचारों की उग्रता का ही नहीं, मौलिकता का भी परिचय मिलता है। एक गरीब घर में पैदा हुआ क्रान्तिकारी जब पार्लियामेंट का मेम्बर चुना जाता है, तो किस प्रकार उस पर भद्रता का भूत सवार होता जाता है, वह अपनी क्रान्तिकारिता खो देता है और अन्ततः विरोधीदल का एक 'माननीय' सदस्य-मात्र बन जाता है, इसका बिवान ने बड़ा अच्छा चित्र खींचा है। जनतांत्रिक समाजवाद का वह कट्टर पोषक है, किन्तु उसमें पूरी क्रान्तिकारिता भरी है—लेबर-पार्टी का वह एक जाज्वल्यमान स्तम्भ है और कुछ लोगों की दृष्टि में उसका भावी नेता भी।

हाँ, जिस समय हमलोग स्टेशन पर किताबें उलट-पुलट रहे थे, हमारे सामने लगी हमारी ट्रेन छूट गई। क्योंकि हमलोग सोच रहे थे, घंटियाँ बजेंगी, सीटी बजेगी, तब न गाड़ी खुलेगी। वहाँ तो समय हुआ और बिना घंटी और सीटी के ही गाड़ी खुली! जब खाली प्लेटफार्म देखा, हम भौंचक रह गये, किन्तु थोड़ी देर बाद ही दूसरी गाड़ी आती थी, इसलिए अधिक कष्ट नहीं हुआ।

२८

स्पेन्डर के घर में

लंदन
६/६/५२

आज की विशेष बात रही , स्पेन्डर के घर में दावत । स्टिफेन स्पेन्डर इंगलैंड की इस पुश्त के कवियों में अन्यतम माने जाते हैं। भारत में इनकी कविताओं को विशेष रुचि से पढ़ा जाता है और अँग्रेजी की 'नई कविता' के यह प्रतीक माने जाते हैं। बड़ा ही सुन्दर, सौम्य व्यक्तित्व । पेरिस में ही निमंत्रण दिया था, लंदन आने पर एक दिन हमारी दावत कबूल कीजियेगा। 'हमारी' से मतलब यह है कि उनकी पत्नी भी साथ थीं; वहाँ बिना गृहिणी की रजामंदी के आतिथ्य की बात भी नहीं सोची जा सकती। आज भोर में ही सांस्कृतिक स्वाधीनता संघ की : लंदन-शाखा के मंत्री उनकी ओर से बाजाप्ता निमंत्रण दे गये हैं ।

'सपर' का निमंत्रण था। सपर का मतलब होता है, रात के भोजन के बाद का फल और पेय का निमंत्रण।

पेरिस में ही मेरे एक मित्र ने जरा-सी चर्चा कर दी थी, शैम्पेन की मर्मस्पर्शी सुगंध और गुलाबी नशा की। हम क्या जानते थे, कविजी उसे भूले नहीं हैं और इस दावत के बहाने वह शैम्पेन की गंगा बहा देंगे !

स्पेन्डर लंदन के ही एक अंचल में रहते हैं। छोटा-सा दुमंजिला मकान है। बाहर से वह लंदन के मामूली मकान सा ही लगता है, किन्तु भीतर पहुँचते ही लगा, निस्सन्देह इसमें कोई विशिष्ट पुरुष रहता है। फर्श, छत, दीवार सबकी सजावट में एक खास किस्म की सादगी में सौन्दर्य। दीवार पर एक भारतीय चित्र भी जिसे स्पेन्डर भारत से ले आये थे। जब मैंने खिड़की से नीचे की ओर, आँगन की ओर झाँका, एक बगीचा-सा लगा। स्पेन्डर की बीबी ने बताया, कवि जी को फूलों से भी बहुत शौक है, इनके लालन-पालन में भी कवि का हाथ लगता है।

जब हम पहुँचे, कवि अपनी पत्नी के साथ स्वागत के लिए दरवाजा पर हाजिर थे। कवि-पत्नी अपने घर के वातावरण में और भी खूबसूरत लग रही थीं। हमने दरयाफ्त किया, बच्चे कहाँ हैं? बताया गया, भोज में बच्चों को शामिल नहीं किया जाता। जब हम खा-पी कर लौटने लगे, हमारे आग्रह पर बच्चों को हमसे भेंट कराई गई; घर की दासी भी उसी समय हमारे सामने हुई; उसे बड़ी उत्सुकता थी, शीलाजी की साड़ी देखने के लिए।

धीरे-धीरे लंदन की साहित्यिक मंडली के कुछ प्रमुख सदस्य वहाँ पहुँचने लगे। लुई मेकनिस आये, रोज मेकाले आईं; कोयस्लर की पत्नी आईं, डडरो वायट आये, चार-पाँच और लोग भी, जिनसे हमें परिचय कराया गया। श्रीमती रोज बहुत बूढ़ी हो चुकी हैं। कोयस्लर की बीबी इतनी छोटी और-दुबली पतली थीं कि कोई भी उन्हें उठा कर हवा में उछाल दे। डडरोवायटसे पारसाल भी भेंट हुई थी, जब वह लेबर-सरकार के पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी थे। उन्होंने फिर राज-नीतिक चर्चा छेड़ा और कहा, नेहरू को चाहिये कि वह सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो जायँ और उसके आधार को विस्तृत करें, तभी एशिया में कम्यूनिस्टों के बढ़ाव को रोका जा सकता है। कोयस्लर लंदन से बाहर थे, उनका प्रति-निधित्व उनकी बीबी कर रही थीं।

अँग्रेजी दावत से मैं ऊब जाता हूँ। ढाई-तीन घंटे तक, प्रायः खड़े-खड़े खाते रहिये, पीते रहिये, बातें करते रहिये। स्त्रियों की संख्या बड़ी होती ही है। उनसे बातें करना तो लाजिमी होता ही है। बातें भी बहुत हल्के किस्म की। किन्तु आज की दावत में कहीं ऊब नहीं आई। चुने-चुनाये, साहित्यिक रूचि के लोग थे; फिर स्पेन्डर और उनकी बीबी की आवभगत। स्पेन्डर शैम्पेन की बोतल लिये हुए मेहमान के गलास की ओर चौकस नजर रखते और जरा भी खाली देखा, जबर्दस्ती भर देते। फल की तश्तरियों की

ओर भी ध्यान—जरा इसे चखिये जरा इसे भी तो देखिये। मैंने एक चर्चा चलाई। हमारे यहाँ जब हम कवि के घर पहुँचते हैं, यह आशा रखते हैं, दावत के साथ उनकी कविता सुनने का भी सौभाग्य प्राप्त होगा। मेकालिस ने इस सूत्र को पकड़ा और स्पेन्डर को तंग किया, किन्तु, यहाँ तो इसका रेवाज भी नहीं।

स्पेन्डर चाहते हैं कि भारत में चित्रों की एक प्रदर्शनी की जाय। ऐशियाई चित्रकारी की अन्तरंग भावनाओं से वह बहुत ही प्रभावित थे। उनकी यह भी इच्छा देखी कि भारत में सांस्कृतिक स्वाधीनता संघ की शाखाओं का जाल बिछा दिया जाय। मैंने सुझाव दिया, आप एक बार चलिये और सभी प्रमुख नगरों का दौरा कीजिये। आपकी कविता के प्रशंसकों की हमारे देश में कमी नहीं। उन्होंने बताया, पिछली बार जब वह भारत गये थे, कम्यूनिस्टों ने शोर मचाया, वह अमेरिका के एजेंट हैं। जब उन्होंने अपनी कुछ नई कवितायें सुनाईं, तब कहीं भ्रम दूर हुआ। मैंने कहा, सांस्कृतिक स्वाधीनता संघ का यही तो अभिशाप है कि कम्यु-निस्टों ने ऐसा शोर मचा रखा है, मानो वह अमेरिकन संस्था है। यह भ्रम तभी दूर होगा, जब स्पेन्डर, सिलोने ऐसे लोग एशिया के देशों में दौरे करें।

आज दिन भर बूँदाबूँदी होती रही। बीच में बी०बी०सी० में जाकर "पेरिस नहीं भूलती" का स्क्रिप्ट दे आया। जब

मैं उधर गया था, इधर बच्चन आये और होटल में पुर्जा रख गये कि ३-४ के बीच आ रहा हूँ। अतः बिछावन पर लेटे-लेटे उनकी प्रतीक्षा करता रहा!

प्रतीक्षा और वर्षा। वर्षाप्रतीक्षा को कितनी मधुर बना देती है–जहि आये घनश्याम घिरि आई बदरी!' या विद्यापति का—'ईमर बादर माह भादर सून मन्दिर मोर!' घुमड़ते आकाश और उमड़ते हृदय में बहुत दिनों की रिश्तेदारी है न? 'घन घमंड घन गरजत घोरा, प्रियाहीन डरपत मन मोरा!'

किन्तु, कहाँ मैं, कहाँ प्रिया। लंका और किष्किंधा की दूरी से कहीं बड़ी दूरी है लंदन और पटना के बीच फिर जब यहाँ वर्षा हो रही है, ठंढ़ी हवा के झोंके ऊनी कपड़ों की तह को भी छेद कर कलेजे को कँपाना चाहते हैं, पटना में लू चलती होगी, लोग घरों में बन्द होंगे, पंखे चला रहे होंगे, गरमी से हायहाय कर रहे होंगे। आज दुनियाँ बँटी हुई है, इंगलैंड अंगरेजों का है, भारत हमारा है। किन्तु कुछ दिनों में ये सारे प्रपंच दूर होंगे, एक दुनिया होगी, हम सब इसके समान नागरिक होंगे। यातायात के साधनों में बड़ी तरक्की होगी। तब जाड़े के दिनों में हम प्रतीक्षा में होंगे, ठंढे देशों के हमारे भाई बहन कब हमारे अतिथि होते हैं; यों ही गर्मियों में वे लोग हम लू वाले देशों के लोगों की प्रतीक्षा में आँखें बिछाये होंगे। वह शुभ दिन कब आयगा?

निश्चत समय पर वह्मन आये, किस प्रेम से मिले। जब हम कैम्ब्रिज गये थे, एक पुर्जा उनके घर छोड़ आये थे। लेकिन यह लिखना भूल गये कि लंदन में हम कहाँ ठहरे। उन्हें क्यों कष्ट दिया जाय, यह बात भी थी ! किन्तु पुर्जा पाते वह आज लंदन आये और लगे हमें ढूँढ़ने। पहले दूतावास में पहुँचे, फिर यूनिवर्सिटी एरिया में आये कि भारतीय विद्यार्थियों से कुछ पता चले। उनका अन्दाज सही निकला—जिस पहले भारतीय विद्यार्थी से भेंट हुई, उसी ने मेरा पता बता दिया !

साचे के नाटकों ने मन को मोह लिया है। राज-नीतिक घटनाओं पर कितने अच्छे नाटक तैयार किये हैं उसने ? अब तक मैं ऐतिहासिक नाटक लिखता रहा, क्यों न राजनीतिक नाटक लिखूँ—राजनीति में डूबा रहा हूँ, उसे बहुत ही निकट से देखा है, यदि कोशिश करूँ, शायद अच्छी चीजें दे पाऊँ !

२६

कोहेनूर :: रानी :: आनन्द वाटिका

लंदन
७/६/५२।

एक बजे दिन को निकला, सो साढ़े बारह बजे रात को लौटा हूँ। थकावट से चूर-चूर। किन्तु कैसी अजीब आदत। बिना कुछ लिखे सोना मुश्किल। मित्रों को पत्र लिख कर अब डायरी लिखने बैठा हूँ।

आज सबसे पहले लंदन टावर देखने पहुँचा। यहीं कोहेनूर है। यह टावर पहले राजभवन था। प्राचीन राज-भवनों की तरह इतिहास के कितने ही करुण पन्ने इसके साथ जुड़े हुए हैं। कितने ही सिर पर यहाँ ताज रखे गये, कितने ही सिर यहाँ गाजर-मूली की तरह कट कर गिरे। ताज और सिर का अजीब सम्बन्ध रहा है दुनियाँ में। कितने ही सिर ताज से आभूषित हुए हैं, कितने ही सिर ताज की वेदी पर बलि चढ़े हैं।

इंगलैंड के ताज में वह भारत का कोहेनूर जगमगा रहा है। कितना बड़ा हीरा, कैसा चमचमाता हुआ हीरा।

उस हीरे को देख कर शिवाजी का हृदय भावुकता में आ गया—क्यों न इसे भारत ले चला जाय। अपने देश में भी ऐसी चर्चा सुन रखी थी। किन्तु, मैं इसके खिलाफ हूँ— कोहेनूर गया नहीं कि किसी के सिर में इसके पहनने का शौक पैदा हुआ। इतिहास में पहली बार भारत ने प्रजातंत्र अपनाया है, अनियंत्रित राजसत्ता का यह प्रतीक हमसे सात समुन्द्र पार दूर रहे, यही अच्छा !

और, इंगलैंड में इसका कोई खतरा नहीं—क्योंकि इंगलैंड वाले जानते हैं, ताजवाले सिर की पूजा कैसे की जाती है; उस पर प्राण भी देंगे, किन्तु उस सिर को काटने से भी नहीं हिचकेंगे।

यही परसों लंदन में क्या हुआ ? 'ट्रूपिंग आफ कलर' की धूम थी। चार शताब्दियों के बाद इंगलैंड की गद्दी पर एक रानी बैठी है। रानी का जन्मदिन था। उसकी सवारी निकली—घोड़े पर वह चढ़ी थी, बड़ी गम्भीर मुद्रा में। एक लाख आदमी जय जयकार कर रहे थे। एक तो रानी, फिर नवयुवती और सुन्दरी। जब सवारी राजमहल को लौटी, झरोखे पर जा कर उसने मुस्कुराते हुए लोगों का अभिवादन किया। फिर क्या था, जनता पागल सी होकर उछलने लगी—लड़कियाँ, बूढ़े, जवान, सब जैसे अपनी सुध भूल गये हों !

और इसी जाति ने अपने एक राजा को फाँसी पर चढ़ा

किया था, उसकी सज़ा और फांसी दोनों के सबूत को जुगो कर रखे हुई है।

टेम्स के किनारे हम जा रहे थे। पता चला, परसाल जो 'फेस्टिवल आफ ब्रिटेन' हुआ था, उसके मनोरंजन विभाग को 'आनन्द वाटिका; के नाम से अब तक जीवित रखा गया है। उसके लिये टेम्स से अगिन बोट जाया करते हैं। जब हम बोट की प्रतीक्षा में थे, उसी समय अखबारों में लीड्स में होनेवाले भारत और इंगलैंड के क्रिकेट-मैच का नतीजा निकलने लगा था। एक नौजवान हमें देख कर चिल्ला उठा—हार रहे हो! शिवाजी ने कहा—हम जीत कर रहेंगे। उसने हाथ हिलाया—विशिंग यू गुड लक! खेलों के प्रति कैसी अनुरक्ति है इस जाति में। आज अखबारों के संस्करण-पर-संस्करण निकल रहे हैं और लोग लूट रहे हैं जैसे! सबके हाथ में अखबार--अपनी जीत पर कैसे खुश हैं वे! और, अपनी हार इस परपुरी में कैसी खल रही है हमें!

अगिन बोट पर हम बैटरसी की ओर चले—टेम्स के बीच से उसके दोनों किनारों के लंदन के वैभव को देखते हम आनन्द-वाटिका पहुँचे।

काम को नहीं भूलो, मौज को नहीं भूलो। दस से पाँच तक खटो, मरो। फिर संध्या होते ही रंगरेलियों में, रागरंग में डूब जाओ। इस रागरंग के लिए क्या-क्या न प्रबंध है। लंदन पार्कों की पुरी है, जिधर निकल जाइये,

उधर ही पार्क—फूलों से, झाड़ियों से, कुंजों से जगमग ! लंदन शहर का जो रकबा है, उसमें एक तिहाई जमीन में पार्क है। पारसाल जब सौ वर्षों के बाद उस महान् उत्सव की तैयारी हुई, रागरंग के लिए इस आनन्द-वाटिका—प्लेजर गार्डेन—का आयोजन हुआ। जब उत्सव समाप्त हुआ, चारों ओर से रोशनी, आनन्द-विनोद की चीजें वहाँ और भी एकत्र कर दी गई हैं। सारी वाटिका रंग-बिरंगी रोशनियों से जगमग। तरह-तरह के खेल, खिलौने। तरह-तरह के झूले। ऐसे-ऐसे बिजलियों से संचालित झूले कि देखते ही होश गायब। किस वेग से कभी आसमान में फेंक देते हैं, कभी पाताल में उतार देते हैं। किन्तु साहसिक युवक-युवतियों के लिए इनमें भी मौज। कुछ झूलों में अजीब प्रकार के विनोद—एक ऐसा झूला, जिस पर दो-दो करके युवक-युवती बैठ जाते हैं, झूला तेजी से घूमने लगता है, घूमते-घूमते अचानक हर जोड़ी पर पर्दे गिर जाते हैं। अब पर्दे के भीतर, झूला झूलते हुए, जो चाहे कीजिये !

तरह-तरह के फव्वारे; उन्हें रोशनियों से कैसा रंगीन और दिलचस्प बना दिया गया है। एक सीढ़ी है, जो बहुत दूर तक, पेड़ों की डाल-डाल चली गई है; झुक-अँधेरे में उस पर टहलिये। एक स्वप्नपुरी है—टेढ़े मेढ़े सुरंग से नीचे घुसते जाइये और वहाँ भले-बुरे सपनों को प्रत्यक्ष देखिये। बुरे सपने, भयानक चेहरे, धधकती आग,

भीषण चित्कार भले सपने, परियाँ हैं, सप्तकुमारियाँ हैं, इन्द्र धनुष हैं रंगीन झरने हैं, सुमधुर गुंजार है।

आनन्द-वाटिका में सभी आनन्द मना रहे थे। हमने भी दो घंटे वहाँ की रंगरेलियों में हाथ बटाया। फिर टेम्स से ही लौटे—अगिन बोट पर युवक-युवतियाँ आनन्द-मग्न हो सम्मिलित स्वर में गीत गाते जाते थे!

३०

सोशलिस्ट ग्रूप : लेबर पार्टी

लंदन
९/६/५२

कल रविवार था; पूरा रविवार मनाया—सारा लंदन रविवार मनाता है न? दिन भर रिम-झिम वर्षा भी होती रही, लंदन अपने असली रूप में था।

बीच में इकबाल गाया से भेंट हो गई थी। वह सोशलिस्ट ग्रूप के सेक्रेटरी हैं। पारसाल भारतीय विद्यार्थियों के इस ग्रूप के बहुत निकट आया था। ज्योंहि उन्हें खबर हुई, उन्होंने फोन किया, आज वे लोग मुझसे कहीं मिलेंगे।

इकबाल गाया के घर पर ही बैठक हुई। विलायत में आने पर भी इन लोगों में अपने देश के लिए कितनी ममता है, अपने समाज की भविष्य रूपरेखा के बारे में कैसी चिन्ता है। पिछले चुनाव में पार्टी को जो विफलता हुई, उससे वे लोग कुछ उदास जरूर थे, किन्तु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी है। उनका

विश्वास है, हमारी हार के पीछे हमारी सैद्धान्तिक कमजोरी नहीं रही है बल्कि साधन की कमी रही है। अगले चुनाव में हमारी बाजी जरूर रहेगी इन लड़कों की हिम्मत देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

शाम को उन्हीं के साथ एक फ्रेंच सिनेमा देखने गया, जो इस साल का सर्वश्रेष्ठ फ्रेंच चलचित्र समझा जाता है। बड़ी मौलिकता पाई इस चित्र में। एक निर्माता आता है और जादू की छड़ी घुमाता हुआ, एक-पर-एक दृश्य दिखाता जाता है—प्रेम के भिन्न-भिन्न रूपों का। सैनिक का प्रेम, व्यापारी का प्रेम, विद्यार्थी का प्रेम, वर्जितप्रेम, आहत प्रेम—ऐसे छोटे-छोटे प्लाट और इतना बढ़िया अभिनय, कि शुरु से अन्त तक उत्सुकता कायम रही। हमारे यहाँ के सिनेमा को कोढ़ लग गया है जैसे—बस, पिटीपिटाई लीक पर मिलन-विरह, मार-कूट, दुर्घटना और उससे बचना, फिर विवाह, शहनाई—कभी गधे पर चढ़ना, कभी नायिका को कंधे पर चढ़ाना, कभी बन्दर-सा मुँह चिढ़ना, उफ! ये लोग कुछ दिनों तक अपना सारा कारबार बंद क्यों नहीं कर देते ?

कल भोर में ही हमें लंदन छोड़ देना है। एयर इन्डिया से बातें तय हो चुकी हैं। जो कुछ करना-धरना था, आज कर लिया। शिवाजी और शीला देहात देखना चाहते थे। किन्तु समयाभाव से उस विचार को त्याग देना पड़ा।

सबसे पहले बाजार जाकर एक ओवरकोट खरीदा। इधर कई दिनों से बूँदा-बूँदी हो रही थी। फिर स्विट्जरलैंड की 'जुंगफ्राउ' चोटी पर तो इस बार जाना ही है। बिना ओवरकोट का वहाँ का काम कैसे चलेगा।

कल ही भूर के लड़कों ने तय किया कि मैं लेबरपार्टी के आफिस में भी जरूर जाऊँ। उन्हीं लोगों ने पहले से तय कर रखा था। मिश्रा को लेकर जाना था, इन्डिया हाउस से उन्हें लिया। वहीं डा० कौमुदी से भेंट हुई जो 'नई धारा' में सदा लिखा करती थीं। आजकल इन्डिया हाउस के प्रचार विभाग में हैं। जलपान का निमंत्रण दिया, किन्तु अब समय कहाँ रह गया है, उनसे क्षमा मांग ली। लेबरपार्टी के आफिस 'ट्रांसपोर्ट हाउस' में वही कार्यव्यस्तता, उसकी वही शान, यद्यपि अब पार्टी की सरकार नहीं रह गई है। विदेश विभाग के सेक्रेटरी से मिले, देखते ही पहचान लिया उन्होंने। पिछले चुनाव के बारे में बातें हुईं। उनका कहना था, पहले चुनाव की दृष्टि से यह कोई बुरा नतीजा नहीं था। अब बातें निर्भर करेंगी कि जो लोग भी तुम्हारे गये हैं वे वहाँ कैसा और क्या करते हैं। एक बात से वह चिन्तित थे। हमने जमीन के बँटवारे का जो नारा दिया, उसका महत्त्व वह नहीं समझ सके थे—कहने लगे ; इससे तो जमीन आदि भी टुकड़ों में बँट जायगी। जिससे उत्पादन में कमी आ जायगी ! हमने उन्हें समझाया, यह खतरा नहीं है। ज़मीन तो आज भी टुकड़ों में बँटी है।

ये टुकड़े भी उनके हाथों में नहीं है, जो उसपर पैदावार करते हैं। इसलिए पैदावार दिन-दिन कम होती जाती है। हम चाहते हैं कि इन टुकड़ों पर उनकी मिल्कियत हो जो यथार्थतः उनके हकदार हैं। जमीन पर स्वामित्व का भाव उनमें मेहनत करने और अधिक पैदा करने की प्रेरणा भरेगा। फिर, नये बँटवारे के समय हम इस पर भी तो ध्यान रखेंगे ही कि जिन किसानों को जमीन मिले, एक साथ, एक जगह मिले। अतः जमीन टुकड़ों में नहीं बँटकर, ठीक इसके विपरीत तब कम टुकड़ों में बँटी होगी। तभी हम उसपर वैज्ञानिक खेती कर सकेंगे। उत्पादन तभी बढ़ेगा।

हमने उनसे आग्रह किया कि एकबार आपमें से कोई भारत चले और हमलोगों के कार्यक्रम को समझ आवे। इतनी दूर पर, सिर्फ कागजात के जरिये, सारी चीजें समझी भी नहीं जा सकतीं। तब उन्होंने पैसों के अभाव की बात पेश की। आपकी पार्टी को भी पैसे का अभाव ? गरीबों की पार्टी है न ? जो पैसे आते हैं, वहाँ के खर्च से ही नहीं बच पाते ! गरीबों की पार्टी—चाहे वह भारत की सोशलिस्ट पार्टी हो या इंगलैंड की लेबर पार्टी—सदा पैसों के अभाव में ही बढ़ेगी, ऐसा मुझे लगा।

वहाँ से रायल एकेडमी में आया—लियोनार्दो द विंची के चित्रों की प्रदर्शनी देखने। द विंची की मृत्यु की ३५० वीं वर्षगाँठ मनाई जा रही है। द विंची इटालियन चित्रकार

था—और लंदन में यह प्रदर्शनी ! कलाकारों के प्रति ऐसा सम्मान यूरोप में ही देखा। प्रदर्शनी में लियोनार्दो का वह सुप्रसिद्ध चित्र देखा—"लास्ट सपर"—जिसमें ईसा अपने शिष्यों को रात के भोजन के टेबल पर बताते हैं, यह उनका अन्तिम भोजन है, कल उन्हीं में से एक की गद्दारी से वह गिरफ्तार किये जायँगे ! कहते हैं, इस चित्र के 'ईसा' और 'जुडा' के मोडेल के लिए चित्रकार को वर्षों परीशान रहना पड़ा। अन्त में एक यहूद युवक से 'ईसा' की प्रतिकृति ली। 'जुडा, के लिए वह फाँसी की सजा पाये हुए अभियुक्तों को देखता फिरा। 'जुडा' ने ही ईसा के साथ गद्दारी की थी।

कितना बड़ा चित्र—ईसा के मुँह पर कैसी शान्ति, जुडा के मुँह पर अपराध की स्पष्ट रेखा। द विंची अद्भुत प्रतिभाशाली था। बिना पाये के पुल का, हवाई जहाज का, टैंक का इसी तरह कई आनेवाले आविष्कारों का नमूना उसने तैयार किया था ! उन्हें भी वहाँ रखा गया था। फिर उसकी वह स्केच-बुक जिसमें उसने मनुष्य, जानवर, पंछी आदि के भिन्न-भिन्न रूपों और मनोभावों का चित्रण किया है ! मुर्दे की चमड़ी उधेड़ कर उसने माँसपेशियों और अँतड़ियों का अध्ययन किया था। सबके स्केच उस बही में, मूल रूप में दर्ज हैं। स्केच-बुक की एक छोटी प्रति छप कर बिक रही थी, मैंने उसे खरीद लिया।

वहाँ से जाकर बी० बी० सी० में 'पेरिस नहीं भूलती, नाम की वार्ता रेकर्ड कराई। एक वार्ता शिवाजी की भी रेकर्ड की गई। फुरसत नहीं हुई कि दूसरी वार्ता रेकर्ड करवा सकूँ। यों इस काम में पैसे भी काफी मिलते हैं—हर मिनट एक गिन्नी, जो पौंड से कुछ अधिक ही होती है।

दुख है, लाख चेष्टा करने पर भी हिन्दी केन्द्र के लोगों से भेंट नहीं कर सका। मैं तो पिछली यात्रा में ओम् प्रकाश जी को मंत्री बना आया था और डा० कमल-कुलश्रेष्ठ को उसका सभापति। किन्तु, ओमप्रकाश जी से पता चला, बीच में झगड़े शुरू हुए और उन्होंने अपने को हटा लिया। अब जिन लोगों के हाथ में वह है, उनसे मैं नहीं मिल पाया। हाँ, हुआ ने बताया, उससे जो जागृति फैली, उसके चलते कई हिन्दी संस्थायें लंदन में बन गई हैं जो अपने-अपने दायरे में अच्छा काम कर रही हैं। यदि समय होता, तो फिर एक बार चेष्टा करता कि इन संस्थाओं को संबद्ध करके 'हिन्दी केन्द्र', को सुचारु रूप से चलाने का प्रबंध कर जाऊँ। सेठ गोवि-न्ददास और श्री पुरुषोत्तम दास टंडनजी से इसके सम्बन्ध में बातें हुई थीं।

रात में युगोस्लाविया सरकार द्वारा संयोजित एक बैले-पार्टी के नृत्य एक थियेटर भवन में देखे। कई मित्रों ने सलाह दी, इसे देखना मत चूकिये। सचमुच वहाँ

पहुँच कर, उसे देख कर निहाल हो उठा! सभी नृत्यों की पृष्ठभूमि देहात थी। देहाती पोशाक, देहाती बाजे, देहाती गीत, देहाती नृत्य। उन नृत्यों में, पोशाकों में, धुनों में बहुत कुछ भारतीयता पाई। अपने ही देश के से तारे थे, बंशी भी अपनी ही थी, एक नृत्य में घुँघरू भी अपना ही था। पोशाक में भी अपने देश के ही ढंग के घाँघरे, ओढ़नी, सुथने और जूते भी। कभी-कभी ऐसा लगता था, अपने आदिवासी भाई-बहनों के नृत्य देख रहा होऊँ—हाँ, उनके चेहरे बिल्कुल नेपाली ढंग के थे और नेपाली ढंग की ही गोल टोपियाँ, घुंडीदार बंडिया, कमरबंद और चुस्त पाजामे। नृत्य और संगीत का कुछ ऐसा समाँ था कि इच्छा होती थी, कल भारत जाना बंद करके युगोस्लाविया का ही टिकट कटा लूँ। कई नृत्यों में वीर रस का बड़ा पुट—गोरिल्ला युद्ध, तलवार युद्ध को नृत्य में ही साकार करते। लड़कियाँ छोटे कद की, हलके बदन की; नाचतीं तो लगता, तितलियाँ उड़ रही हैं। कहीं जरा अश्लीलता की गंध नहीं। मर्दों के नृत्य भी बड़े प्रभावशाली! युगोस्लाविया की सरकार ने इस नृत्य-मंडली को यूरोप के दौरे पर भेजकर बड़ी बुद्धिमानी का काम किया है। जो कम्यूनिस्ट युगोस्लाविया के नाम से ही चिढ़ते हैं, वे भी इसकी प्रशंसा कर रहे थे।

यह बड़ी अच्छी बात हुई कि लंदन की अन्तिम रात में ऐसी अच्छी चीज देख ली। 'मधुरेण समापयेत' की कहावत पूरी तरह सार्थक हुई। आज माथुर साहब और कोयराला को इस नृत्य के बारे में पत्र भेजे और जितिन्न को लिख दिया, मैं २० को बम्बई पहुँच रहा हूँ।

३१

जिनेवा की सुहावनी संध्या

लंदन से जिनेवा
१०/६/५२

आज भोर में लंदन छोड़ा, यों दूसरी बार लंदन से विदा ली। जब चला, मीठी धूप उग आई थी। लंदन अप्रत्याशित रूप से सुहावना लग रहा था। होटल से 'एयर इन्डिया' के आफिस में, वहाँ से हवाई अड्डे की ओर। जब रलाक एरिया पार कर रहा था, वहाँ के दृश्य से मुग्ध हो रहा। वे छोटे-छोटे खिलौने के ऐसे घर। हर घर के आगे फूल; पीछे बाड़ी। छोटे-छोटे सुन्दर, रंगीन, सुहावने घर—प्रायः दो मंजिल के। ऊपर की मंजिल पर खपरैल। पीले मकान, लाल खपरैल, नीचे हरी घास, रंगीन फूल। इतने हल्के लगते थे वे कि इच्छा होती थी, एक घर को, उसके बाड़े के साथ हथेली पर उठा कर लेता चलूँ। और इन घरों में यहाँ के मजदूर रहते हैं!

पचास मिनट की बस-यात्रा के बाद लंदन का एयर-पोर्ट आता है, पलाम भी तो दिल्ली से काफी दूर पर है।

एयर पोर्ट पर 'एयर-इण्डिया' नाम पढ़ कर ही प्रसन्नता हुई। आखिर वह दिन भी आया कि हमारे वायुयान संसार के कोने-कोने में उड़ने लगे। अभी इन वायुयानों के कुछ पुर्जे बाहर बनते हैं, किन्तु प्रबंध तो पूरा अपना है और भीतर की साज-सज्जा भी अपनी है। भीतर चलिये, देखिये, सीट के सामने थैले में जो पंखा है, उसपर दो भारतीय लड़कियों के चित्र हैं—एक मृदंग बजा रही है, एक करताल लिये नाच रही है। रास्ते के जो चार्ट आदि हैं, सब पर भारतीयता की छाप। खाने के समय नेपकिन की जगह जो कागज का टुकड़ा दिया गया है उसपर एक भारतीय खानसामा किस अदा से सलाम कर रहा है!

उड़ना—यह मुझे कितना प्रिय है। उड़ने के पहले प्रायः लोग बीमा करा लेते हैं। बीमा, यानी खतरा। खतरे का भाव आया कि आनन्द गया। मैंने कभी बीमा नहीं कराया, न कराऊँगा। मैं तो हवाई जहाज को सभी सवारियों में सबसे अधिक आनन्द-प्रद मानता हूँ। जब मैं गति में होता हूँ, मेरा मस्तिष्क भी गति में होता है। हवाई जहाज की उड़ान मेरे मन-प्राण में उड़ान ही उड़ान भर देती है। और, उन उड़ानों को कलम बंद करने की सुविधा तो हवाई जहाज पर ही होती है—उड़ते जाइये, सोचते जाइये, लिखते जाइये!

मैं उड़ा जा रहा हूँ। हमारा प्लेन अब बादलों के ऊपर है। यूरप पर सदा बादल छाये रहते हैं। ये बादल उसे

छाया देते हैं, सूरज की तीखी किरणों से उसे बचाते हैं, मीठी फुहार देते हैं। किन्तु क्या बात है, इन बादलों की ही तरह सूरज पर सदा संकट के बादल मँडलाया करते हैं। हमारे देखते-देखते दो महायुद्धों ने उसे तबाह किया है—तीसरे महायुद्ध की गड़गड़ाहट भी सुनाई पड़ रही है!

कभी-कभी बादलों के नीचे जमीन दिखाई पड़ती है! हरी-भरी जमीन—मेड़ों और सड़कों ने जिन्हें अनेक टुकड़ों में बाँट रखा है। ये मेड़ें न हों, तो खेत में उपज न हो; ये सड़कें न हों, तो आदमी का आदमी से सम्पर्क मुश्किल हो जाय। किन्तु इन मेड़ों ने, इन सड़कों ने आदमी-आदमी के बीच ऊँची-ऊँची दीवारें जो खड़ी कर दी हैं। हमने पृथ्वी को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँटा, प्रकृति हमसे नाराज हुई, उसी का अभिशाप यह युद्ध है, महायुद्ध है। लड़ो, मरो। 'संसार एक हो' की पुकार है—किन्तु जब तक ये मेड़ें, ये दीवारें बनी हैं, क्या पृथ्वी एक हो सकती है? मेड़ों को तोड़ो, दीवारों को ढहाओ।

नीचे गौर से देखता हूँ। लगता है, यह फ्रांस की भूमि है। मैं फ्रांस का प्रशंसक हो गया हूँ, उसकी कला ने, उसके सुन्दर लोगों ने मुझे मोहित किया है। किन्तु बेचारा फ्रांस—बार-बार तबाह होता रहा है। युद्ध का दानव जहाँ भी नृत्य शुरू करे, उसका नाच छूटता है, इस फ्रांस पर ही। क्या बात है; क्यों यह बात है?

फ्रांसीसियों का स्वभाव अजीब है। जैसे भगवान ने सिर्फ दिल ही दिल दिया हो। हृदय और मस्तिष्क में संतुलन हुआ ही नहीं—अपने बंगाल की तरह। भावना में वह जा रहे हैं। फ्रांस में हर दो महीने पर सरकार बदलती रहती है। हर 'वाद' के लिए वह उर्वरा भूमि है! कम्यूनिस्टों का भी जोर है वहाँ। अभी पत्रों में पढ़ा है, वहाँ की पुलिस ने कुछ ऐसे गुप्त कागजात पकड़े हैं, जिनसे सिद्ध होता है, युद्ध छिड़ने पर यहाँ के कम्यूनिस्ट अपने देश को रूस के सुपुर्द कर देंगे! न-जाने इन कम्युनिस्टों को अपने देश से क्या दुश्मनी है! मसानी कहा करते थे, भारतीय कम्यूनिस्ट अच्छे रूसी देशभक्त होते हैं! हर देश की यही हालत है, सिवा रूस देस के, जहाँ के कम्यूनिस्ट, जिनमें स्टालिन भी शामिल था, अपने देश पर संकट आने पर कम्यूनिस्टों की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था को तोड़ने और मजदूरों के अन्तर्राष्ट्रीय गीत को छोड़ने से भी नहीं हिचके!

रात का जागरण! अभी-अभी झपकी आगई थी। आँखें खुली हैं तो देखता हूँ, अब हम स्वीजरलैंड में हैं। झीलें, पहाड़ियाँ, बगीचे, खेत! लगता है, प्रकृति ने यहाँ चित्रकारी की है! हाँ, ऊपर से देखने पर ये सारे दृश्य सचमुच सुन्दर लैंडस्केप-से लगते हैं। बादल छँट चुका है, सुनहली धूप खिल आई है। चारों ओर सौन्दर्य का झलमल!

जिनेवा का हवाई अड्डा। उतर कर प्रतीक्षालय में बैठा हूँ।

सामान पीछे से लाये जा रहे हैं। अरे, यह क्या? मेरा एक बैग नहीं है? घबराता हूँ, खबर देता हूँ, एक अफसर दौड़ कर एरोप्लेन में जाता है; मेरे बैग से लेबुल टूट गया था, इसीसे यह गड़बड़ी! सामानों के साथ होटल में, जो पहले से तय कर लिया गया था। उसमें हमारे लिए जगहें सुरक्षित थीं।

मुँह-हाथ धोकर बाजार चला। कुछ चीजें खरीदनी थीं, घड़ियाँ, कैमरे। लंदन में कर्नल नाथ से भेंट हुई थी। कर्नल नाथ कभी हजारीबाग जेल में हमारे सुपरिन्टेन्डेन्ट थे। आजकल बिहार-सरकार के स्वास्थ्य-विभाग के डाइरेक्टर जेनरल हैं। उन्होंने बताया था, राष्ट्रसंघ के स्वास्थ्य-विभाग में उनके एक दोस्त हैं, हम उनसे मिलें, तो वे चीजें सस्ती खरीदवा देंगे। सोने की घड़ियाँ [illegible]। हमलोग राष्ट्रसंघ के दफ्तर में ग[illegible] विल्सन का यह भव्य स्मारक! झील के किनारे एक नई बस्ती ही बस गई है, संसार की सभी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का स्थायी आवास है। कितनी खूबसूरत जगह; कितनी सुन्दर इमारतें। ऊपर देश-देश के झंडे लहर रहे हैं—नीचे रंग-रंग के फूल खिल रहे हैं।

उस सज्जन से भेंट हुई तो उन्होंने अपनी व्यस्तता बतलाई; हाँ, एक दुकान का पता दे दिया। हम उस दुकान पर पहुँचे। घड़ियों के मोलतोल होने लगे—जिसका दाम

१४० फ्रैंक बताया था, उसे ६५ फ्रैंक में देने को तैयार होगया! सोचा था, पहले देख आऊँ, फिर पैसे ले जाकर खरीद लाऊँगा। किन्तु पता चला, यहाँ दुकानें आठ बजे भोर में खुलतीं और शाम को सात बजे बन्द हो जाती हैं। यों ही आफिस भोर में ८ बजे खुलते और १२ बजे बन्द होते हैं और फिर २ बजे से पाँच बजे तक होते हैं! मन में एक बात उठी, क्यों न अपने देश में भी यही प्रबन्ध हो। अँगरेजों के देश में १० बजे से ५ बजे तक आफिस होते हैं, क्यों हम उन्हींका अनुकरण करते हैं, जबकि दुपहरिया में सबकी आँखें झपकती होती हैं—साहब, बाबू, चपरासी सब ऊँघते होते हैं! प्रोफेसर, शिक्षक, विद्यार्थी, सबकी यही हालत रहती है!

वहाँ से ट्राम पकड़ कर अकेले चला, तो, किन्तु, पीछे याद आया, जहाँ से चला हूँ, उस स्थान का नाम तो मुझे मालूम नहीं। मैं बगल के लोगों से पूछने लगा। किन्तु वहाँ अँगरेजी भाषा कम ही लोग समझ पाते हैं। सब मेरा मुँह ताकने लगे। दूर पर एक लड़की बैठी थी; वह निकट आई और मुझसे टूटी-फूटी अँगरेजी में बातें कीं। वह भली लड़की! उसने मुझे होटल पहुँचा दिया, फिर वहाँ खड़ी रह, जब मैं होटल से चेक-बुक लेकर लौटा, उस ओर जाने वाली ट्राम पर चढ़ा दिया और एक सज्जन से कह दिया कि मुझे वहाँ उतार देना चाहिये! कहाँ वह लड़की! कहाँ अपने देश की तितलियाँ! और क्या ये उस लड़की से ज्यादा खूबसूरत

होती है ! उसका स्वस्थ गुलाबी गाल, भरा-कसा बदन, सुनहले उड़ते बाल—क्या शीघ्र भुलाये जा सकेंगे ?

इन झंझटों से निवृत्त होकर हम जिनेवा-झील के किनारे चहल-कदमी करने लगे। यह झील, इसके टापू, इसमें तैरते हुए राजहंस, पाल उड़ाती हुई नावें, पृष्ट-भूमि में हरी-भरी पहाड़ियाँ, किनारे-किनारे सुन्दर रंगीन अट्टालिकायें, सजी-सजाई दुकानें, रंगीन छतरियाँ, फूलों की क्यारियाँ—संसार के सुन्दरतम स्थानों में इनकी गिनती की जाती है !

झील का पानी कितना साफ ! जहाँ हम किनारे पर खड़े हैं, एक राजहंस तैरता हुआ उसके निकट आया और बार-बार अपनी गर्दन ऊँची करने और फिर पानी में डुबोने लगा। क्या हमसे कुछ भेंट माँग रहा है ? यहाँ लोग इनके खाने की कुछ चीजें लाते और पानी में डाल देते हैं। हम कुछ ला नहीं सके थे—देखिये, वह बेचारा हताश लौटा जा रहा है !

संध्या गहरी हुई और रोशनी चमचमा उठी। झील के किनारे-किनारे बिजली-बत्तियों की सघन माला। उन बत्तियों का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ा और झील भी जगमग कर उठी। लगा जैसे पानी का हर-कण बिजली-बत्ती बन गई हो। किनारे की बत्तियों की इस माला के नीचे-ऊपर मकानों और दुकानों की रंगीन रोशनी ! थोड़ी ही देर में सारा दृश्य इन्द्रजाल-सा लगने लगा !

इस इन्द्रजाल से भाव-मुग्ध हम निकट के एक रेस्तोराँ में

जा बैठे, जहाँ से इस अनुपम दृश्य को भी देखते रहें! किन्तु रेस्तोराँ का दृश्य भी क्या कम मनमोहक है। छोटे-छोटे काठ के ऐसे घेरे में बना दिये गये हैं, जहाँ आप निश्चिन्त होकर खा-पी सकें। घेरे के चारों ओर काठ के चकलों में फूलों के पौधे हैं। चारों कोनों पर चार छोटे-छोटे स्तम्भ जिन पर फूलों के पौधे, फूलों से लदे। उनके नीचे बत्ती लगा दी गई है, बत्ती जल रही है, फूल हँस रहे हैं। बीच में खूबसूरत टेबुल और चार कुर्सियाँ! यहाँ खाइये, पीजिये, मजे लीजिये। हर घेरे में लोग बैठे हैं, ग्लास खनक रहे हैं, छुरी-काँटे झनक रहे हैं! बगल में मधुर बैंड बज रहा है। उधर फव्वारे से झर-झर पानी झड़ रहा है जिस पर पड़ने वाली रोशनी उसे सतरंगी बना रही है। पेड़ों पर चिड़ियें चहु-चह कर रही हैं। स्वर और सौन्दर्य का यह संगम मन-प्राण को तृप्त कर रहा है।

देशपांडे कहते हैं, जिनेवा ने पेरिस को भी मात कर दिया। यहाँ प्रकृति और पुरुष का जो समन्वय हुआ है, वह पेरिस में कहाँ? किन्तु शीलारानी कहती है, शाँ जलीजे फिर भी सुन्दरतम है!

बहुत रात बीते हम होटल में लौटे। रास्ते में दुकानों की झाँकियाँ लेते—दुकानें बन्द हैं, किन्तु शीशे की खिड़कियों से उनका विभव झाँक रहा और ग्राहकों को निमंत्रण दे रहा, कल फिर आना! स्वीजरलैंड घड़ियों के लिए

मशहूर हैं—ये घड़ियाँ देखिये ! खिलौना और काठ की नफीस चीजों के लिए भी स्वीजरलैंड की ख्याति है—जरा इनकी रंगीनियाँ देखिये ! दूध की मिठाइयों के लिए भी इस देश की प्रसिद्धि है, तरह-तरह के चाकलेट, रंग के चखे, स्वाद के रंगे ! रंगीन कपड़ों के थान जो लटक रहे हैं, क्या इनकी छपाई स्वीजरलैंड में ही हुई है !

स्वीजरलैंड अपने गृह-उद्योग के लिए प्रसिद्ध है । ये वहाँ के किसान हैं, कारीगर हैं, जो अपने हाथ के बल और कौशल से अपने देश को सुखी-सम्पन्न बनाये हुए हैं और उसके राजनीतिज्ञों ने भी सदा यह बुद्धिमानी दिखलाई कि अपने देश को युद्ध से परे रखा !

३२

सामने 'जुंग फ्राउ' है!

इन्टरलाकेन
११/६/५२

वह सामाने 'जुंग फ्राउ' है और मैं अपने होटल के बरामदे में बैठा यह लिख रहा हूँ।

जिस समय यहाँ पहुँचा था, यहाँ धूप ही धूप थी। उस उजली धूप में जैसे 'जुंग फ्राउ' खो गई थी! विद्यापति ने क्या खूब कहा है—

आज पुनिम तिथि जानि मोयँ अयलौं उचित तोहर अभिसार!

गोरी देह की कामिनी पूर्णिमा की चाँदनी में खो गई! जुंग फ्राउ की उजली चोटी धूप में खोगई थी।

किन्तु अब, जब सूरज देवता डूबने जा रहे हैं, जुंग-फ्राउ का रूप-रंग निखरता जा रहा है। एक हल्का, बहुत ही हल्का नारंगी रंग उसे रँगता जा रहा है। हरी धरती और नीले आसमान के बीच एक धीमी सुनहरी चोटी जैसे उठ रही हो, खिलती जा रही हो!

ज्यों-ज्यों देखता हूँ, रंग गाढ़ा हो रहा है! राख उड़ती जा रही हो, अंगारा चमकता जा रहा हो।

उसके ऊपर बादलों के कुछ टुकड़े मँडला रहे हैं। उसके दोनों ओर दो धूसर पहाड़ियाँ दिखाई पड़ती हैं! बीच में, जुंग फ्राउ के ठीक नीचे, वह हरी-भरी पहाड़ी टोकड़ी है, जहाँ से घूम-फिर कर अभी-अभी लौटा हूँ।

बगल की ये दो पहाड़ियाँ लगती हैं, जुंग फ्राउ की ये सहचरियाँ हों। या, बीच में महारानी; दोनों बगल में दो चमर-धारिणी! हाँ, चमर-धारिणी कहना ज्यादा सार्थक होगा—देखिये न, उनकी चोटियों पर उजली-उजली बरफ चमक रही है!

हमारे यहाँ नदी की कल्पना स्त्री रूप में और पहाड़ की कल्पना पुरुष रूप में होता आया है। फिर न जाने क्यों, इस पहाड़ का नाम 'जुंग फ्राउ' रखा गया, जिसका अर्थ होता है, 'नई दुलहन'!

लेकिन नहीं, मैंने गलती की। यह तो पहाड़ नहीं, आल्पस पहाड़ की एक चोटी है। जिन्होंने हमारे हिमालय पहाड़ की एक चोटी का नाम कंचनजंघा रखा, क्या उन्होंने कोई गलती की थी!

पहाड़ की चोटियाँ—'सोने की जाँघवाली' या 'नई दुलहन'—क्या सूझ है!

किन्तु इस 'नई दुलहन' पर तो कल लिखना है। कल भोर में उसकी चोटी पर जा रहा हूँ। अभी तो दो-चार शब्द इसलिए लिखना पड़ा कि इस बरामदे पर बैठा नहीं कि वह नजर के सामने आ गई!

अरे, थोड़ी देर में ही यह क्या बन गई है? अब तो वह सच्चे सोने-सी, कुन्दन-सी चमक रही है, चमचमा रही है। कुन्दन की एक विशाल अठगासी स्तूप-सी वह लग रही है अब! क्या किया जाय, उसे देखते रहा जाय, या लिखा जाय—दोनों काम एक साथ हो, यह तो दुस्साध्य ही लगता है!

किन्तु, लिखना तो छोड़ा नहीं जा सकता। इसके लिये मुश्किल से तो समय निकाल पाता हूँ। जहाँ थोड़ी फुर्सत मिली, लिखने लगता। अन्य लोगों की क्या बात, अपने साथी भी मेरी इस खब्त से हैरत में रहते हैं!

देशपांडे उस दिन कह रहे थे, यह अद्भुत साधना साधली है आपने कि जब चाहा, लिख लिया!

हाँ, साधना ही तो है—३५ वर्षों की साधना!

जब आज भोर में जेनेवा से इन्टरलाकेन के लिये चला, लगा, स्वर्ग के एक अंचल से दूसरे अंचल की ओर जा रहे हैं।

सामने वह झील—लेकलेमन! उसके परे वह पहाड़ी, जिस:पर बादलों की आँखमिचौनी। झील के किनारे बगीचे—फल लटक रहे, फूल खिल रहे। वह एक सघन पेड़, लाल फल—क्या वह हमारी लीची है? नहीं, स्ट्राबेरी है! कैसी खटमीठी लगती है वह पीने वालों के लिये अमृत!

तरह-तरह के पेड़—फलों से लदे। बीच-बीच में कोठियाँ।

देखिये, गेहूँ पक गया है! हाँ, जून में यहाँ गेहूँ पक चुका है। और वह क्या है? क्या सरसों? पीले-पीले फूलों से सारा खेत लहरा रहा है। वैसाख में यहाँ साघ का मेला लगा है! कुछ नीले फूल भी—किन्तु यह तीसी हो नहीं सकती। आलू की धारियाँ—ऊपर की लतियाँ कहती हैं, नीचे के कंद पुष्ट हो चुके होंगे!

फिर ऊपर ध्यान जाता है—अब 'जु'गफाऊ' लाल बन चुकी है! लगता है, नवविवाहिता वधू ने लाल चूनर पहन ली हो! इस लाल चूनर ने उसे भीतर-बाहर लाल-लाल कर रखा है! क्या वह अन्तःपुर में जाने की तैयारी कर रही है?

सामने जो मकान है, वह कितना खूबसूरत है। तीन मंजिल का यह मकान, ऊपर खपरैल है। ऊपर के दोनों मंजिल पर पतले बरामदे और उनपर पंक्तियों से फूल के गमले सजा कर रखे गये हैं। सुचित्रित गमले—सुसिंचित फूल। लाल-लाल फूल—,और लीजिये, खिड़की से दो लाल फूल झाँक उठे! किस-किस फूल को देखोगे, कहाँ तक देखोगे?

लूजान तक झील का साथ रहा। पिछली यात्रा की याद आई, एक मस्त दुपहरिया यहाँ गंवाई थी। फिर बर्न पहुँचे। इतना समय नहीं कि बर्न में ठहरा जाय—टैक्सी की और सारे शहर की एक परिक्रमा कर ली! आरे के पुल पर खड़ा होकर इधर-उधर देखने का मजा लेता रहा। नदी

को कितना स्वच्छ-सुन्दर बना रखा गया है !

पार्लियामेंट भवन; बड़ा गिरजाघर, मुख्य बाज़ार । यहीं एक होटल में बैठ कर खाना खाया !

फिर रेल की सफर शुरू हुई । इन्टरलाकेन झील के किनारे-किनारे रेल जा रही है । झील में स्टीमर चल रहे हैं । कैसा अच्छा हुआ होता हम स्टीमर से आये होते । किन्तु समय कम; देखना अधिक ! रेल भागी जा रही है । बगल-बगल अंगूर की खेतियाँ हैं । अंगूर की लतायें थोड़ी-थोड़ी दूर पर पंक्तियों में लगाई जाती हैं । कमानियों पर उन्हें चढ़ाया जाता है । वहाँ देखिये, कुछ लड़कियाँ यह शुश्रूषा किस कौशल से कर रही हैं—नाज़ुक लतायें कहीं टूट न जायँ ! इन्हें नाज़ुक उँगलियाँ ही सम्हाल सकती हैं । अंगूर की लताओं के बीच अंगूर की कोठियाँ—इन्हें देखते ही आपको नशा नहीं चढ़ जाय, तो बाज़ी रख लीजिये !

इन्टरलाकेन—इसी नामकी झील पर बसा यह शहर । यहीं से 'युंगफ्राउ' के लिए रेल जाती है । इसीलिए इसकी बड़ी प्रसिद्धि !

आज तिपहरिया में यहां पहुँचा हूँ । दूसरे साथी होटल में ही रह गये थे । मैं झटपट बाहर निकला ।

सबसे पहले उस बगीचे में गया, जहाँ फूलों की घड़ी है ! यह घड़ी संसार में एक अनोखी चीज़ है । क्यारियों के बीच घड़ी की बड़ी आकृति है । घंटों और मिनटों के चिन्ह फूलों

के हों। घंटे और मिनट की दोनों सूइयों पर भी फूल खिले हैं। दोनों सूइयाँ घूम रही हैं। ज्योंही घंटा बीतता है, त्योंही एक आदमी की मूर्ति आप ही आप घड़ियाल पर चोट करने लगती है, जितने बजे हैं, उतनी बार चोट होती है, उतनी बार घड़ियाल घनघनाता है।

फिर मैं उस पहाड़ी के निकट गया, जहाँ की झाड़ियों में विलियम टेलका 'सेव' नामक नाटक अब तक खेला जाता है—बड़े धूमधाम से। अपने देश की स्वाधीनता के लिए अपने बेटे की जान पर खेलने को प्रस्तुत वह तीरंदाज! उसकी वही भावना है; जो इस छोटे से देश को आज तक स्वतंत्र रखे हुई है।

घूमघाम कर, थकथका कर, यहाँ आया और डायरी लिखने बैठा हूँ।

अरे, नई दुलहन अब सचमुच अन्तःपुर की ओर जा रही है! अंधेरा छाया हुआ है। अंधेरे में भी क्या कदम घसीटे जा रहे हो! जाड़ा भी तो लग रहा है—चलो, तुम भी अन्तःपुर में और उस नई दुलहन का सपना देखते सो जाओ—ऐसी सेज फिर कब मिलेगी तुम्हें।

३३

जुंगफ्राउ : नई दुलहन

इन्टरलाकेन (स्वीजरलैंड)
१/६/५२

भारत का स्वर्ग कश्मीर है। यूरोप का स्वर्ग स्वीजरलैंड है। कश्मीर हिमालय की गोद में हैं, किन्तु हिमालय की सबसे ऊँची चोटी इससे दूर है। आल्प्स यूरोप का हिमालय है; उसकी सबसे ऊँची चोटी ही नहीं, सबसे खूबसूरत चोटी भी स्वीजरलैण्ड में ही है। इसलिए स्वीजरलैण्ड की महिमा और भी बढ़ जाती है।

जैसी वह खूबसूरत चोटी, वैसा ही उसका मोहक नाम। जुंगफ्राउ = नई दुलहन! किन्तु इस नाम पर आश्चर्य-चकित होने की आवश्यकता नहीं। हमारे हिमालय की एक चोटी 'कंचनजंघा' है! — यानी जिसकी जांघ सोने की हो!

यूरोप-यात्रा में यदि आपने जुंगफ्राउ नहीं देखा, तो समझिये यात्रा अधूरी ही रही।

जब पिछले साल आया था, चारों ओर बादल ही बादल छाये हुए थे। बर्न (स्वीजरलैण्ड की राजधानी) में भाई सत्यनारायण के साथ कई दिनों ठहरे. किन्तु आकाश साफ नहीं हुआ। उनकी मोटर से थून तक आये, इन्टरलाकेन की झील की शुरूआत देखी, वहां से पहाड़ी चोटियों की झाँकियाँ ली और लौट गये।

क्या इस बार बिना जुंगफ्राउ देखे लौट सकते थे। कल उसकी अलग से झांकी ली, आज उसका गाढ़ालिंगन करके लौटा हूँ। अभी तक सारे शरीर में रोमांच है। भोर में इन्टरलाकेन से हमारी गाड़ी चली। ज्योंही गाड़ी पहाड़ियों के बीच पहुंची, मन-प्राण तृप्त होने लगे।

ये झुरमुटें, ये चकमक फूल, ये उछलते नाले, ये लम्बे-लम्बे पेड़, ये गगन-चुम्बी चोटियाँ! हाँ,हाँ, गगन-चुम्बी-चोटियाँ अरे वहाँ देखिये, उस चोटी पर से वह धुआँ-धुआँ क्या झड़ रहा है? धुआँ का स्वभाव है ऊपर उठना, यह नीचे क्यों झड़ा जा रहा है। समझे? यह धुआँ नहीं है। वहाँ से एक झरना झड़ रहा है, उसका पानी छोटे-छोटे कणों में विभक्त हो, यहाँ से धुआँ-धुआँ-सा दीख रहा है।

और, वह भी झरना ही है, जिसे आप उस पहाड़ी से चाँदी की चमचम लकीर-सी नीचे की ओर आती दीख रहे हैं। लगता है, गली हुई चाँदी नीचे बही आ रही हो!

नीचे ये फूल—कितने रंग के, कितने आकार के। किसी ने इन्हें बोया है? किसी ने इन्हें सींचा है? ठेठ प्रकृति की देन हैं ये। उसी के आँचल से इनके बीज झड़े, उसी की नमी ने इन्हें पहाड़ फोड़कर जमने को बाध्य किया। उसीकी कृपा-वृष्टि ने इन्हें सींचा, बढ़ाया। जो तुच्छ बीज-कण थे, वे सुन्दर पुष्प के रूप में प्रस्फुटित हुए। आप इनके रंग गिन सकेंगे? गिनिये—लाल, बैंगनी, नीला, पीला, गुलाबी, बसंती—आप कहाँ तक गिनियेगा। अधिक से अधिक दस रंगों का आप नाम दे सके हैं। किन्तु रंग क्या इतने ही हैं—ये फूल ठठाकर आपकी भाषा की असमर्थता पर हँस रहे हैं।

रंगों की क्या बात—क्या आप सभी फूलों को ही नाम दे पाये हैं!

यह लीजिये, यह गाड़ी एक स्टेशन पर रुकी! यह स्टेशन है या खिलौना-घर! काठ के बने हैं ये—किन्तु, कई रंग के काठ लगाकर इनकी शोभा कैसी अद्भुत कर दी गयी है। पीले काठ का घर—लाल काठ की खिड़कियाँ! घर के चारों ओर फूलों के गमले! खिड़कियों पर भी फूलों के गमले।

एक बड़ा पहाड़ी नाला है। दूध-सा सुफेद पानी उछलता हुआ बह रहा है। फेन की तरह झाग उगल रहे हैं। हमारी रेल गाड़ी इसी नाले का अनुसरण कर रही है। कभी नाला छिप

जाता है, कभी मगन भी होता है, कभी बायें पड़ जाता है, कभी दाहिने हो जाता है। इंजीनियर चतुर था—प्रकृति के बनाये रस्तों का सदुपयोग क्यों न करे ?

गाड़ी धीरे-धीरे जा रही है, ऊपर चढ़ रही है न ? लेकिन अपने दाहिने तो देखिये। वह भी तो गाड़ी ही है—अरे, ऊपर से नीचे इस तरह जा रही है जैसे केंचुआ सरक रहा हो। कहीं इंजिन फेल कर गई ? धड़ाम से गिर पड़ेगी—कहाँ गिर पड़ेगी ? इस खड्ड में क्या उसका नामनिशान भी ढूँढ़ा जा सकेगा ?

किन्तु आप चिन्ता न कीजिये। इंजिन फेल होने पर भी यह गिर नहीं सकेगी ? वह इंजीनियर आपसे भी होशियार था—जिसने यह असाध्य साधन किया।

दूसरा स्टेशन तीसरा स्टेशन ! यहाँ गाड़ी अधिक रुकेगी। कुछ लोग उतर रहे हैं और उस होटल की ओर बढ़ रहे हैं। होटल के बगल में वह क्या लिखा है ? आँखें तो धोखा नहीं दे रहीं लिखा है—"बाजार" भारत का बाजार इस स्वीजरलैण्ड में ? इस पहाड़ी में, इस जंगल में हमारा 'बाजार' यह शब्द यहाँ आया—कौन लाया।

[illegible] रहा है, अपनी भाषा पर अभिमान होगा [illegible] यहाँ है वह दुकान, जहाँ सब तरह की आनन्द-प्रमोद की चीजें आप [illegible] सो जायँ !

गाड़ी चली और अब लीजिये, आँखों के सामने बरफ-ही-बरफ! उजली बरफ, चमकती बरफ! क्या खाली आँखों से आप उसे देख सकते हैं यदि सूरज की रोशनी उस पर पड़ती हो?—ज्योंही उस चमकती बरफ की राशि पर नजर पड़ती है, आप से आप आँखें मुँद जाती हैं। इसीलिए तो कल ही रंगीन चश्मा खरीद लिया। गाढ़े नीले चश्मे के बावजूद बरफ कैसी चमकती दिखाई पड़ती है।

लीजिये, यह सुरंग शुरू हुई। अब बरफ और सुरंग—सुरंग और बरफ न—कैसी आँख-मिचौनी?

और, यह स्टेशन, और यह आखिरी सुरंग! यह सुरंग—इंजीनियरिंग का एक अद्भुत कौशल। स्वीस इंजीनियरों ने इसका निर्माण कर संसार में अपना रोब जमाया है।

जुंगफ्राउ की अपूर्व शोभा की चर्चा सारे यूरोप में थी, कुछ साहसी पर्वतारोही वहाँ पहुँच भी सके थे। किन्तु वह शोभा सर्व-साधारण के लिए सुलभ हो सकती है, इसकी कल्पना भी नहीं की जाती थी।

१८९३ में जुरिख का प्रसिद्ध स्वीस इन्जीनियर अदाल्फ ग्वेयर जेलर इस ओर अपनी बेटी के साथ गर्मियाँ बिताने आया था। एक दिन वह घाटियों के बीच टहल रहा था कि उसकी दृष्टि जुंगफ्राउ पड़ी और वह विस्मय-विमुग्ध होकर उसे देखता रह गया। उसी समय उसने मन ही मन निर्णय कर लिया, वह ऐसे रेलपथ का निर्माण करेगा, जिससे जुंगफ्राउ के दामन तक मानव

आसानी से पहुंच सके। २६ अगस्त की ओर में उसने ऐसा निश्चय किया और उसी रात में इसके लिए उसने उस पथ का एक खाका भी बना लिया।

उन्नीस वर्षों तक वह लगातार काम करता रहा। रास्ते-ढूंढ़े. :सड़कें बनाईं, पुल बनाये, सुरंगें बनाईं :और १ ली अगस्त १६१२ को जंगफ्राउ तक रेल ले जाने में वह समर्थ हो हो सका।

जुंगफ्राउ का यह अन्तिम स्टेशन ११.३४० फीट की ऊँचाई पर है। यह स्टेशन पहाड़ के नीचे है, उसके ऊपर तो बरफ की अनन्त-राशि पड़ी हुई है। स्टेशन से लिफ्ट के द्वारा ऊपर पहुँच जाता है।

यह गाड़ी बिजली द्वारा चलाई जाती है। जुंगफ्राउ के निकट के दो झरनों से ही बिजली पैदा की जाती है। रेल नीचे से ऊपर की ओर ससरती है। जब कभी बिजली फेल हो जाय, तो भी गाड़ी नीचें की ओर नहीं खिसक सके, वहीं की वहीं खड़ा रहे। इसके लिए इंजिन में ऐसी तरकीबें लगा दी गई हैं कि वहाँ भी बिजली बनती रहे। गाड़ी के पहियों में इस प्रकार के ब्रेक भी लगे हैं कि वह जहाँ की तहाँ रुकी रहे।

स्टेशनों पर पहुंचते ही यात्रियों की उमंग का क्या कहना ? लड़कियों की क्या बात, बुढ़ियाँ तक नाचने और गाने लगी। हम लोग बच्चों की उमंग से स्टेशन में घुसे। पहाड़ के भीतर

यह स्टेशन है, किन्तु बिजली द्वारा रोशनी और हवा का ऐसा प्रबन्ध है कि लगता है, यह साधारण स्टेशन है।

स्टेशन के छोर पर एक बरामदा है, जिस पर खड़े होकर आप युंगफ्राउ को देख सकते हैं। हम तेजी से वहाँ पहुँचे और आँखों पर रंगीन चश्मे लगाकर देखने लगे। वहाँ कई बड़ी-बड़ी दूरबीनें भी हैं, हमने उनका भी प्रयोग किया।

किन्तु, नीचे से, दूरबीन लगा कर देखने पर वह मजा कहाँ? झट लिफ्ट से मैं ऊपर चला और लीजिये, मैं बरफ पर खड़ा हूँ।

हाँ, जिन्दगी में पहली बार मैं बरफ पर खड़ा था। मैंने समझा था जमी हुई बर्फ होगी, पैर फिसलते होंगे। किन्तु वहाँ पाया नहीं, बरफ के नन्हें टुकड़े हैं बड़े मुलायम। ऊपर पैर रखकर चलिये तो खूब घासवाली जमीन पर चलने का आनन्द आता है। जिस तरह घासवाली जमीन में पगडंडी बनी होती है, वहाँ भी पगडंडियाँ थीं। मैं एक पगडंडी को पकड़ कर दौड़ा। इच्छा होती थी इधर उधर दौड़ता रहूँ। किन्तु एक अनुभवी व्यक्ति ने कहा—अरे, जरा सम्हल कर। बर्फ के नीचे कहीं-कहीं पोपली जगहें हो सकती हैं, वहाँ पैर पड़े कि आप धँसे। कौन निकाल सकता है?

तो भी इच्छा होती थी, दौड़ता ही रहूँ। ऐसी शुभ्र, शीतल सुन्दर, बेदाग जगह कब पाना भी क्या कम सौभाग्य की बात हो सकती है? यह जानता ही था, बर्फ में जो बाहु

जाते हैं, उनका शरीर कभी सड़ता नहीं। सैकड़ों हजारों वर्ष बाद भी वह वैसे-का-वैसा बना रहता है! जहाँ सड़न है, बदबू है, पिल्लू है या आग है, लपट है, झुलस है—वैसी जगहों में मरने की अपेक्षा इस बरफ की राशि में अनन्त समाधि पाना कहीं सुन्दर है, सुरुचिपूर्ण है।

तो भी जीने की कैसी लालसा। सम्हल कर, पैर बचा कर आगे बढ़ा और वहाँ पहुँचा, जहाँ एक ऊँची चबुतरानुमा जगह पर स्वीजरलैण्ड का झंडा लहरा रहा था। वहाँ से आप चारों ओर का पूरा दृश्य भरपूर देख सकते हैं।

झंडे के नीचे खड़ा हूँ एक ओर जुंगफ्राउ है और दूसरी ओर मोंच। मोंच लगता है, ऊँचाई में बड़ा है। किन्तु बात ऐसी नहीं है, जहाँ खड़ा हूँ, वहाँ से मोंच निकट है। जुंगफ्राउ दूर। मोंच को भाई कहिये, जुंगफ्राउ को बहन। बहन बड़ी है (१३६७० फीट) भाई छोटा है (१३४६५ फीट) और यह बात भी है ही कि भाई से बहन कहीं अधिक खूबसूरत है। बहनें खूबसूरत होती ही हैं—आकर्षण की केन्द्र, प्यार की केन्द्र।

सामने हूँ [illegible] जुंगफ्राउ—यूरोप की इस नवेली दुलहन-को देख रहा हूँ। वह अपनी पूरी शान के साथ खड़ी है—शुभ्र, श्वेत! सूर्य की किरणों से उसका सारा शरीर चमचम कर रहा है। लगता है, वह अभी हँस पड़ेगी, अट्टहास कर उठेगी।

उसके रोम-रोम खिलखिला रहे हैं, इतना तो अनुभव कर ही रहा हूँ।

बहुत दिन हुए, कला गुरु अवनीन्द्र नाथ ठाकुर का एक चित्र देखा था—एक ऐसी ही बरफ के स्तूप के सामने एक ऋषि खड़े हैं और उनके मुँह से अचानक निकल पड़ा है—कस्मै देवाय हविषाविधेम्!

हाँ, ऐसी जगहों में बुद्धि में यह सन्देह पैदा हो जाता है कि पूजनीय, अर्चनीय क्या है? प्रकृति का यह शाश्वत सौन्दर्य या पुरुष का वह पराक्रम जो इस सौन्दर्य को सुलभ बना देता है!

ऊपर वह जुंगफ्राउ है, नीचे वह स्टेशन है—हमारी हविष का पात्र कौन है? पुरुष या प्रकृति!

किन्तु, क्या यहाँ अधिक तर्क-वितर्क भी किया जा सकता है? अजी देखिये, देखिये, पुरुष का पराक्रम बार-बार देखने को मिलेगा, प्रकृति का ऐसा सौन्दर्य तो विरल ही प्राप्त होता है।

इस झंडे के नीचे खड़ा होकर एक ओर दृष्टि डालिये, तो १३ मिल तक फैली वह ग्लेसियर-हिमानी दीख पड़ेगी, जो यूरप की सबसे बड़ी ग्लेसियर है। तेरह मीलों तक फैली बरफ की एक लम्बी, सुहानी चादर दपदप, चमचम! दूसरी ओर, कुछ दूर तक बरफ-बरफ, फिर एक भारी खड्ड और उसके

परे हरे-भरे जंगल। यदि आप सामने की बर्फ-शाला पर चढ़ जायँ, तो वहाँ से दूरबीन द्वारा आप वह 'काला जंगल' (ब्लेक फारेस्ट) देख सकेंगे जो जर्मनी तक फैला हुआ है और जहाँ १९१४ के युद्ध में जर्मन सेना को पराजय-पत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ा था!

पाकेट से गाइड-बुक निकाल कर चारो ओर की चोटियों, ग्लेसियरों, घाटियों को पहचानना चाहता हूँ, किन्तु इसमें जो समय लगता है, वह सारे मजे को किरकिरा कर डालता है। क्या सौन्दर्य के उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि नाम-धाम की भी पूरी जानकारी कर ली जायँ?

एक ओर जुंगफ्राउ, एक ओर मोंच, एक ओर यह ग्लेसियर, दूसरी ओर वह हरा जंगल—आसमान में बादल के गाले उड़ रहे हैं, वे कभी-कभी इन पहाड़ियों की चोटियाँ चूमते-से नजर आ रहे हैं—अरे, गाइडबुक जेब में रखिये, देखिये, आँखों को तृप्त कीजिये। फिर उछलिये, कूदिये, बरफ के टुकड़े उठा कर फेंकिये, देखिये, आप की भुजा की ताकत की पहुँच कहाँ तक है? फिर, जाड़ा है तो क्या, बरफ के कुछ टुकड़े मुँह में रखिये, हँसिये, हँसाइये, चित्र खींचिये, खिंचाइये!

जाड़ा लग रहा है, आप ठिठुर रहे हैं। अपनी गरम पोशाक और ऊनी मोजे के अतिरिक्त आप नीचे से खास

इसी के लिए बनाये, लगाये और जुते चले आये हैं, तो भी आप काँप रहे हैं। नीचे चलिये, कुछ पीजिये, कुछ खाइये, गरमाइये !

किन्तु, उसके पहले ज़रा इस बरफ़-महल को भी देख लीजिये। बरफ को काट कर यह बरफ-महल बनाया गया है। बरफ की ही छत, बरफ की ही थम्भ, बरफ की गलियारी से बढ़े चलिये। यह बरफ की मोटरगाड़ी पोर्टिको में खड़ी है। बरफ की कुर्सियाँ हैं, बरफ की मेज हैं, मेज पर बरफ की बोतलें हैं, बरफ के प्याले हैं।—क्या बरफ की शराब पीजियेगा? और, बरफ के इस नाच-घर में नाचना कैसे छोड़ा जा सकता है? देखिये, कितनी जोड़ियाँ नाच रही हैं! नाचती हैं; फिसलती हैं, गिरती हैं, चिपकती हैं, उठती हैं, उठाती हैं, फिर नाचती हैं। आप नहीं नाचिये, तोभी आपकी धमनियों के रक्त-अणु तो नाच ही रहे हैं! बोलिये, ईमान से बोलिये, बात यह है कि नहीं।

और, कुत्ते की गाड़ी पर नहीं चढ़ियेगा? यदि यह शौक पूरा नहीं हुआ, तो यात्रा अधूरी ही रहेगी। सुरंग के ही रास्ते बढ़ते चलिये। उसके मुंह पर आये नहीं कि फिर बरफ का सागर लहरा उठा। वह आगे बरफ की गाड़ी है, जिसमें कई कुत्ते जुते हैं। छोटे-छोटे कुत्ते—हाँफ रहे हैं। कुछ पैसे दीजिये, गाड़ीवान इस गाड़ीपर थोड़ी दूर तक

सैर करा लायेगा। पैसे की क्या परवाह? किन्तु डर जो लगता है, बगल में कैसा ढालुवाँ है? कहीं कुछ हो गया तो? बहुत से लोग देख कर ही लौट रहे हैं। किन्तु मैं चढ़ा, देशपांडे ने साथ दिया। दोनों साथी इस झूला गाड़ी का भी मजा लिया। कुली कितने बलिष्ठ, कितने सधे। निश्चित रास्ते पर ही ले गये और ले आये।

होटल में आकर भोजन किया। बड़ी थकावट थी। पहले कुछ पी लीजिये, यहाँ पीना गुनाह नहीं है! थकान तोड़ने को इससे बढ़ कर कौन जगह मिलेगी? यह स्वर्ग है, सामने वह उर्वशी है, यह अमृत-घट है—गटागट पीजिये, अमरता प्राप्त कीजिये! फिर जो रुचे खाइये और जाइये!

हाँ, चलिये। यों तो कहा जाता है, यात्रियों को एक रात यहाँ विश्राम करना चाहिये, जिसमें भोर में उगते हुए सूरज का सौन्दर्य देखा जा सके। किन्तु, हमारी यात्रा का तो पूरा कार्यक्रम पहले से बँधा है। हमें लौटना ही है। हम लौटे।

ऐसा प्रबंध है कि लौटना दूसरे रास्ते से होता है। इससे यह सुविधा होती है कि यहाँ के पार्वतीय सौन्दर्य को हम कई पहलुओं से देख पाते हैं।

चोटियों की बरफ से, घाटियों की हरियालियों तक सबों को चूमा करते हम लौट रहे हैं। रेल के आसपास जो झाड़ियाँ हैं, उनमें तरह-तरह के फूल खिले हैं। तरह-तरह के पंछी

उड़ रहे हैं, कलरव कर रहे हैं। रास्ते में नाले मिलते हैं, झरने मिलते हैं। कई बार छोटी-बड़ी सुरंगों को भी पार करना पड़ा है।

बीच में एक ऐसा स्टेशन आया, जहाँ लोग एक ट्रेन छोड़ देते हैं। वहाँ से ऐसा प्रबंध है कि बिजली से खींची जानेवाली लटकती कुर्सियों पर बैठकर आप एक पहाड़ी की चोटी तक चले जायँ और वहाँ से आल्प्स की सारी चोटियों को एक ही साथ देख लें। हमलोगों ने ट्रेन तो छोड़ दी, किन्तु वर्षा होने लगी। यारों ने कहा, अब हम क्या देखेंगे ? हम निराश ही हो रहे थे कि अचानक बादल छँट गये, धूप खिल उठी। हम उस लिफ्ट के स्टेशन पहुँचे। देखा, किस तरह कुर्सियाँ हवा में झूलती हुई, एक मोटे डोर के सहारे आगे बढ़ती जा रही हैं। अब क्या अपने को रोका जा सकता था ? झट एक जुड़वी कुर्सी पर मैं देशपांडे के साथ बैठ गया और देखिये, देखते-देखते यह छूमंतर !

आप क्रमशः ऊपर जा रहे हैं। ज्यों-ज्यों ऊपर पहुँचिये, त्यों-त्यों पहाड़ियों के सौन्दर्य से आँखें निहाल हो रही हैं। अभी वर्षा हुई थी यह वरदान हो गया। प्रकृति जैसे अभी स्नान करके शृंगार कर रही हो ! हाँ, संध्या भी होने जा रही है ? बर्फीली चोटियों पर सोने का पानी फिर रहा है जैसे।

अरे, यह क्या? उधर दाहिनी ओर देखिये—ये क्या हैं? आहा! कई इन्द्रधनुष एक साथ उग गये हैं। एक के ऊपर एक यों जोड़ा इन्द्रधनुष मैंने कई बार एक साथ उगा देखा है। किन्तु यहाँ तो कई इन्द्रधनुष—कोई इधर, कोई उधर कई—एक दूसरे को काटते हुए! यह कैसे हुआ? क्यों हुआ? यह बादल और सूर्यकिरणों की आँख मिचौनी का करिश्मा है, जो भिन्न-भिन्न घाटियों की पृष्ठभूमि में उन्हें भिन्न भिन्न आकार ग्रहण करा रहा है—हाँ, सब के सब सतरंगी! कितना देखूँ—कितनी आँखों से देखूँ—सुन्दर, अति सुन्दर!

एक रस्से के सहारे हम ऊपर की ओर जा रहे हैं, दूसरे रस्से के सहारे कुछ लोग नीचे आ रहे हैं। आनेवाले जब हमारे निकट पहुँचते हैं, हाथ हिलाने लगते और 'चियर यू' कहने लगते! एक लड़की ने अभी कमाल ही किया है। बार-बार अपने हाथ को होंठ पर ले जाती फिर उसे हिलाती यह क्या बात? देशपांडे पुराने खिलाड़ी ठहरे, उन्होंने वैसा ही किया—लड़की ठट्ठा मार कर हँस पड़ी! ओहो दूर-दूर से यह चुम्बन का कैसा आदान-प्रदान! दो बच्चे आ रहे, वे तो ऐसे उछल रहे हैं कि लगता है, कुर्सी पर से नीचे ना गिरेंगे।

पहाड़ की चोटी तक पहुँचने में तीन स्टेशन पड़ते हैं। स्टेशन पर पहुँच कर हमारी कुर्सी एक छावनी के भीतर

घुस जाती है, वहाँ टिकटें देखी जाती हैं, फिर एक झटके के साथ कुर्सी आगे बढ़ती है।

लीजिये, यह अन्तिम स्टेशन है और हमलोग आज के अन्तिम यात्री भी हैं। सूरज डूबने जा रहा है। दिनभर का ही यह कारबार है। स्टेशन पर एक रेस्तोराँ है, यहाँ खाइये पीजिये। इधर-उधर घूमघाम कर खुली आँखों से सब देखिये। फिर यह बड़ी दूरबीन लगी है। उसके चारों ओर निशान बने हैं कि कौन-सी चोटी किधर है, कितनी दूर पर है, कितनी ऊँची है। योरप की सभी राजधानियों की दिशायें और दूरियाँ भी यहाँ निर्देशित हैं। कुछ पैसे देकर दूरबीन से भी देख लीजिये।

हम जब ऊपर जा रहे थे, नजर ऊपर थी, चोटियों पर। अब नीचे जा रहे हैं, तो नीचे देख रहे हैं! नीचे के पेड़, पौधे, कितने सुहावने लगते हैं। इन पेड़ों को देखिये—लम्बे-लम्बे! पत्ते कितने छितनार! ज्यों-ज्यों पेड़ बढ़ते हैं, नीचे की टहनियाँ आपसे आप झड़ती जाती हैं। घाटों में तरह-तरह के फूल—लगती थी, रँगबिरंगी छींट की लम्बी चादर किसी ने बिछा दी हो! हमारे नीचे जो लोग जा रहे हैं वे भी हमें देखकर हाथ हिलाते हैं। पगडंडी पर जाती हुई वह युवती किस उमंग से हाथ हिला रही है—ओहो, फूली हुई कदम्ब की डाली जैसे हवा के झोंके पर बेतहाशा हिल रही है!

जब हम नीचे के स्टेशन पर पहुँचे, एक आदमी ने हाथ उठाया। हमने भी हाथ उठा दिया। जब नीचे आया, उसने कहा, मैंने आपका फोटो लिया है। यदि पाँच फ्रैंक दीजिये, तो इसकी तीन-तीन कापियाँ हम आपके देश में भेज देंगे! कहीं ठग तो नहीं रहा! क्या हुआ, यदि पाँच सिक्के में इनकी ईमानदारी की जाँच हो गई। पैसे दे दिये।

और जब तक बम्बई पहुँचे, हमारे फोटो पहुँच चुके थे।

फिर ट्रेन। गाड़ी नीचे की ओर; जैसे फिसलती हुई जा रही हो। दोनों ओर पहाड़ियाँ। पहाड़ियाँ में छोटी-छोटी बस्तियाँ—छिटफुट! काठ के ही घर। घरों के आगे फूल की क्यारियाँ, पीछे साग-सब्जियाँ! गाड़ी के डब्बे में कुछ बच्चे चढ़े थे। इस सुहाने समाँ का प्रभाव उनपर भी पड़ा है क्या? वे किस तरह शोर मचा रहे हैं—गा रहे हैं, चिल्ला रहे हैं।

जुंगफ्राउ—कितना आकर्षण है इस नई दुलहन में। हमारे डब्बे में ब्राजिल के, आस्ट्रिया के, जर्मनी के, स्पेन के लोग थे, जिनका पता हमें अनायास लगा। न जानें इसी ट्रेन से कितने देशों के लोग जा रहे होंगे। मर्द हैं, औरतें हैं, बच्चे हैं। वह ब्राजिल की लड़की शीलाजी की साड़ी को किस ओर से घूर रही है! वह जर्मन युवक अपनी टूटी-फूटी अँगरेजी में शिवाजी से बातें कर रहा है!

झुटपुटे के वक्त हम इन्टरलाकेन पहुँचे ! सोचा, एक बार उस फूल की घड़ी को फिर देख लूँ। उस बगीचे में पहुँचा। रोशनी का ऐसा सुन्दर प्रबंध कि सारा बगीचा चकमक कर रहा। कुंजों में प्रेम का आदान-प्रदान चल रहा है। उस मकान से संगीत की मधुरधारा फूट रही है। फूल की घड़ी की फूल की सूइयाँ आठ पर आती हैं—घड़ी से संलग्न खिलौने का चपरासी घड़ियाल पर चोट देता है, गिनिये—एक,... दो...तीन चार ... .

३४

वेनिस की ओर : इटली की देहात

१३/६/५२

इन्टरलाकेन से वेनिस

आज भोर में ही हम इटली के लिए रवाना होने लगे। आठ बजे तक नहा-धोकर, जलपान करके, हम अपने कमरे से होटल के नीचे चले आये। वहाँ पैसे चुकाये, कुछ तस्वीरें खरीदीं और चल पड़े स्टेशन की ओर।

जित्तिन के लिए जो घड़ी खरीदी, कल पाया, वह अचानक बंद हो गई है। बड़ी घबराहट हुई। मैनेजर को दे दिया था, देखें, कि कहीं मरम्मत हो जाय। तब तक दुकानें बंद हो चुकी थीं, अतः उसने वैसे ही लौटा दिया—हाँ, कहा, कि यह मेरी घड़ी भी नई है, इसी कीमत की है, यदि आप चाहें, तो इसे ले जायँ, मैं यहाँ बनवा लूँगा। बेचारा नहीं चाहता होगा कि उसके देश की शिकायत हो : किन्तु, हम तो सोचने लगे, कहीं ठग तो नहीं रहा है!

[बम्बई आते-आते घड़ी फिर ठीक से चलने लगी।]

आज थोड़ी धुंध-धुंध थी। बादल के टुकड़े सामने की पहाड़ियों पर उमड़-घुमड़ रहे थे। चलती बार जुंगफ्राउ

की ओर देखा—लगा, उसके अपने चेहरे पर जैसे एक झीनी चादर डाल ली हो। क्या इसमें भी वह खूबसूरत नहीं लगती थी ?

इन्टरलाकेन में गाड़ी के जिस डब्बे में चढ़े, उसमें जगह नहीं थी। हम खड़े थे। कंडक्टर गार्ड आया, उसने कहा, सेकेंड क्लास में जगह नहीं है, तो चलिये फर्स्ट क्लास में बैठिये, वहा खाली सीटें हैं। अपने देश का अनुभव था, सोचा, मुफ्त के अधिक पैसे लग जायेंगे, थोड़ी दूर खड़े-खड़े ही चलें। कहा, हमारे पास सामान हैं, इन्हें छोड़कर कहाँ जायँ। उसने कहा—सामान की जिम्मेवारी तो मेरी है ! तब खुल कर कह दिया, हम अधिक पैसे खर्च नहीं करना चाहते। वह मुस्कुराया, बोला—अधिक पैसे लगाने की बात कहाँ है ? आपको हमने टिकटें काट दी; तो यह जिम्मेवारी हमारी है कि आपको जगह दें। सेकेनड क्लास में जगह नहीं दे पाये, तो फर्स्ट क्लास के हकदार आप हो ही गये ! फिर जहाँ सेकेन्ड क्लास में जगह खाली होगी, आपको हम सूचना दे देंगे। हाँ, यह भी देखेंगे कि आपलोगों के लिए चार सीटें एक ही जगह मिल जाय !

गाड़ी जा रही है। हमलोग तृषित नेत्रों से चुप-चाप जमीन को देख रहे हैं। वह झील हैं, वे पहाड़ियाँ हैं, वे बगीचे है, वे खेत हैं ! नावें पाल उड़ा रही हैं, बादल चोटियों से लिपट रही हैं, बगीचे फलों से लदे हैं, खेतों फूलों और

अनाजों से भरे हैं। इच्छा नहीं होती कि इस खूबसूरत देश को छोड़ें—किन्तु, छोड़ना ही पड़ रहा है! गाड़ी द्रुतवेग से भागी जा रही है।

हमारे डब्बे में एक झुंड भारतीय हैं। ये लोग गुजराती हैं, छः लड़कियाँ, दो नौजवान! वाह, क्या कहने? अपने देश में तीन-यात्रियों में स्त्री-पुरुष का यह। अनुपात रहता है! देहात से एक झुंड स्त्रियाँ निकलती हैं, बस दो-चार मर्द ले लिए! ये लोग पढ़े-लिखे हैं। झुंड का नायक व्यापारी है, लंदन में उसकी दुकान की शाखा है!

रास्ते में गाड़ी बदलनी पड़ी। पेरिस से मिलान तक एक थ्रू ट्रेन जाती है, हमने उसे पकड़ा।

गाड़ी भागी जा रही है, हम स्वीजरलैंड को पीछे छोड़ते जा रहे हैं। स्वीजरलैंड और इटली के बीच एक लम्बा दर्रा है, इसीमें यूरोप की सबसे बड़ी सुरंग है। जब रेल सुरंग में घुसने जा रही थी, हमने स्वीजरलैंड को भर-आँखों देख लिया! क्योंकि यह सुरंग हमने पार की और हम इटली में पहुँच गये!

और, यह इटली का पहला स्टेशन है। अरे, थोड़ी देर ही लगा कि दूसरे लोक में आ गये। देशों की सीमायें कृत्रिम नहीं होतीं। मानता हूँ, अब होने लगी है, किन्तु पहले ऐसी बात नहीं थी। अगल-बगल के दो देशों में भी कितना अन्तर होता है। फ्रांस से ज्यों ही स्वीजरलैंड में

घुसिये, आप कह सकेंगे, यह दूसरा देश आ गया। स्वीजर-लैंड से इटली में घुसे और स्पष्ट लक्षित हुआ, हाँ, यह दूसरा देश है।

धूप तेज है, गर्मी अधिक है। लोगों के चेहरे पर ललाई की जगह उजलापन (पीलापन कहिये) अधिक है। नाक काफी ऊँची है। फेरीवाले चिल्लाचिल्लाकर चीजें बेचते हैं। फेरीवालों की तादाद भी अधिक है और वे एक-दूसरे से प्रतिद्वंदिता करते-से लगते हैं। लगता है, हमारा देश अब हमसे अधिक दूर नहीं है!

लन्च का थैला मिल रहा है। सस्ता पड़ेगा—खरीद लीजिये। कागज का यह थैला—सबकुछ है इसमें। गोश्त है, रोटी है, पनीर है, सब्जी है, नमक है, दांत खोदने की लकड़ी है और पीने के लिए यह लाल बोतल है! आपको प्यास लगी है, पानी चाहते हैं? अजी साहब, यहाँ की प्यास लाल पानी से ही बुझती है! और, यह लाल पानी खास इटालियन है—जरा बोतल में मुँह तो लगाइये! या कागज का यह गिलास है, उसीमें ढाल कर चखिये!

इटली में ज्यों-ज्यों घुसते गये, यह स्पष्ट होता गया यह देश मुख्यतः कृषि-प्रधान है! गेहूँ की फसल पक रही है। जहाँ देखिये, वहीं लाल-लाल बालियों से भरे खेत! फसल अच्छी लगती है, बालियाँ पुष्ट लगती हैं। कहीं-कहीं कटनी भी शुरू हो गई है। कटनी के कई तरीके—

कहीं लोग हाथ से काट रहे हैं। किन्तु अपने देश की तरह हँसिया लेकर, झुक कर नहीं। एक डंडे के सिर पर हँसिया बँधी है, खड़े-खड़े इस डंडे के सहारे हँसिया को गेहूँ की जड़ में लगाते हैं और बेचारे गेहूँ के पौधे कट कर गिर पड़ते हैं। गिरते हैं, बड़े सलीके से, एकसिर-हाने ! इधर-उधर नहीं बिखरते। कहीं-कहीं घोड़े जुती हुई मशीन से कटाई होती है, कहीं-कहीं विशुद्ध मशीन से भी।

खेतों में पुलियाँ पड़ी हुई हैं, बोझे पड़े हुए हैं। बोझे सिर पर नहीं ढोये जाते—घोड़ागाड़ी या बैलगाड़ी पर उन्हें ढोकर कर ले जाते हैं! यूरप में यह पहली बार बैलगाड़ी देखने का अवसर मिला है! यही नहीं, वहाँ देखिये, बैलों से वहाँ जुताई भी की जा रही है। तभी तो कहता हूँ, अपना देश अब अधिक दूर नहीं जान पड़ता।

खेतों में मर्द काम कर रहे हैं, औरतें काम कर रही हैं, बच्चे भी काम कर रहे हैं ! बच्चे काम करें, यह भी यहीं देखा। अभी तक बच्चे को खेलते या पढ़ते ही देखा था ! लोगों के शरीर पर कपड़े भी कम हैं—मर्द प्रायः नंगे बदन हैं, बस कमर में पैंट-मात्र। हाँ, सिर पर टोप हैं—धूप कड़ी है न ? औरतों की चोली और घाँघरा भी अपने देश की निकटता की सूचना देते हैं।

गेहूँ की कटनी हो रही है और मकई के पौधे लहरा रहे हैं। मकई के पौधे छोटे-छोटे भी कहीं-कहीं; किन्तु

ज्यादातर कमर-भर के। कहीं-कहीं धनबाल भी निकल रहे हैं उनमें! इनके पौधे भी पुष्ट, गहरे हरे रंग के हवा में मस्ती से झूल रहे हैं वे!

लगता है, गेहूँ और मकई यहाँ की प्रमुख फसलें हैं।

यों दूसरे अनाजों के भी पौधे दिखाई पड़ रहे हैं। कई जगह धान लहरा रहा है, उसके खेत में पानी छल-छल बह रहा है। जई की फसल भी काफी पैमाने पर देखी। मसूर की तरह के कुछ पौधे भी दिखाई पड़ते थे, न जाने वे क्या थे? घास की खेती भी हर जगह पाई—जब पशु पालते हैं, तो उनके लिये खेत का कुछ अंश तो निकाल ही देना चाहिये।

खेत की मेडों पर यहाँ प्रायः छोटे-छोटे पेड लगे देखे। कत्तार में वे पेड़, झुरमुट बाँधे, बड़े लुभावने लगते थे। जिन खेतों में कटनी हो गई है, इन पेड़ों के चलते, वे खेत भी सुहावने लगते हैं। ये तूत के पेड़ हैं, इनपर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं, फल भी मिलता है।

बहुत से खेतों में, खास कर साग-सब्जी के खेतों की मेड़ों पर अंगूर की लत्तियाँ भी प्रायः देखीं। कत्तार में पतली-पतली कमाच्चियाँ गाड़ दी गई हैं, अंगूर की लत्तियाँ उन्हीं के आसरे बढ़ कर ऊपर छितनार—सी बनी हैं। लगता है, वे हाथ-हाथ बढ़ा कर एक दूसरे से आलिंगन करने को व्याकुल हों।

साग-सब्जीयों में आलू, कोबी, प्याज, लहसुन ,टमाटर और सलाद की क्यारियाँ प्रायः दिखाई पड़ती थीं। आपने प्याज को पहली बार यूरोप में देखा—लम्बी-लम्बी उनकी टंडलें हैं तो नीचे गोल-गोल बैठे भी होंगे।

दूर-दूर पर गाँव। गाँव में प्रायः ही गिरिजाघर के कलश दिखाई पड़ते। सिलोने ने कहाँ था न, मेरे देश में धर्म का इतना प्रभाव अब तक है कि वहाँ कम्यूनिज्म जड़ जमा नहीं सकती!

किसान मेहनती तो लगते थे, किन्तु वे सम्पन्न नहीं मालूम होते। बदन पर न वैसा गोश्त, न चेहरे पर वैसा रंग। पोशाक भी अधिक नहीं, जो है, वह भी अच्छी नहीं। लड़कियों की पोशाक भी चमकीली-भड़कीली नहीं। स्वीजरलैंड की तरह गुलथुल बच्चों का भी अभाव!

देहात की सड़कें भी पक्की और सुथरी। उन पर मोटरें ट्रक, साइकिलें, मोटर-साइकिलें प्रायः दौड़ती दीखती। देखिये, वह मोटर-साइकिल, पिछली सीट पर वह लाल घाँघरे वाली लड़की उड़ती जा रही है!

क्या निकट में कोई शहर है?

हाँ, गाड़ी 'मिलान' पहुँची। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने इसे 'मिलन' बना दिया था। किन्तु यहाँ यह 'मिलानो' है।

इटली भी यहाँ 'इतालिया' है!

अँगरेज़ों के अनुकरण पर हम नामों का उच्चारण कर अपने को कितना धोखे में रखते हैं!

मिलानो में गाड़ी बदलती है, जिसमें दो घंटे लगते हैं! क्यों नहीं इस समय का उपयोग किया जाय!

सामान स्टेशन के सामान-घर में जमा कराकर हम स्टेशन से बाहर आये। बाहर से स्टेशन की ओर नज़र की, तो उसके भव्यता और विशालता का रोब छा गया। सामने जो सड़क है, कितनी साफ है। घासों और फूलों की ऐसी कारीगरी की गई है कि लगता है, शहर में नहीं जाकर इसीके आसपास चक्कर काटते रहें।

टैक्सी करके आगे बढ़े—मकान अच्छे, सड़कें अच्छी। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब भले, साफ-सुथरे और खूबसूरत लगे। युवतियों का सौन्दर्य निस्सन्देह मुग्धकर—उनका रंग, उनके चेहरे की काट, उनके बाल, उनके उभड़े सीने, उनके कुल्हे, उनके पैर, उनकी चाल—सबमें सुघड़ाई! इटालियन चित्रकारों द्वारा चित्रित तस्वीरें आँखों के सामने नाच उठीं!

यहाँ का ओपेरा-हाउस यूरोप में विख्यात है—बाहर से ही उसकी झाँकी ली। यहाँ का गिरजा-घर भी यूरप के पाँच बड़े गिरिजाघरों में स्थान पा सका है, उसके आँगन में घूम-घाम लिया, भीतर गये। भीतर की मूर्तियों और

चित्रों की शोभा का क्या कहना ? ईसा की भव्य मूर्ति के सामने जाकर मैंने सिर झुकाया। वहाँ दीये जल रहे थे, अपने मन्दिरों का वातावरण। आँगन में कबूतरों की भरमार और भरमार फोटोग्राफरों की जो आपसे आग्रह करेंगे, इन कबूतरों के साथ फोटो खिंचवाइये।

मिलानो से वेनिस की ओर! देहात के पिछले दृश्य गुजर रहे हैं और लीजिये, यह वेनिस!

आपका Venice किन्तु यहाँ वालों का Venezia.

३५

यह पानी पर का शहर

वेनिस
१४।६।५२

कल कुछ रात बीते वेनिस पहुँचा था। दूर से ही पाया, यह शहर झील पर बसा है। रोशनी जगमग कर रही थी, उसका प्रतिबिम्ब पानी में झलमल कर रहा था। स्टेशन शानदार—ज्योंही बाहर निकले, पाया, हमारे निश्चित होटल का प्रतिनिधि हमारे लिए प्रतीक्षा कर रहा है।

गोन्दोलो, गोन्दोलो! यह गोन्दोलो, नाव है! पतली डोंगी, सजी-सजाई। वेनिस का यह रथ है। वेनिस का यह समूचा गाँव एक झील पर बसा है, नीचे पानी, ऊपर नगर! सड़कों की जगह यहाँ नहीं हैं। गलियाँ भी पतली नहरें ही।

हम लोग गोन्दोलो में सवार हुए। डोंगी हिल रही है, मेरे साथी घबड़ा रहे हैं। किन्तु मैं तो जिन्दगी-भर नाव पर खेलता रहा—बेनीपुर में चार महीने तक तो इसी पर आना-जाना होता है। मुझे मजा आ रहा था।

जब गलियों से जा रहे थे, कई जगह देखा, नाच-गान हो रहा है! दो बार जब पुल के नीचे से जा रहा था, ऊपर से

फ्लैश-लाइट द्वारा हमारा फोटो खींच लिया गया और ऊपर से ही कार्ड गिरा दिया गया—लीजिये यह कार्ड ! कल इस पते से अपना फोटो मँगवा लीजियेगा ? वाह कैसी सरस व्यवस्था है !

जो होटल हमारे लिए ठीक किया गया है, वह झील के किनारे एक शानदार होटल है। बीच झील में एक टापू है, जिस पर रोशनी चमचम कर रही है। दिन भर की रेल-यात्रा से काफी थके ; हम सवेरे ही सो गये !

भोर में उठे। यह वेनिस है, "मर्चेंट आफ वेनिस" का वेनिस—पोर्शिया का वेनिस, आन्टोनियो का वेनिस, साइलौक का वेनिस, क्या पोर्शिया की बहनें जीवित हैं, क्या अन्टोनियो का खानदान बचा है, क्या साइलौकि का छुरा सदा के लिए भोथरा हो चुका है ?

कहाँ से देखना प्रारम्भ करूँ ? सबसे पहले किसको खोजूँ ?

ज्यों ही होटल के नीचे आये, उनलोगों ने बताया, अभी भोर में एक पानी-बस निकट के एक टापू में जाता है, जहाँ काँच के खूबसूरत काम होते हैं, उन्हें देख आइये। तो यहीं से शुरू हो ! किन्तु, आगा-पीछा करने में बस छूट चुकी है, एक मोटर-नाव करके चले !

हमारी मोटर-नाव ग्रैंड-कनाल से जा रही है। यही सबसे बड़ी नहर है, इसी के किनारे प्रायः सभी ऐतिहासिक स्थान हैं। बड़े-बड़े भवन, गिरजा घर। लेकिन लगता है, सभी

श्री हीन। ऐसा क्यों लग रहा है? क्या हमारा मन ही खिन्न है? क्या मौसम अच्छा नहीं है?

ग्रैंड कनाल पार कर हम झील में पहुँचे और वहाँ से उस टापू की ओर चले। पानी गंदा है कुछ सड़ाँध-सी गन्ध है। बात क्या है? सामने यह छोटा-सा टापू। टापू पर एक गिरजा घर—खूबसूरत तो है वह। और उस ओर जो वह मोटर-नाव जा रही, उस पर क्या है? अरे, फूलों से लदी एक अर्थी है। जो मरा है—बड़ा आदमी मरा है। शानदार अर्थी है, लोग काली पोशाक पहने हैं पुरुष भी स्त्रियाँ भी। इस टापू में श्मशान है। वहीं ले जा रहे हैं? यात्रा के समय अर्थी देखना शुभ शकुन होता है—क्या हमारी आज की यात्रा अच्छी रहेगी? हम क्या पायेंगे? हम जो पायें, यह तो जा रहा है—

आये हैं सो जायेंगे, राजा, रंक, फकीर।

कबीर-बाबा क्या कहते हैं आपके। आपके 'शब्द' सदा हृदय छूते रहे हैं!

हम जिस टापू में जा रहे थे, उसे 'मुरानों' कहते हैं। एक टापू "बुरानों" भी है। अजीब-अजीब नाम हैं, दुनिया में, इटली में "आ" कारान्त "ओ" कारान्त और "ई" कारान्त नाम अधिक हैं।

मुरानों के निकट पहुँचकर देखा, कुछ बच्चे घुटने-भर पानी में घुसकर पानी के नीचे हाथ से कुछ टटोल रहे हैं, शायद केंकड़े की खोज में हों। समुद्री केंकड़े बड़े स्वादिष्ट होते हैं। इन्हें देख

कर अपने गाँव के मछुओं के बच्चों की याद आ गई। वे किस तरह बेखटके पानी में कूद जाते, मछली मारते, केंकड़े पकड़ते हैं।

घाट पर हमारी प्रतीक्षा में उस कारखाने का एक युवक प्रतिनिधि मिला। वह हमें भीतर ले गया। छोटा-सा कारखाना ३०, ३५ आदमी काम करते हैं, जितने हमारे यहाँ किसी भी लुहार-खाने या बढ़ई-खाने में काम करते हैं। भीतर एक बड़ा चुल्हा जल रहा है। चुल्हे के चारों ओर चार मुँह हैं। उन मुँहों से शीशे को भीतर पहुंचाते हैं। चुल्हे की धधकती उजली आग में शीशा तुरत ही मुलायम बन जाता है, मोम-सा मुलायम। फिर उसे बाहर लाते हैं और उसे तरह-तरह के रूप देते हैं। रंग तो चुल्हे में ही दे देते हैं। हमने देखा, एक उजला शीशा चुल्हे के भीतर ले गये और वहीं कुछ ऐसी रसायनिक चीजें डालीं कि शीशा हरा हो गया। जब मुलायम शीशा चुल्हे से बाहर आता है, किस फुर्ती और सफाई से उसे तरह-तरह के आकार दे देते हैं। जो शीशे का लोंदा लगता था, देखिए, वह तुरत फूल, पत्ता, पंछी जानवर क्या-क्या नहीं बन गया। बस, अंगुलियों के चार-पाँच मोड़ दिये, कि देखिये, यह हंस तैयार हो गया।

हंस में पंख तो बाहर लगेंगे। चुल्हा-घर से बाहर एक कोठरी है जहाँ इन चीजों पर बारीक कारीगरी की जाती हैं। चार लड़कियाँ और एक पुरुष यहाँ काम कर रहे हैं। हाँ, लड़कियाँ चार हैं। उन्हीं की पतली अँगुलियाँ तो

ऐसा बारीक काम कर सकती हैं ! इन चीजों पर वे सोने-चाँदी का पानी चढ़ा रही हैं, उनपर तरह-तरह की चित्रकारियाँ कर रही हैं। कितनी जल्दी, कितनी सफाई से—कि देख कर आश्चर्य होता है। वह देखिये, वह लड़की हमारी इस आश्चर्य-मुद्रा को देख कर मुस्कुरा पड़ी ! कितनी सुन्दरी है यह—तो भी अपने हाथ की कारीगरी की रोटी खाना ही इसे पसंद है ! गुलाब-सा चेहरा, मोम-सी उँग-लियाँ ! उँगलियाँ तब भी काम कर रही हैं, जब वह हमारी ओर देख कर मुस्कुरा रही है !

कुल तीस-पैंतीस आदमी यहाँ काम करते हैं किन्तु जब इनके प्रदर्शन-कक्ष में गया, देखकर दिमाग चकरा गया। कितनी तरह के, कितने आकार-प्रकार के, कितने रंग के, कितना सामान इकट्ठा कर रखा है यहाँ ! शराब के, चाय-काफी के, जलपान के, भोजन के, कमरे सजाने के, शृंगार के, रोशनी करने के, खिलौने के ऐसे-ऐसे सेट की देखदेख कर तबीयत लहालोट हो रही है। दाम भी कुछ अधिक नहीं—यदि पाँच सौ रुपये खर्च कर दीजिये, तो आपका कमरा जग-मगा उठे ! किन्तु, सवाल है, काँच की चीजें, लाई कैसे जायँ ? और यहाँ-वहाँ की 'ड्यूटी' तो अलग ! एक-एक मटके, झारी, तश्तरी, प्याली, हंडे, फानूस, आदि पर तृषित नेत्र डालते हम वहाँ से बाहर हुए।

पता चला, ये लोग अपनी चीजें संसार-भर में भेजते

है। भारत में कलकत्ता, बम्बई, करांची सब बड़े शहरों में इनके एजेंट हैं। इस तरह के कारखाने वेनिस में बहुत-से हैं। जिस तरह स्वीजरलैंड, का घरेलू उद्योग घड़ी बनाना है उसी तरह वेनिस का घरेलू धंधा शीशे के ये सामान तैयार करना है। यहाँ से लौटकर जब हम वेनिस पहुँचे, तो शाम को एक सज्जन आग्रहपूर्वक हमें अपने घर ले गये थे। वहाँ-भी ऐसा ही कारखाना। दरियाफ्त किया तो पता चला, एक ही परिवार के लोग इस कारखाने को चलाते हैं। अपना कारखाना दिखानेवाली उस लड़की ने मुस्कुराकर कहा:—मेरे पिताजी छः भाई हैं। हर भाई के चार-पाँच-छः बच्चे हैं। अतः अपने ही परिवार के २५—३० प्राणियों को लेकर हम इसे चला रहे हैं—भारत में इनका भी माल जाता है!

बार-बार सोचने को बाध्य होना पड़ता है, क्या अपने देश में कुछ ऐसे उद्योगसंघ नहीं चलाये जा सकते! अपने यहाँ तो गृह-उद्योग का अर्थ सिर्फ चरखा, घानी या चटाई है—जब कि दिनरात के व्यवहार की छोटी-छोटी चीजें भी हम बाहर से मँगाते हैं! वेनिस का वैभव उसके यात्रियों के आगमन पर निर्भर करता है। जब-जब लड़ाई छिड़ती है, यात्रियों का आना-जाना प्रायः बंद हो जाता है। उन दिनों इन गृह-उद्योगों के बल पर ही वेनिस अपने को ज़िन्दा रख पाता है!

अपने होटल में आकर भोजन किया। दिन में मैं कुछ सोना पसंद करता हूँ। किन्तु कल शाम में ही चल देना है—अतः जितना अधिक देख लिया जाय, इस दृष्टि से हम खाकर तुरन्त बाहर निकले!

लीडो की ओर—जिसके नाम पर पेरिस के शाँ जलीजे में इन्दूसभा बसाई जाती है, भला, उसी को नहीं देखा जाय! पानी-बस के अड्डे पर गया, हर दस मिनट पर ये पानी-बसें छूटती हैं। भाड़ा भी बहुत कम। ये सरकारी बसें हैं। हरे पानी को चीरती हमारी यह बस भागी जा रही है! कभी वेनिस के किनारों को, कभी टापुओं को देखते हम लीडो की ओर बढ़ते जा रहे हैं।

लीडो में प्रवेश करते ही उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। पचास वर्ष पहले तक यह टापू मछुओं की बस्ती रहा है, आज यूरोप के सर्वोत्तम क्रीड़ा-केन्द्रों में परिणत हो गया है।

लीडो के बीचोबीच हम जिस सड़क से जा रहे हैं, जरा इसीकी शोभा देखिये। सड़क कितनी चौड़ी, कितनी चिकनी। उसके दोनों ओर पेड़ों की दो-दो पंक्तियाँ। दोनों पंक्तियों के पेड़ों के पत्ते दो प्रकार के। सड़क पर रोशनी के लिए जो खम्भे गाड़े गये हैं, उनकी बनावट कैसी कलात्मक है। उनके ऊपर जो शीशे के हंडे हैं, उनकी शकल भी देखने लायक। पेड़ों की दोनों पंक्तियों के बीच जो पतली पगडंडी है, उनके

खम्भे तो और भी सुन्दर। दो-दो पतले खम्भे एक साथ गड़े हैं, जिसके ऊपर जो डंडे हैं उनके नीचे तीन-तीन बत्तियों के गुच्छे हैं। भाई देशपांडे कहते हैं, संध्या होने पर जरा हम यह भी देख जायँ कि रोशनी में यह सड़क कैसी खूबसूरत लगती है।

सड़क के किनारे जो दुकानें और रेस्तोराँ हैं, उनकी शोभा भी कितनी आकर्षक है। फूलों की भरमार, लताओं की भरमार। एक रेस्तोराँ में तो लताओं का ही पूरा मंडप बना है। इटली के गुलाब बहुत खूबसूरत होते हैं, खासकर लता-गुलाब तो ऐसे खिलते हैं कि सिर्फ फूलों के गुच्छे-ही-गुच्छे दिखाई पड़ते हैं। इटली के गुलाब का रंग भी बहुत सुन्दर होता है और यहाँ के गुलाब में भीनी गंध भी है!

किन्तु, अपने को इन जड़ गुलाबों में ही मत उलझाइये। बढ़े चलिये, यह आप समुद्र-किनारे आ गये और देखिये, यहाँ चलते-फिरते गुलाबों का कैसा मेला लगा है। पिछली यात्रा में लुजान में भी हमने स्नान-क्रीडा के दृश्य देखे थे, किन्तु, इसके आगे उसकी याद आ गई, यही गनीमत!

समुद्र के किनारे पंक्तियों में अनेक काठ के छोटे-छोटे घर बने हुए हैं। स्नानार्थी आते हैं, उनमें एक घर ले लेते हैं। घर में टेबुल है, दो एक चेयर हैं, दो कुर्सियाँ हैं—बड़ा आइना है, कंघी है। नहाने के दो वस्त्र हैं। कपड़े खोल दीजिये इन्हें पहन लीजिये। मर्द के लिए एक कोपीन काफी—औरतों के लिए

छाती पर की एक कोपीन भी। ये देह से ऐसे चिपकी होती हैं कि नहाने, उछलने, कूदने में जरा दिक्कत न हो।

सामने समुद्र लहरा रहा है—हरा-भरा पानी, तरंगों पर तरंगें आ रही हैं, तटभूमि से टकरा रही हैं। तट-भूमि पर हजारों आदमी नहा रहे हैं, युवक हैं, युवतियाँ हैं, बच्चे हैं, बूढ़े हैं। बच्चों के उत्साह का क्या कहना? छोटे-छोटे बच्चे—पानी में घुसते जा रहे हैं, पानी उछालते जा रहे हैं। जब तरंगे आती हैं, उनसे खेलते हैं, उनपर हाथ-पैर पटकते हैं। देखिये, यह बच्चा धीरे-धीरे कितने पानी में चला गया—और यहाँ हमारे शिवाजी हैं कि नाव पर चढ़ने से भी डरते हैं!

युवक-युवतियों का तो यह मेला ही है जैसे। सारे कपड़े उतार कर, पुरुष सिर्फ कमर में और स्त्रियाँ कमर और छाती पर पतली कोपीन बाँधे, समुद्र में कूद रहे हैं, तैर रहे हैं, नावें खे रहे हैं, एक-दूसरे पर पानी उछाल रहे हैं। उनकी हँसी, उनकी उमंग समुद्र की तरंगों से होड़ ले रही है। जब वे अपने को पानी में खूब थका लेते हैं, तो तट पर आते और बालू पर लेट जाते हैं—जोड़े-जोड़े में, सट-सट कर! कोई चित्त कोई पट्ट, कोई इस करवट, कोई उस करवट। सबकी एक ही हालत—किसको शरमाने की फुर्सत है, एक-दूसरे को देखने की फुर्सत है। मातायें अपने बच्चों को लेकर नहला

रही हैं और उनके सामने ही अपने पतिदेवों से किलोलें कर रही हैं। जैसे ये सब क्रियायें परम स्वाभाविक हों।

इन कोपीनों में इन युवक-युवतियों का शरीर सौन्दर्य किस प्रकार उभड़ आया है। खूबसूरती पेरिस में भी देखी थी, किन्तु फ्रांस और इटली की खूबसूरती में एक खास अन्तर है। इटली के प्राचीन चित्रों में माता-मेरी की तस्वीरें प्रायः देखी थीं—एक हृष्टपुष्ट माता, जिसकी छाती मातृत्व के रस से लबालब! यहाँ उसके प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं! उभड़ी, उभड़ी हुई छातियाँ, पतली कटि, पुष्ट नितम्ब, सघन जाँघें—मालूम हो रहा है, जैसे माइकेल ऐंजेलो या किसी अन्य इटालियन मूर्तिकार की बनाई संग-मरमर की मूर्तियाँ यहाँ प्रत्यक्ष चल-फिर रही हैं। हमने पाया, यहाँ की स्त्रियों का कटि से ऊपर का भाग जितना हल्का होता है, कटि से घुटने तक का भाग उतना ही पुष्ट। कालिदास के 'कुमार-सम्भव' में युवती पार्वती का वर्णन स्मरण हो रहा है और याद आ रही है, अपने देश की आधुनिक युवतियों की—जो सिर्फ तेल, क्रीम, पाउडर से अपने को चमकाना चाहती हैं और इतना घी-मक्खन खाती हैं कि थोड़े दिनों में ही बदरूप बन जाती हैं। यहाँ यह भी देखा, मर्द बड़े तगड़े और उनकी पत्नियाँ प्रेमिकायें शरीर की हल्की-फुल्की। हमारे यहाँ उलटा है, पतिदेव तो जैसे के तैसे दुबले रह गये और शादी होते ही लड़कियाँ फूल कर कुप्पा बन गईं!

समुद्र-तट पर ही एक रेस्तोराँ है। हम वहीं खा रहे थे, ये दृश्य देख रहे थे। लौट कर फिर अपने होटल में आये और थोड़ा विश्राम कर फिर चले कला-प्रदर्शनी देखने !

वेनिस में हर दो वर्ष पर कला-संगम होता है। यह जोड़े वर्ष पर होता है—इस साल ५२ है न ? यह हमारा सौभाग्य है। हमारे पास जो गाइड-बुक है, उससे पता चलता है —१४ जून से १६ अक्टूबर तक अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक कला-प्रदर्शनी होगी , ८ अगस्त से १२ सितम्बर तक अन्तर्राष्ट्रीय सिनेमा-प्रदर्शनी होगी , १० सितम्बर से २२ सितम्बर तक अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक संगीत-प्रदर्शनी होगी और २३ सितम्बर से ५ अक्टूबर तक अन्तर्राष्ट्रीय नाटक-मेला लगेगा ! यों जून से अक्टूबर तक वेनिस अन्तर्राष्ट्रीय कला का संगम-स्थल बनने जा रहा है !

आज १४ जून है न ? कम से कम इसका प्रारम्भ तो देख लें । जब हम लीडो जा रहे थे, रास्ते में , किनारे पर झंडे-पताके, तोरण-बन्दनवार आदि देखे थे। लोग उस ओर जल्दी-जल्दी बढ़ रहे थे। हम भी उनके साथ हो लिये ।

कितनी विशाल प्रदर्शनी है । कितनी दूर में फैली— हर देश के लिए अलग-अलग कमरे हैं। कई देशों के लिए तो पूरे के पूरे मकान हैं, जिनमें कमरों की भरमार

है। इटली के लिए सबसे अधिक स्थान लिया गया है इटली यूरप में कला-भूमि रही भी है। आज भी, अपने दुर्दिन के दिनों में भी, इटली अपने उस प्राचीन कला-गौरव को नहीं भूली है। प्रदर्शनी में चित्रकला और मूर्ति-कला दोनों के नमूने हैं। पेरिस में हमने जिसे छोटे पैमाने पर, गिने-चुने रूप में देखा था, उसी का यह वृहद्, विशाल रूप है! मूर्तिकला के नाम पर संगमरमर के, काले पत्थर के, इस्पात के, ताम्बे के बड़े-बड़े, किंरूपकिमाकार, ढोके और चित्रकला के नाम पर रंगों और रेखाओं का वह गड्डमगड्ड कि आप दिमाग खरोंच कर भी नहीं जान पायें कि यह क्या है? हाँ, कहीं-कहीं सूक्ष्मतर रेखायें और मनोहरतम रंगीनी भी और कहीं-कहीं मूर्तिकला की भी ऐसी खूबसूरत मूर्तियाँ कि मन मुग्ध हो जाय। यूरोप के सारे देशों की कलायें तो यहाँ थीं ही, एशिया के कई देशों की भी कलायें थीं। मुझे आश्चर्य हुआ, अपने देश से क्यों नहीं कला के कुछ उत्कृष्ट नमूने भेजे गये थे वहाँ! लोग क्या कीमत लगाते उनकी, उत्तर मैं नहीं दे सकता, किन्तु आज हमलोग यहाँ पर अपने को गौरवा-न्वित तो अवश्य अनुभव करते—संसार की कला-प्रदर्शनी में हमारे लिए भी जगह है!

प्रदर्शनी को देख कर, संध्या समय, वेनिस देखने को चला। सोचा, संध्या की रूमानी फिजा में वेनिस हमें

अवश्य मोहित करेगा, किन्तु हमें निराशा ही निराशा मिली। असल में वेनिस एक उजड़ता-सा शहर है। जब-तक बड़े-बड़े जहाज नहीं बने थे, सारे मार्ग नहीं खुले थे, वेनिस यूरोप और अफ्रिका को जोड़ने वाला एक सम्पन्न, सुखी और शानदार शहर था। वेनिस के बाजारों में संसार के व्यापारी जुटते और अपनी-अपनी चीजों का आदान-प्रदान करते। वह उन दिनों संसार का एक प्रमुखतम गोदाम था, शराफा था। यहीं चीजें बदली जातीं, सिक्के बदले जाते। किन्तु, ज्यों-ज्यों व्यापार के दूसरे रास्ते खुलते गये, वेनिस की अवनति प्रारम्भ हुई। वेनिस की इस अवनति में एक कारण इसकी विचित्र अवस्थिति भी है। समुद्र में गिरनेवाली दो नदियों के मुहानों पर एकत्र मिट्टी पर यह शहर बसाया गया था। ज्यों-ज्यों शहर की प्रमुखता बढ़ती गई, लोग आस-पास की दलदली जमीन को भरकर उसपर मकान बनाते गये। ये मकान भी विचित्र कौशल से बने। रास्तों की जगह छोटी-बड़ी नहरें। ये नहरें नीचे से इमारतों को खोखली बनाती रहीं। किन्तु जब तक शहर उन्नति पर था, इन सब संहारों से इमारतों को बचाने की व्यवस्था होती रही। पर, अब जहाँ खाने-पीने में दिक्कत हो, वहाँ अट्टालिकाओं की ओर कौन ध्यान दे? इटली की सरकार भी ऐसी सम्पन्न नहीं है, जो अपनी इस अद्भुत और ऐतिहासिक नगरी की रक्षा के लिए कुछ अधिक कर सके। देखा गया है, वेनिस का समूचा शहर पानी के अन्दर धँस रहा है। कई ऐतिहासिक मकान टेढ़े-मेढ़े हो गये हैं। यदि कोई अच्छी

व्यवस्था नहीं हुई तो यह समूचा शहर धँस जायगा। अब भी यह हाल है कि बरसात में इतना पानी बढ़ जाता है कि इसके ऐतिहासिक शैरगाह सान मार्कों पर भी पानी चढ़ जाता है।

प्रसिद्ध कवि बायरन ने वेनिस के बारे में कहा था—

She looks a sea Cybele, fresh from Ocean
Rising with her tiara of proud towers.
At airy distance, with majestic motion,
A ruler of the waters and their powers.

अब भी वे अट्टालिकायें हैं, गिरजाघर हैं वे ही गुम्बदें और बुर्जियाँ हैं, किन्तु, लगता है, जैसे सब की श्री सदा के लिए समाप्त हो चुकी हैं। संध्या के सुनहले समाँ में उनकी श्रीहीनता और भी विह्वल बनाती है। इन भवनों में, इन गिरजाघरों में इन राज प्रसादों में एक युग की कला-साधना भरी पड़ी है, अब भी उन्हें देखकर चित्त मुग्ध हुए बिना नहीं रहता, लेकिन, जब कल्पना करते हैं कुछ दिनों में यह शहर समुद्र के गर्भ में समा जायगा—तो बड़ी उदासी छा जाती है। यदि अब भी इन इमारतों की थोड़ी मरम्मत कर दी जाय, इन्हें धो-पोंछ दिया जाय, जहाँ-जहाँ रंग उड़ गया है, वहाँ पच्चीकारी कर दी जाय, तो फिर बायरन की कविता की इस 'समुद्र की महासुन्दरी' का हम प्रत्यक्ष दर्शन कर सकें।

जब बत्तियाँ जल उठीं, हम सान मारको के पियाजा की सैर को निकले। यह वही जगह है, जहाँ पहुँचकर नैपोलियन

ने कहा था—यह तो यूरप का शृंगार-कक्ष है! सोचा था, यहाँ तो कुछ रंग होगा। कुछ रंग है। अब भी अलबेले-अलबेलियाँ यहाँ सैर कर रहे हैं, बीच में विस्तृत खुली अँगनाई है, तीन ओर दुकानें सजी हैं, एक ओर यह भव्य गिरजाघर है, जिसकी बगल में वह विशाल स्तम्भ है, ऊपर वह घड़ी है जिसके घंटे की सूचना दो हब्सीमूर्त्तियाँ डंके पीटकर देती हैं! होटल भी हैं, अँगनाई में गाना-बजाना भी हो रहा है—किन्तु सारी चीजें उखड़ी-उखड़ी लगती हैं जैसे।

यह पियाजा बहुत ही पुराना है—८०० ई० से इसकी चर्चा मिलती है। कितनी ही ऐतिहासिक घटनायें यहाँ घटी हैं—यहीं १३१० में विद्रोह हुआ, यहीं १७६७ में प्रजातंत्र के भाग्य का फैसला हुआ, यहीं १८४२ में वह क्रांति शुरू हुई जिसने इटली पर से आस्ट्रिया के आधिपत्य का अंत किया।

और, यह गिरजा घरभी कम महत्त्व नहीं रखता। ८३२ ई० में इसका निर्माण शुरू हुआ। तब से हर शताब्दि में इसमें कुछ न-कुछ परिवर्तन और विकास होते रहे हैं। आज यह गिरजा-घर ही नहीं रहा है, वेनिस की कला का सर्वश्रेष्ठ संग्रहालय भी है। इसकी वस्तु कला भी अति मनोरम है। उजले और लाल संगमरमर से बनी यह इमारत—इसके सोने के कलश संध्या को भी जगमग कर रहे हैं। इसके भीतर दीवारों पर की गई पच्चीकारी और सोने के काम मनमोहक है। यूरोप भर में इसकी बड़ी प्रसिद्धि है। इसके अन्दर एक खजाना

है जिसमें सोने और जवाहरात की ३०० ऐसी वस्तुएँ हैं। जिनकी कीमत नहीं कूती जा सकती ! इस गिरजाघर में संत मारको की लाश दफनाई गई है, जो वेनिस के अपने संत माने जाते हैं।

पियाजा से आगे बढ़िये, तो आप एक ओर राजभवन देखेंगे और एक ओर यहाँ का सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय पुस्तकालय। राजभवन में सुप्रसिद्ध कलाकारों द्वारा बनाये गये उत्तमोत्तम चित्र और मूर्त्तियाँ हैं। पुस्तकालय में पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों का अनुपम संग्रह है। इन दोनों के बीच में वह स्तम्भ है, जो ३०० फीट ऊँचा है। यह स्तम्भ चार सौ वर्ष पुराना है। इसकी घड़ी की सुइयाँ विचित्र हैं !

आगे बढ़िये, तो आप 'ब्रिज आफ साह''—इच्छाओं का पुल—देखेंगे। राजमहल से सटा हुआ जेलखाना है। राजमहल में, राजाद्वारा दंड पाकर, कैदी इसी रास्ते जेलखाने में भेज दिये जाते थे। उन दिनों का जेलखाना। जब वे यह पुल पार करने लगते, बेचारे अपने उच्छ्वासों को, आहों को कराहों को कैसे रोक सकें ! हम कुछ देर तक खड़ा हो उसे देखते रहे और फिर मन में एक घुमड़ती आह लिये अपने होटल में आए ! काफी रात बीत चुकी थी, खाया, सो गये।

२६
दांते के नगर में

फ्लोरेंस
१५/६/५२

जब हम वेनिस से फ्लोरेंस के लिए रवाना हुए, फिर वही हरी-भरी खेतियाँ नज़र आने लगीं। गेहूँ की कटाई जोरों पर चल रही है—कहीं पूलियाँ, कहीं बोझे। कहीं-कहीं दँवाई भी हो रही है। कटाई ज्यादातर हाथों से ही, किन्तु अपने यहाँ की तरह हंसिया लेकर झुककर या बैठकर नहीं काटते। लाठी ऐसी चीज के निचले छोर पर हँसिया लगा है और उसके नीचे चलनी ऐसी चीज। हँसिया से काटकर डंठल बस चलनी में गिरते जाते हैं, और उन्हें जगह-जगह रखते जाते हैं। फिर पूलियाँ या बोझे बनाते हैं। कहीं-कहीं बैलों से चलने वाली मशीन से भी कटाई की जाती थी। कटनी के समय अपने यहाँ जिस तरह बच्चे खेतों में जाना पसन्द करते हैं, वही हालत यहाँ भी देखी। बच्चे खेल-कूद रहे थे, या कटनी में मदद दे रहे थे। स्त्रियों को तो कटाई के समय खेतों

में रहना ही चाहिये। अन्नपूर्णा के आँचल से अन्नपूर्णा के आंचल में—यही व्यवस्था तो उचित है।

कटे हुए खेत भी वीरान नहीं लगते, क्योंकि मेड़ों पर शहतूत के पेड़ कतार में लगे रहते हैं। ये हरे-भरे छोटे-छोटे तम्बू से पेड़! इन पर रेशम के कीड़े पलते हैं—इटली का रेशम संसार में प्रसिद्ध है। दो पेड़ों के बीच कमानियाँ गाड़-कर या कमानियाँ लगाकर, उनपर अंगूर की लतायें चढ़ा दी जाती हैं। इटली की मशहूर शराबें इन्हीं अंगूरों की बेटियाँ हैं न?

मकई की खेती लहरा रही है। कमर से लेकर छाती तक ऊँचे इनके ये लहलहाते पौदे! कहीं-कहीं ऊपर बालें फूट रही हैं। इन हरे-हरे खेतों में कहीं-कहीं रंगीन घांघरे दिखाई देते हैं—लड़कियाँ घूम रही हैं इन हरियाली के बाजार में! निचले खेतों में धान के पौदे—पानी पीकर कैसे पुष्ट बने हैं वे। इधर बीट की खेती भी खूब होती है—चुकन्दर की चीनी के लिए भी इटली मशहूर है। कहीं-कहीं जूट के-से पौदे भी देखे। मैंने एक सज्जन से पूछा—जूट? उन्होंने सर तो हिला दिया, किन्तु उन्होंने मेरी भाषा समझी या नहीं, भगवान जानें।

बोलोन में गाड़ी बदली। बोलोन का शहर बहुत सुन्दर और हरा-भरा नजर आया। नये, रंगीन मकान, फुलवाड़ियाँ, बगीचे, बारियाँ। यहाँ से पहाड़ी ही पहाड़ी। पहाड़ पर भी खेती। इटली के लोग मौजी होते हैं, सुना था। उसके

किसान उद्योगी होते हैं, देख रहा हूँ। पहाड़ों से जो छोटी-छोटी नालियाँ नीचे उतर रही हैं, उनमें बच्चे मछली मार रहे हैं। सड़कें, इस घोर देहात में भी, बड़ी अच्छी। उन पर मोटरें, साइकिलें, मोटर साइकिलें दौड़ रही हैं। मोटर साइकिलों की पिछली सीट पर प्रायः ही कोई सुन्दरी।

लगभग पाँच बजे ही फ्लोरेंस पहुँचे। जिसे हम फ्लोरेंस कहते हैं उसे यहाँ के लोग 'फिरेंजे' कहते हैं। इटली भर में नामों की यह गड़बड़ी देखी। हमलोग अँगरेजों की दी हुई नामावली को ही अब तक दुहरा रहे हैं। इटली को उसके निवासी 'इटालिया' कहते हैं, वेनिस को वेनोजिया, मिलान को 'मिलानो', रोम को 'रोमा!' यही कहते हैं, लिखते भी हैं। अब हम क्यों नहीं, देशों और नगरों के नाम उस देश और निवासियों द्वारा दिये गये नामों से ही पुकारा करें?

फ्लोरेंस—छोटा-सा शहर है यह, कुल साढ़े तीन लाख की आबादी। किन्तु, इस शहर का इतिहास कितना शानदार है! एक दाँते का नगर होने से ही इतिहास इसको गौरव का स्थान देता—दाँते, 'डिवाइन कोमेडी' का वह अमर कवि, जिसका जोड़ा यूरप अभी तक नहीं पैदा कर सका! उसका वह रूमानी जीवन, उसकी वह उदात्त कल्पना! फिर फ्लोरेंस माइकेल एंजेलो की भी जन्मभूमि है और यहीं लियानार्दो द विंची और राफेल ऐसे कलाकारों ने अपनी कला के लिए शिक्षा और प्रेरणा पाई! माइकेल एंजेलो—यह कलाकार आज भी

संसार में अद्वितीय है! यही नहीं, बांकासियो ऐसे कथाकार शहीद-प्रवर सैवोनारोला, कूटराजनीति का आचार्य मैकियावेली और ज्योतिषाचार्य गैलेलियो की जन्मभूमि होने का गौरव भी इस नगर को प्राप्त है! यह तो महान आचार्यों की नामावली है, सात सौ वर्षों से यह स्थान कला और साहित्य के क्षेत्र में कमाल दिखाने वाले असंख्य महापुरुषों की जन्मभूमि रही है।

फ्लौरेंस का नया स्टेशन उसके गौरव को अनुरूप ही है—साफ-सुथरा-खूबसूरत। स्टेशन के बगल में ही वह होटल था, जिसमें पहले से हमारी जगह सुरक्षित थी। होटल में सामान रख, स्नान कर, हम तुरत निकल पड़े शहर देखने। थोड़े समय में ही बहुत देखना—आराम या बर्बाद करने के लिए हमारे पास समय कहाँ?

फ्लौरेंस की 'पथ प्रदर्शिका' बताती है—इस नगरी की जिन्दगी में ऐसे क्षण आते हैं कि वह वाटिका, प्रदर्शनी, और रंगभूमि और भावभूमि का रूप धारण कर लेती है। जहाँ संध्या हुई कि नागरिक और नागरिकायें, सुन्दरियाँ और उनके प्रियतम, माताएँ और पत्नियाँ, बुढ़े दादा और छोटे नाती-पोते, विवाहित और कुँआरे तरह-तरह के वस्त्रों से सुसज्जित होकर इसकी सड़कों और गलियों को गुलजार बनाते हैं। इसके क्लब, काफे, कला-प्रदर्शनी, संगीत-भवन, सभा-गृह, पुस्तकालय और दूकानें सभी सदा भरी रहती हैं। फ्लौरेंस विश्व संस्कृति

का केन्द्र है—यहाँ के लोग स्वभावतः ही खुश मिजाज और खुले दिल के होते हैं—तुरत घुल मिल जाना और बात-बात पर चुटकियाँ लेना इनके स्वभाव में शामिल हो गया है। यहाँ की स्त्रियाँ अपनी खूबसूरती के लिए ही नहीं, अपनी सुरुचि और कलाप्रेम के लिए भी प्रसिद्ध हैं। यहाँ का खाना और पीना, दोनों अपनी विशेषता रखते हैं। यहाँ के उत्सवों की अधिकता और आनन्दमग्नता देखकर कोई भी चकित हो जा सकता है। यदि किसी गाँव के हाट या मेले में जाइये, तो मालूम पड़े, वहाँ के साधारण लोगों के जीवन में भी कला किस तरह घुल गई है—संगीत नृत्य की बहार के साथ रंग-बिरंगी सूरतें और पोशाकें आपकी आँखों में गड़कर रहेंगी।

ज्योंही होटल से बाहर निकला, फ्लोरेंस का रोब दिल पर कब्जा करने लगा। सड़कें साफ, दुकानें चकमक, ट्राम, बस, मोटरों की भरमार। लोगों के चेहरे बड़े साफ बड़े सुन्दर। पेरिस ऐसी नजाकत तो नहीं; किन्तु जवानों में मर्दानगी और युवतियों में भरे यौवन के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं। थके-माँदे थे, एक रेस्तराँ में बैठ कर अपने में ताजगी लाये। फिर लगे भटकने। मेरा ख्याल है, विदेश में पहले दिन अनिश्चित भ्रमण होना चाहिए, तभी उस शहर की खूबी मालूम हो सकती है। किन्तु यह क्या? यह सामने कौन-सी अट्टालिका खड़ी हो गयी? इसकी बनावट तो मालूम नहीं! लगा, जैसे यह कोई देव मन्दिर हो। हाँ, हाँ देव मन्दिर ही

तो। आगे यह संत जैन का चर्च है और पीछे वह सांता मारिआ का कैथड्रल !

संत जैन के चर्च की बनावट कुछ विचित्र है। इस चर्च का इतिहास भी इसी तरह विचित्र है। कहा जाता है, पहले यहाँ प्रकृतिपूजकों का मन्दिर था। जब रोमनों के साथ वहाँ इसाई धर्म आ गया, यहाँ यह चर्च बना। इसके आकार प्रकार पर रोमन कारीगरी की छाप है। किन्तु, इसे इस रूप में लाने का प्रयास तेरहवीं सदी में शुरू हुआ था। दो सदियों तक इसे सजाया और सँवारा गया। फिर इसे संत जैन के नाम पर उत्सर्ग किया गया। यही नहीं, तत्कालीन प्रजातन्त्र सरकार ने यह व्यवस्था की कि प्रजातंत्र का कोई सदस्य, गिल्ड का कोई प्रधान, कचहरी का कोई हाकिम तब तक नियुक्त नहीं हो सकता, जब तक इस चर्च में इसके लिये विशेष उपचार नहीं हो ले। प्रजातन्त्र ने ही इसमें तीन दरवाजे बनाने का निर्णय किया, जिसमें एक दरवाजा वेनिस के प्रसिद्ध कलाकार पिसानों ने बनाया। यह दरवाजा स्थापत्य कला के सर्वोत्तम नमूनों में समझा जाता है। बाकी दो दरवाजे फ्लौरैंस के युवक कलाकार गिलबती ने बनाये। पच्चीस वर्षो की मेहनत के बाद ये दरवाजे बन सके। गिलबती ने कुछ ऐसा कमाल दिखलाया कि माइकेल एंजलो तक ने इसके तीसरे दरवाजे को "स्वर्ग का द्वार" कहकर सराहा। आज तक यह इसी नाम से पुकारा जाता है। दाँते ने

बड़े गर्व के साथ उल्लेख किया है कि उसका जात कर्म इसी चर्च में हुआ था और उसने आशा की थी कि इसी चर्च में कविसम्राट के रूप में उसका अभिषेक होगा।

जब हम चर्च के निकट पहुँचे, वह बन्द हो चुका था। हाँ, स्वर्गद्वार के सामने लोगों की भीड़ थी जो उसमें चित्रित 'आदमी की कथा' की चित्रावली को मुग्ध हो कर देख रही थी।

किन्तु सान्ता मारिया का कैथेड्रल अभी तक खुला था। हम उसमें घुसे। यह कैथेड्रल यूरोप के चार बड़े कैथेड्रलों में तीसरा स्थान रखता है। बड़ा ही भव्य, बड़ा ही दिव्य। जब हम भीतर पहुँचे, वहाँ पूजा हो रही थी। कई पादड़ी ईसा की मूर्त्ति के सामने मन्त्र पढ़ रहे थे और उनके सामने भक्तों की भीड़ घुटने टेके मन्त्रों को दुहरा रही थी। ध्वनि से कैथेड्रल का वातावरण गुंजित था। मन्त्रों के साथ श्रुतिमधुर बाजे भी बज रहे थे। अपने देश के मन्दिरों की याद आई—वही अपने यहाँ के घंटे, घड़ियाल स्तोत्र, जयजयकार! किन्तु अपने यहाँ भक्ति-भावना कम, षोड़शोपचार अधिक। यहाँ देखा, ऊपर से भक्ति की प्रचुरता दिखाई पड़ती थी, अन्तर का हाल अन्तर्यामी जानें!

इस कैथेड्रल के बनाने में बड़े-बड़े स्थापत्य विशारदों का हाथ रहा है। इसका गुम्बद ब्रुनेलेशी ने बनवाया था—बिना किसी सहारे का यह गुम्बद आकाश छूता था। इसका घंटा

पर जिमेश्रो ने बनाना शुरू किया, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद पिसानों ने इसे पूरा किया। उसकी दिवालों पर जो चित्रावली और भित्ति-मूर्त्तियाँ हैं, तथा जहाँ-तहाँ स्थापित जो मूर्त्तियाँ हैं, वे भी बड़े-बड़े कलाकारों की कूची और छेनी की करामात हैं। लुका डेला रोबिया की अनुपम कलाकृतियाँ और माइकेल ऐंजोलो की बनायी दो अनुपम मुर्त्तियाँ हैं। माइकेल ऐंजोलो द्वारा बनाई माता मेरी की गोद में शहीद ईसा की मूर्त्ति को देख कर कौन भाव-विभोर नहीं हो रहेगा? कहा जाता है, यह माइकेल ऐंजोलो की अंतिम-मूर्त्ति है, और बहुत अंशों में अधूरी है। शहीद ईशा के चेहरे और माता मेरी की करुण-भावना की ऐसी प्रतिकृति यहाँ उतरी है कि हृदय बरबस द्रवित हो जाता है। कहा जाता है, माता मेरी के पीछे जोसेफ की जो मूर्त्ति है, वह माइकेल-ऐंजोलो की अपनी मूर्त्ति है—अस्सी साल का बूढ़ा, झुर्रियों से भरा चेहरा, सफेद दाढ़ी, किन्तु आँखे जैसे आँसुओं में डूबकर भी बिजली-सी जल रही हों! कैथेड्रल में चित्रों की भी भरमार! मुझे वह चित्र बहुत भाया जिसमें दाँते अपनी पुस्तक पढ़ते हुए उसमें वर्णित नरक की ओर अंगुली निर्देश कर रहे हैं।

कुछ आगे बढ़े तो इसके मुख्य बाजार में पहुँच गये। विशाल इमारतें, उनके शानदार बरामदों में दुकानें सजीं। हम उन्हें अतृप्त नयनों से देख रहे थे कि कानों में संगीत की मधुर मोहक ध्वनि पड़ी—उससे खिंच कर हम एक बड़ी

अंगनाई में आ गये। एक रेस्तोराँ है—उसके सामने भीड़ है, भीड़ के आगे रंगीन छतरियों के नीचे बैठ लोग खा-पी रहे हैं। रेस्तोराँ की ओर से ही संगीत का यह आयोजन। मंच पर खड़ी एक लड़की गा रही थी। बाजों में ढोलक ऐसी, खंजड़ी ऐसी, करताल ऐसी, सितार ऐसी और बाँसरी ऐसी चीजें—काठ के दो टुकड़ों को लेकर भी बजा रहे थे मंजीरे की तरह की कोई चीज। इन बाजों से जो एक अजीब स्वर-लहरी निकलती उसपर तैरती-सी उस लड़की की स्वर माधुरी! वह देखने में सुन्दर, छोटे कद की, कमसिन! कंठ का क्या कहना—लगता था, अमृत उँडेल रही है। गाने का तर्ज ही नहीं, शब्दों का उच्चारण भी बहुत कुछ भारतीय ढंग का!

जब हम गाने सुनने में तल्लीन थे, एक नौजवान मेरे निकट आकर पूछने लगा—क्या आपको यह गाना पसंद आ रहा है? जब मैंने हाँ कहा, वह बड़ा प्रसन्न हुआ। बात ही बात वह कुछ ऐसा घुलमिल गया कि वह स्वयं हमें अपने घर की चीजें दिखलाने चला। अभी विद्यार्थी ही है वह—अट्ठारह-उन्नीस वर्ष का होगा। गोरा, खूबसूरत चेहरा, नाक उठी हुई, शरीर भरा-पूरा कपड़े बड़े सलीके के। कालेज से ग्रेजुएट होकर गणित की ऊँची पढ़ाई के लिये 'स्कूल' में भरती हुआ है। कल उसकी परीक्षा है, किन्तु वाह री भद्रता! हमारे साथ इस संध्या को घूम रहा है। अपने शहर

के जर्रे-जर्रे से जैसे वह परिचित हो—इतिहास की, कला की, साहित्य की कैसी जानकारी है उसकी, विज्ञान का तो वह विद्यार्थी ही है। उस लड़के के शील, स्वभाव और ज्ञान को देखकर बार-बार अपने यहाँ के विद्यार्थियों की याद आती रही, जो नाक से आगे देख नहीं पाते और अभद्रता तो जिनकी जवानी की निशानी है।

यहाँ से हम उस स्थान को आये जिसे आप फ्लोरेंस का खुला म्यूजियम भी कह सकते हैं। इसका नाम है पियाजा सिनोरिया या प्रजातन्त्र का मैदान। इस मैदान में साल में दो बार फुटबाल होता है, जिसमें तरह-तरह की पोशाक पहन कर खिलाड़ी उतरते और हाथ से भी गेंद को उछाल सकते हैं। यह फ्लोरेंस का सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय खेल है। मैदान के एक ओर प्रजातन्त्र का भवन है, जिसमें अब म्यूनिसिपैलिटी का दफ्तर रहता है। भवन के सामने खुले आकाश के नीचे कुछ मूर्त्तियां हैं, जो कला की उत्तमोत्तम कृतियों में गिनी जाती हैं। यहीं माइकेल-एंजेलो का 'डेविड' है; माना जाता है, मानव की ऐसी सुन्दर स्वाभाविक मूर्त्ति संसार में दूसरी कोई नहीं। यहीं वृहस्पति का फव्वारा है—वृहस्पति की ऊँची विशाल मूर्त्ति के सामने यह फव्वारा दिन रात पानी की बूंदें बरसाता रहता है। और सब से बढ़कर यहीं एक वह सिंह-मूर्त्ति है जो फ्लोरेंस का राज-चिह्न मानी जाती है। सिंह-मूर्त्ति के हृदय-भाग में लीली फूल का चिन्ह है—फ्लोरेंस "लीली" का नगर भी कहा जाता है। लाल

पृष्ठ भूमि में उजली लीली का यह चिन्ह फ्लौरेंस के निवासियों के लिए सबसे प्रिय चिन्ह है और उनकी सारी कलाकृतियों पर इसकी छाप रहती है। कहाँ सिंह—कहाँ लीली! वीरता और कोमलता का यह संगम—मैंने मन ही मन इस मूर्त्ति को प्रणाम किया।

अब शाम हो रही थी। हम आगे बढ़े और फ्लौरेंस के सुप्रसिद्ध चित्रालय यूफीजी के आँगन में हम आ चुके थे। चित्रालय बन्द हो चुका था लेकिन उसकी विशालता तो हमारे सामने खड़ी थी। आँगन के सामने बरामदों के खम्भों पर फ्लौरेंस की सभी सपूतों की मूर्त्तियाँ हैं। ऐसे सपूतों की जिन्होंने कला, विज्ञान, इतिहास, कविता आदि में कमाल दिखलाये थे—दांते की, माइकेल एंजेलो की, गैलेलियो की, मेकियावेली की, आदि-आदि। आँगन से निकल कर हम आरनो नदी के किनारे पहुँचे। यह छोटी-सी नदी है। किन्तु फ्लौरेंस-निवासियों के लिए बड़ी ही प्यारी और पवित्र भी। गर्मी का जमाना है, पानी सूख गया है। रेत के बीच में पतली-सी धारा। इस नदी पर पहले छः पुल थे, किन्तु उनमें से पाँच पुलों को जर्मनों ने पिछले महायुद्ध में उड़ा दिया था। उन पुलों में एक पुल ऐसा था, जो संसार का सबसे सुन्दर पुल समझा जाता था। जो एक बच गया है वह फ्लौरेंस का सबसे पुराना पुल समझा जाता है। यों बीच-बीच में उसकी मरम्मत होती रही है और पुराना रूप बहुत कुछ बदल गया है। इस पुल पर से उस

युवक ने उस सर्वसुन्दर पुल के भग्नावशेष को दिखलाया। इसी पुल पर सीजर की वह मूर्त्ति थी जिसकी नकल कई जगहों पर की गई है।

पुलों को ही नहीं शहर के नदी किनारे के बहुत बड़े भाग को भी जर्मनों ने सत्यानाश में मिलाया। जहाँ-तहाँ खंडहर ही खंडहर। एक बड़ी इमारत अमेरिकन ढंग की देखी। बड़ी ही शानदार किन्तु जब उसकी चर्चा चली, युवक का चेहरा तम-तमा गया। उसने कहा—यह इमारत हमारे शहर के लिए कलंक है क्योंकि इसका स्थापत्य से मेल नहीं खाता। यह तो न हमारे शहरों के वातावरण के अनुकूल है, न शहर की इमारतों में खपती ही है। हमलोगों ने इस पर इतराज किया था और आश्वा-सन दिया गया है कि जो नई इमारतें बनेंगी उनमें हमारे नगर की परम्परा से चली आती हुई स्थापत्य कला पर ध्यान दिया जायगा। युवक की यह बात सुनकर अपने देश की बात पर याद आई, जहाँ विदेशों की नकल पर ही प्राय: हमारी सारी इमारतें बनती हैं।

यहाँ भी होटल के सामने सिर्फ सोने की व्यवस्था है। यों वहाँ आप खा भी सकते हैं, किन्तु होटलों का भोजन महंगा पड़ता है। हमने युवक से किसी सस्ते रेस्तोराँ की बात पूछी। उसने एक रेस्तोराँ का नाम बताया और हमको वहाँ तक पहुँचा भी दिया। हमारे बार-बार के आग्रह पर भी उसने भोजन

नहीं किया। कहा, मेरे घर लोग इन्तजार करते होंगे। उसकी भद्रता हमें मुग्ध किये जा रही थी। रेस्तोराँ वालों ने बड़ा ही नेक व्यवहार किया। हमारे कहने पर तुरत भात बनाया और सामान भी बड़े ही सुस्वादु थे और उनकी कीमत तो पेरिस से आधी से भी कम ! फ्लोरेंस वालों को अच्छी रसोई बनाने पर भी नाज़ है और अपनी शराब के बारे में तो बड़े फख्र से कहते हैं, कितनी भी पीजिये जीभ सूख नहीं सकती और उसकी सुगन्ध आपके दिमाग को बहुत देर तक मुअत्तर बनाये रहेगी। उनके यहाँ एक कहावत है रोटी' एक दिन की और शराब एक वर्ष की। उसकी शराबों में शियान्ती बहुत ही मशहूर है। सचमुच शियान्ती शान्तिदायनी है। सोने के पहले एक बार फिर स्टेशन देख आये। रोशनी की रंगीनी में स्टेशन और भी खूबसूरत मालूम होता था और उसकी बगल के रेस्तराओं का कहना ? मस्ती और रंगीनी छलकी पड़ती थी। स्टेशन से लौट कर सो गया—फ्लोरेंस की गरिमा और रंगिनियों का स्वप्न देखता हुआ।

३७
यह दांते का घर है !

फ्लौरेंस
१६/६/५२

आज बाजार में दाँते और ब्रिटिश की जो सम्मिलित मूर्त्ति खरीदी है उसे सामने रखकर आज की यह डायरी लिखने जा रहा हूँ।

जब-जब यह कल्पना करता हूँ इस शहर में दांते और माइकेल-ऐंजेलो का जन्म हुआ, तब कितनी मुग्धता आ जाती है। दांते और ब्रेटिश का वह स्वर्गिक प्रेम जिसने डिवाइन कॉमेडि को जन्म दिया था और माइकेल ऐंजेलो की वह कला जिसने पत्थर को भी सजीव बना डाला।

स्नान, जलपान से निवृत्त होकर आज दस बजे चूफीजी की गैलरी देखने गये। पता चला सोमवार के कारण आज तीन बजे खुलेगी। मनमें बड़ी खिन्नता आई, किन्तु उसी भवन की दूसरी ओर राज्य के कागजात का म्यूजियम है, यह गाइड-बुक में पढ़ चुका था। इसलिये इसके दरवाजे के भीतर घुसे,

किन्तु वहाँ पहुँचने पर जब बातें शुरू की तो कोई समझनेवाला नहीं। योरोप में फ्रांसीसी ही एक भाषा है, जिससे किसी तरह काम चल सकता है। अंग्रेजी कदम कदम पर बेकार साबित हो जाती है।

किन्तु संजोग से एक अमेरिकन विद्यार्थी आ गया, जो यहाँ अनुसंधान का काम कर रहा है। उसने बातें की और जब हमने अपनी इच्छा बताई तो वह म्यूजियम के सुपरिंटेंडेंट के पास गया। थोड़ी देर में ही वह अधिकारी खुद आ गये बूढ़े से सज्जन, इतिहास के डाक्टर, बड़ी ही आवभगत की और स्वयं अपने साथ ले जाकर उस विद्यार्थी के माध्यम से कुछ चीजें दिखलाई। किन्तु कितना दिखलाते ? सातवीं सदी से आज तक के सारे प्रमुख कागजात यहाँ सँवार कर रखे हुए हैं। इस विशाल भवन में ३०० बड़े-बड़े कमरे हैं। चार लाख मोटी-मोटी जिल्दों में ये कागजात रखे गये हैं, जिनकी संख्या एक करोड़ बीस लाख है। ताल-पत्र, काष्ठ-पत्र, भोज-पत्र, सभी ढंग के कागजों पर ये लिखे गये हैं। जो सबसे पुराने कागजात हैं। वे ७२६ ई० के हैं। दूसरे देशों के कागजात भी हैं। उनमें दो भारतीय हस्तलिपियाँ हैं। एक बंगला की, दूसरी तामिल या तेलगू की, यद्यपि वह समझते है वह भी बंगला ही है। हमने उनका भ्रम दूर किया।

दाँते सम्बन्धी कागजात हमने देखना पसन्द किया। हमने उन कागजों को देखा, जिनमें दाँते पर चलाये गये मुकदमें की

मिसिलें हैं। सुद्दाल्हों के कई नाम हैं जिनमें दाँते का नाम अन्तिम हिस्से में है। दाँते को देश-निष्कासन की सजा मिली थी। इधर-उधर भटकते अपनी जन्म भूमि से दूर हो मरे--१३२१ ई० में। इसके बाद वह कागज दिखाया गया जिसकी रजिस्ट्री बेट्रिश के पिता ने वसीयत के रूप में कराई थी। वसीयत में दाँते की भी चर्चा है। दाँते की मृत्यु के दो सौ वर्ष के बाद १५१६ में फ्लोरेंस के नागरिकों ने सरकार के पास दरख्वास्त दी कि उनकी हड्डियाँ लाकर फ्लोरेंस में दफनाने की आज्ञा दी जाय। कहना नहीं होगा कि यह दरखास्त मंजूर की गई। ये कागजात भी यहाँ यहाँ सुरक्षित हैं। इसके बाद और भी कई कमरे दिखलाये गये, देख-देखकर हम मुग्ध होते रहे। बूढ़े डाक्टर की शराफत का क्या कहना ? यह भवन फ्लोरेंस के ऊँचे-से ऊँचे भवनों में है। अतः उन्होंने ऊपर ले जाकर सारे शहर का विस्तृत दृश्य दिखलाया और वहीं से कितने ऐतिहासिक स्थानों और भवनों का निर्देश किया।

वहीं हमें पता लगा कि दाँते का घर इसके निकट ही है। शहर का नक्शा लेकर उनलोगों ने रास्ता भी समझा दिया। उन्हें भारतीय ढंग से नमस्कार करके चले। नीचे आये तो, सामने ही वह भवन दिखाई पड़ता था जो यहाँ का सबसे प्राचीन राजभवन है। उसे हम कल संध्या को अलग से ही देख चुके थे। इस समय भवन का द्वार खुला हुआ था। सोचा, जरा भीतर चल कर देखें। भीतर जाने पर पता

चला, यहाँ चित्रों की प्रदर्शनी हो रही है। जब जर्मनों का पिछले महायुद्ध के समय यहाँ कब्जा हुआ तो वे यहाँ से बहुत चित्र अपने देश उठाकर ले गये। हाल ही में वे चित्र वहाँ से मंगवा लिये गये हैं और कल से ही उनकी प्रदर्शनी हो रही थी। वह गिल्ड हॉल कहलाता है। इसका दूसरा नाम "पाँच सौ आदमियों का भवन" भी है। यहीं फ्लोरेंस की गिल्ड के पाँच सौ सदस्य बैठते और अपनी नगर की व्यवस्था पर विचार-विमर्श करते। हॉल के चारों ओर मूर्त्तियाँ, चित्र, प्राचीर चित्र, और कसीदे की चित्रावली। एक चित्रावली में बताया गया है कि एक ईसाई संत को कितना कष्ट दिया गया था। उसके अंग-अंग में काँटे चुभाये गये हैं। खून बह रहा है। किन्तु उसका चेहरा वैसा ही धीर-गम्भीर। इस चित्र को देखकर मुझे बड़ी करुणा आई—आह! हर समय हर देश में साधुओं को कष्ट ही कष्ट दिये गये।

जब हम प्रदर्शनी से निकल रहे थे, फिर उस युवक से भेंट हो गई। वह अपनी परीक्षा देकर आ गया था और हमें खोज रहा था। विदेशियों के प्रति यह स्नेह भाव हमारे युवकों में भी आ पाता। उसी के साथ हम अब दांते का घर देखने चले। रास्ते में एक घंटा घर दिखाई पड़ा। उस युवक ने बताया, यह घंटा तभी बजाया जाता है जब संसार में कहीं युद्ध शुरू हो। मैंने मन ही मन कामना की, यह फिर कभी न बजे। योरोप में युद्ध के कारण जो

विभीषिका हुई है उसे देखते हुए हर समझदार की यही कामना हो सकती है।

दाँते का घर छोटा, बहुत ही छोटा है। घर के सामने दाँते सम्बन्धी चित्र, मूर्त्तियाँ, पुस्तकें आदि बिक रही थीं। घर के भीतर गया तो देखा, वहाँ एक आधुनिक इटालियन चित्रकार के चित्रों की प्रदर्शनी चल रही है। यह चित्रकार पिछले महायुद्ध में युद्धबन्दी बनकर भारत भेजा गया था। अतः उसने कई चित्र भारत के सम्बन्ध में बनाये हैं। कश्मीर घाटी, गाँव, पनघट आदि उसके चित्र बहुत ही सुन्दर थे। वे चित्र बिक भी रहे थे किन्तु इतने पैसे नहीं थे कि एक भी खरीद लेता।

दाँते के घर से उस गिरिजा घर की ओर चला, जो फ्लौरेंस का पैंथियन है। एक विशाल इमारत जिसमें फ्लौरेंस के सुप्रसिद्ध सपूतों की अस्थियाँ सुन्दर-सुन्दर समाधियों के भीतर संग्रीत है। भवन के सामने एक बड़ा मैदान, जिसके बीच में एक ऊँचे स्तम्भ पर दाँतें की एक बड़ी मूर्ति है। बड़ी ही सुन्दर मूर्ति। किन्तु युवक विद्यार्थी का कहना था, यह मूर्ति कला की दृष्टि से वैसी उत्तम नहीं है। उस विद्यार्थी ने ही बताया, उसकी बगल में जो इमारत है, वह कला की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकी उसकी दीवालों पर जिओभानी ने जो भीत्त चित्र बनाये हैं, वे बहुत कलापूर्ण है। सबसे बढ़कर

सत्ताइस दिनों के अन्दर अपने बारह सहयोगियों को लेकर उसने पूरी चित्रावली बना डाली है।

समाधियों वाला यह विशाल भवन शान्ताक्रोचे के नाम से मशहूर है। यह भवन तेरहवीं सदी में एक गिरजाघर के रूप में बना था, यह तीन सौ फीट लम्बा और डेढ़ सौ फीट चौड़ा। इसका गुम्बज दो सौ तेइस फीट ऊँचा है। इसके अन्दर छहत्तर समाधियाँ हैं, इसके मोलर-माइकेलएंजेलो की समाधि है। पहली समाधि को बसारी और दूसरी समाधि को ऋषि नाम कलाकार ने बनाया। मेकियाबेली का स्मारक लार्ड कुष्फ ने बनवाया था। गैलीलियो की समाधि भी यहीं है। समूचे भवन में बड़े-बड़े कलाकारों द्वारा निर्मित मूर्तियां और समाधियाँ आँखों में चकाचौंध पैदा कर देती हैं। जियोत्तो की बहुत-सी कला-कृतियाँ देखने लायक है। एक दु:खान्त नाटककार की समाधि भी देखी, जिसके सामने एक नारी मूर्ति रो रही है। इस नाटककार की बड़ी तारीफ वह युवक कर रहा था—धनी का लड़का, बड़ा व्यापारी, किन्तु व्यापार से मन ऊब गया और वह दिन रात लिखने-पढ़ने लगा। उसके घर के लोग नाराज, किन्तु सरस्वती जब सिर पर सवार होती है तो लक्ष्मी की चिन्ता आदमी को कहाँ रह जाती है! धीरे-धीरे उसकी साहित्यिक कृतियाँ प्रसिद्धि पाने लगीं और अब फ्लोरेंस का सबसे बड़ा नाटककार समझा जाता है।

हम देख ही रहे थे कि भवन के बन्द होने का समय हो गया—अब हम खाने चलें। युवक से फिर खाने को आग्रह किया, किन्तु वह कहाँ मानने वाला! वादे के अनुसार वह फिर तीन बजे हमारे होटल में हाजिर हुआ। युवक के ही आग्रह पर हम सबसे पहले मेडिसी चैपेल देखने गये। फ्लॉरेंस के इतिहास के साथ मेडिसी परिवार का नाम जुड़ा हुआ है। इस परिवार ने फ्लोरेंस की कला और कारीगरी के विकास में बहुत बड़ा प्रोत्साहन दिया। फ्लॉरेंस का कोई हिस्सा नहीं जहाँ इस परिवार की कृतिकथा किसी रूप में अंकित न हो। इस चैपेल में मेडिसि परिवार के सभी प्रसिद्ध पुरुष दफनाये गये हैं। यह योरप के सर्वोत्तम स्मारकों में गिना जाता है। संगमरमर, मोजाइक, सजावट सबसे इसकी गरिमा चूई पड़ती थी। यहां माइकेल एंजेलो की कुछ सुप्रसिद्ध मूर्तियाँ हैं, उसकी बनाई उषा और संध्या तथा दिन-रात भी देखने लायक है। उषा और रात को स्त्री के रूप में मूर्तिमान किया गया है और दिन को पुरुष की मूर्ति में। उषा को कुमारी माना गया है और रात को माता। सात वर्षों तक इन मूर्तियों के बनाने में वह लगा रहा, किन्तु पूरी नहीं कर पाया। कहा जाता है, मूर्तियाँ उनकी प्रारम्भिक कृतियाँ हैं। तोभी कितनी सुन्दर, कितनी जानदार!

वहाँ से हम सीधे यूफीजी आये। करीब चार बजे

रहे थे। समय कम था इसलिये हम इस चित्रशाला को उतना समय न दे सके, जितने की वह हकदार है। बरामदों पर मूर्तियाँ, घरों में चित्रावली। कुछ प्रसिद्ध मूर्तियाँ घरों में भी। यों तो लूव्र की महानता का कायल हूँ, किन्तु मूर्तियों और चित्रों का संकलन और उसकी सजावट देखकर मैं इसे उससे भी खूबसूरत म्यूजियम मानूँगा ही। इसके कमरे इतने सुन्दर हैं, चित्रों को इस तरह सजा कर रखा गया है, फिर चित्रों के फ्रेमों में ऐसी कारीगरी है कि इन चित्रों का प्रभाव हृदय पर लूव्र से भी अधिक पड़ता है।

इसका भवन सोलहवीं सदी में वसारी ने बनाया था। पहले सरकार ने मंत्रालय के रूप में बनाया था। नीचे के हिस्से में अब भी सरकारी कागजात हैं और ऊपर चित्र-शाला है। बड़े-बड़े एकतीस हॉलों में कला की उत्तमोत्तम कृतियाँ संगृहित हैं। सदियों के अनुसार क्रमशः हॉलों को सजाया गया है। कुछ हॉल विशेष कलाकारों के नाम पर भी हैं। बोनी शैली नाम पर एक खास हॉल है। पन्द्रहवीं सदी के हॉल में लियोनार्दो-द-विन्सी के दो चित्र हैं। जातकर्म नामक उसके उस सुप्रसिद्ध चित्र की मूल प्रति यहीं है। रैफेल और माइकेल एंजेलो के लिये जो विशेष हॉल है, उसमें रैफेल के चार सुप्रसिद्ध बड़े-बड़े चित्र हैं। माइकेल एंजेलो का सुप्रसिद्ध चित्र "पवित्र

परिवार" इसी हॉल को सुशोभित करता है। इसका फ्रेम भी उसने स्वयं बनाया था। आरम्भ के १७ हॉलों में फ्लोरेंस के स्कूल तथा टस्कन, अम्ब्रियन, बोलोन, लुम्बार्डी और पेलिलियन कालों के चित्र हैं। शेष हॉल में यूरोप के बड़े-बड़े कलाकारों की मूर्तियाँ सजाई गई हैं। टीसियन, रूबेन, वानडाइक, हालबिन, वोरोसियो, आदि की कला कृतियाँ मन को मोह लेती हैं। बरामदों में ग्रीक मूर्तियों की भरमार हैं। यहीं बनैले सुअर की मूर्ति है, जिसकी कांसे की प्राप्त मूर्ति यहाँ के बाजार के बैठक खाने में है। कहा जाता है जो इस सूअर के थुंथने को मल देगा वह फिर फ्लौरेंस आवेगा, कल बाजार में इस काँसे के सूअर का थुंथना खूब छू चुका था, आज यहाँ भी इसके थुंथने को छू दिया। हाथी दाँत की तस्वीरें और कसीदे की चित्रकारियाँ भी देखने लायक हैं। ग्रीक मूर्त्तियों का ऐसा संकलन कम मिलेगा। मेडिस परिवार के प्रायः सभी प्रमुख पुरुषों की मूर्त्तियाँ यहाँ हैं। एक बरामदे में उन सभी चित्रकारों और और मूर्त्तिकारों की तस्वीरें हैं जिनकी कृतियाँ इस चित्रशाला को सुशोभित करती हैं। ये तस्वीरें भी उस्तादों के हाथ की ही बनाई हुई हैं। बरामदों की छतों पर अलग-अलग चित्र-समूहों में संसार के सुप्रसिद्ध चित्रकारों, संगीतकारों, ज्योतिषियों राजनीतिज्ञों, वक्ताओं, कथाकारों आदि के चित्र अंकित किये गये हैं।

यूफीजी से ही संलग्न पिति पैलेस की चित्रशाला है। इसका इतिहास विचित्र है। उस युवक ने बताया, इस कलासंग्रह के निर्माण का इतिहास विचित्र है। मेडिसी परिवार को कला संग्रह में पराजित करने के लिए चित्रशाला की आयोजना की गई। किन्तु कालक्रम से यह चित्रशाला भी मेडिसी परिवार के ही हाथ में आ गयी और यूफीजी का ही एक अंग बन गई। इसके विशाल भवन के निर्माण में बुनेलेस्की और अमानी जैसे स्थापत्य विशारदों का हाथ रहा है। भवन बहुत ही विशाल और शानदार है। बिल्कुल राजमहल-सा लगता है। इसके नीचे के हिस्से में चीनी बर्तन, हाथी दाँत के काम जवाहरात, वस्त्र और गहनों का ऐसा अच्छा संग्रह है कि संसार में इसकी जोड़ नहीं। ऊपर चित्रशाला है।

इसके सभी हालों की छतों में बड़े-बड़े चित्रकारों द्वारा चित्रमालायें अंकित हैं और उन चित्रमालाओं के नाम पर उन हॉलों के नाम रखे गये हैं। जैसे बृहस्पति का हॉल, मंगल का हॉल, इलियड का हॉल, हरकुलीज का हॉल, कामदेव का हॉल, कला का हॉल आदि। सभी हॉलों में योरोप के बड़े-बड़े चित्रकारों के चित्र जगमग कर रहे हैं। इसके सबसे ऊपर के तल्ले में आधुनिक इटालियन कला परिषद् का कला संग्रह है, जिसमें उन्नीसवी सदी के और बीसवी सदी के चित्रकारों की कृतियाँ सजाकर रखी गई हैं। यूफीजी में ही इतना समय लग गया था कि इस अद्भुत कला-शाला को हम अच्छी तरह देख न सके! किन्तु जितना देख लिया था, क्या वही कुछ कम था?

इन दो महान चित्रशालाओं के अतिरिक्त भी फ्लोरेंस में चित्र शालाओं, संग्रहालयों, स्मारकों और संस्थाओं की भर-मार है। इनमें चौबीस का प्रबन्ध सरकार की ओर से और सात का प्रबन्ध म्यूनिसिपैलिटी की ओर से होता है। दस व्यक्तिगत चित्रशालायें हैं और बारह संग्रहालय हैं। आठ बड़े-बड़े थियेटर घर हैं। इनमें जो घर म्यूनिसिपैलिटी द्वारा संचालित होता है, उसमें साढ़े चार हजार आदमी एक साथ बैठकर नाटक देख सकते हैं। सिनेमा घरों की भी भरमार है, जिनमें तीन सिनेमा घर तो ऐसे हैं, जिनमें पहली बार ही किसी फिल्म का उद्घाटन होता है। पित्ति महल से लौटते समय संध्या हो चली थी। लौटते समय हमने कुछ सौदे खरीदे। फ्लोरेंस में चमड़े और शीशे के काम बहुत अच्छे होते हैं। एक छोटा सा चमड़े का पर्स खरीदा, जिस पर फ्लोरेंस की लीली की छाप थी। कुछ छोटी-छोटी शीशे की प्यालियाँ लीं। कुछ मिठाइयाँ भी लीं। सौदे जितने सुन्दर थे उन्हें बेचनेवाली लड़की उनसे भी सुन्दर थी! गोरा भभूका चेहरा, सुनहले बाल जिन पर खिलवाड़ कर रहे थे। जब वह बोलती तो लगता सितार का तार छू गया। मैंने कहा—तुम बहुत खूबसूरत हो उसने कहा क्या सच? फिर पूछा-क्या भारत चलोगी? फिर उसी तरह मुस्कुराते कहा—मैं भारत को प्यार करती हूँ। किन्तु मैं गरीब हूँ पैसे कहाँ है? मैंने कहा चलो, हमारे साथ! अब अब वह खिलखिला पड़ी। ओहो, आप मजाक कर रहें हैं।

मैं सच कहती हूँ, आपका देश मुझे बहुत ही प्रिय लगता है। चलते समय पूछा तुम्हारा नाम? उसने कहा—कोजा।

कोजा की, उस युवक की जिसका नाम रोगाई मारशेती था और उस बूढ़े सुपरिन्टेन्डेन्ट की, जिनका नाम मैं पूछ न सका, इन तीन जीवित व्यक्तियों तथा फ्लोरेंस के उन मृत महा-पुरुषों की मधुर स्मृति लिए अब सोने की तैयारी कर रहा हूँ। कल ही रोम के लिए चल देना है। बार-बार उस वाराहदेव से मनाता हूँ, जिनके थूथने कल मल दिये थे कि—हे भगवान के तीसरे अवतार, फिर कोई ऐसी लग्गी लगाना कि एक बार फिर दाँते के इस नगर में आने का सुअवसर प्राप्त हो, कि दो-तीन महीने यहाँ रहकर अपने जीवन को और भी कलामय बना सकूँ!

३८

फ्लोरेंस से रोम

रोम
१७/६/५२

फ्लोरेंस छोड़ते दुख अनुभव हो रहा था। असल में ऐसी यात्राओं के लिये जो कार्यक्रम बनाया जाता है, वह प्रायः उटपटांग हो जाता है। किसी की रुचि किसी में किसी की रुचि किसी में। यात्रा-कम्पनियाँ अपनी सूझबूझ से एक कार्यक्रम बना देती हैं। मिलान में हमें एक रात अवश्य रहना चाहिये था और मेरी रुचि देखिये, तो मैं दो दिन और फ्लोरेंस में रहना चाहता। कम से कम एक-एक पूरा दिन 'यूफीज' और 'पित्ति' के संग्रहालयों के लिये तो देना ही था। 'पित्ति' की तो झलक भी नहीं पाई—बाहर से देखना कोई देखना हुआ?

जब गाड़ी चली और देहात में आई, वह फिर वही दृश्य। गेहूँ की कटनी जारी है और मकई के धनबाल फूटने-फूटने पर। कटनी का काम ज्यादातर बैलों या घोड़ों

से लिया जा रहा है। एक ढंग की मशीन है, जिसे बैल या घोड़े खींचते जाते हैं और गेहूँ कट कर उनपर सिमटते जाते और जब पुलियें के बराबर हो जाते हैं, तो आपसे आप खेत में गिर जाते। सारे खेत में पुलियें-पुलियें दिखाई पड़ते हैं।

मेड़ों पर के पेड़ों की शोभा भी बदली जा रही है। दो पेड़ों के बीच में रस्सियाँ तान दी गई हैं और उनपर लत्तियाँ लतर रही हैं! ये लत्तियाँ अंगूर की हैं, ये पेड़ तूत के हैं। जेल में हमारा एक खब्ती सुपरिन्टेन्डेन्ट था, वह कहा करता सभ्यता का मानी है—रेशम और शराब! देखिये, दोनो की व्यवस्था हो गई!

रोम स्टेशन पर पहुँच कर सचमुच चकित हो गया। लंदन के, पेरिस के बड़े स्टेशन देख चुका था! लंदन का स्टेशन उजड़ा-उजड़ा-सा लगता है, पेरिस का स्टेशन देखकर कौन कहेगा, यह संसार के सुन्दरतम नगर का स्टेशन है! काला-कलूटा! किन्तु, रोम का स्टेशन! अरे, यह संगमरमर! ये शीशे। ये फूल! यह स्टेशन है या प्रदर्शनी-गृह!

पिछली लड़ाई के बाद यह स्टेशन बनाया गया है! अच्छा घर नहीं बना पाते हो, तो एक अच्छा बरामदा ही बना लो—ग़रीब इटली ने शायद यही सोचा। स्टेशन

ही ऐसा बना दिया है कि खामखाह आप इस शहर की ओर आकृष्ट होंगे।

स्टेशन के निकट ही हमारा होटल है! वहाँ सामान पटक हाँथ-मुँह धो हम 'एयर-इन्डिया' के आफिस में गये और तय कर आये, १६-६ को हम यहाँ से रवाना हो जायेंगे। वहाँ से 'अमेरिकन एक्सप्रेस' के दफ्तर में गये, जिसने हमारी यात्रा का प्रबंध किया था। देशपांडे और शिवाजी के कुछ पत्र आये थे। इस बार मैंने एक अजीब बात की है—किसी को अपना पता ही नहीं दिया, हाँ, अपनी ओर से प्रति दिन दो-चार पत्र जरूर भेज देता रहा!

जब हम सड़क से गुजर रहे थे, देखा, जगह-जगह हथियारबंद पुलिस तैनात है, कहीं-कहीं फौजी दस्ते भी घूम रहे हैं। बात क्या है? पता चला, जेनरल रेजवे आज रोम आये हैं, उन्हीं के खिलाफ कम्यूनिस्टों ने वहाँ प्रदर्शनी करने का सोचा है। पेरिस में भी ऐसा ही किया गया था। किन्तु पेरिस में तो कुछ कर भी सके यहाँ तो टाँयटाँय फिस्स! हाँ, सड़कों पर एक दहशत की छाया जरूर दिखाई पड़ती थी।

शहर की यह दशा देख, हमने सोचा, शीलारानी होटल में ही रह जाँय, तो अच्छा। शिवाजी भी रह गये। मैं देशपाँडे के साथ निकला शहर देखने!

सबसे पहले क्या देखें? रोम के इतिहास में जिस इमारत को सबसे अधिक प्रसिद्धि या निन्दा प्राप्त होगई है, हम उसी कोलोजियम की ओर चले! उस ओर जो ट्राम जा रही थी, बड़ी मुश्किल से पूछ ताछ कर उस पर चढ़ सका। यूरप का सबसे बड़ा अभिशाप यह है कि कोई ऐसी भाषा नहीं जिसका सूत्र पकड़ कर आप अपना काम असानी से चला सकें। फ्रेंच शरीफों की भाषा है, अंगरेजी व्यापारियों की। जनता तो अपनी-अपनी भाषा के ही दायरे में चक्कर काटती है।

लंदन से रोम तक यात्रा करने के लिये आपको कम से कम चार भाषायें जाननी चाहियें—अंगरेजी फ्रेंच, जर्मन (स्वीजरलैंड के लिए) और इतालवी! और, हर देश के लिये विजा चाहिये, हर देश में सिक्के बदलने चाहिये, यदि सैंकड़े दस के हिसाब से भी भँजाई ली गई, तो आपका रुपया आधा हो गया!

रोम में घुसिये और आपको वह प्रसिद्ध लोकोक्ति याद आने लगेगी—रोम एक दिन में नहीं बना! यह शहर संसार के प्राचीनतम नगरों से अपनी स्थिति और प्रसिद्धि के बारे में मुकाबला कर सकता है। अट्ठाइस सौ वर्षों का उसका इतिहास है जब उसके संस्थापक 'रोमुलस' ने टाइबर के किनारे, सात पहाड़ियों पर, उसकी नींव डाली थी। समूचे यूरप में ज्ञान-विज्ञान की किरण बिखरने का सौभाग्य तो

इसे प्राप्त ही हुआ, इसने ऐसे साम्राज्य स्थापित किये, जिसका सपना भी उन दिनों नहीं देखा जा सकता है। और तमाशा यह कि संसार में साम्राज्य स्थापित करने वाले इस शहर को अपने प्रजातंत्र का भी उतना ही घमंड था। सीजर ऐसे अपने परम प्रतापी बेटे को भी प्रजातंत्र की बलिवेदी पर चढ़ा देने में इसे झिझक नहीं हुई थी।

कला-कौशल का भी यह केन्द्र रहा है। जब यूरोप में पुनर्जागरण का दौर हुआ, उसके कलापक्ष को पुष्ट करने का सौभाग्य भी रोम को प्राप्त हुआ। माइकेल एंगेलो, राफेल, बरनीनी ऐसे कलाकार उसने पैदा किये, जिन्होंने चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्यकला में युगान्तर उपस्थित कर दिया!

इन्हीं बातों पर मैं गौर करता, ट्राम पर जा रहा था कि सामने कोलोजियम दिखाई पड़ा। उसके जो चित्र देखे थे, उससे पहचानने में दिक्कत नहीं हुई, किन्तु स्पष्ट कहूँ, उसकी दीवारों के नीचे खड़ा होने पर लगा, अपने चित्रों से भी यह महान है। यह इमारत गोल आकार का है जिसका वृत्त ५७३ गज है और जिसकी ऊँचाई १५७ फीट है। यह चार महल का है! यह कोई घर नहीं, बल्कि एक रंगमंच था, जिसकी दीर्घाओं में एक साथ पचास हजार आदमी बैठ सकते थे। यह ८० ई० पू० में तैयार हुआ था और इसके उद्घाटन के लिए १०० दिनों तक उत्सव होता रहा था, जिसमें ५००० जंगली जानवर मारे

गये थे। इस इमारत पर रोमनों को बड़ा अभिमान था, वे कहा करते—जब तक कोलोसियम है, तब तक रोम भी रहेगा और जिस दिन रोम नहीं रहेगा, संसार नहीं रहेगा। किन्तु समय के थपेड़ों ने कोलोसियम को तहस-नहस कर दिया—खासकर दो बड़े-बड़े भूकम्पों ने और क्या रोम भी तहस-नहस होने से बच सका? हाँ, संसार तब भी कायम ही है।

हम उसके आँगन (६४ × ५८ गज) में गये, जहाँ वे क्रूर कर्म होते थे, जब ईसाइयों को पकड़ कर जंगली जानवरों के सामने डाल दिया जाता था। जंगली जानवर उन्हें नोचते चीरते थे और ऊपर दीर्घाओं में बैठे दर्शक हँसते, तालियाँ पीटते और आनन्द मनाते थे! आँगन में ही गुफायें बनी हैं जिनमें वे जंगली जानवर रखे जाते थे, ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। हम उनके सहारे ऊपर पहुँचे। ऊपर पहुँच कर आप इसकी खिड़कियों से सारे रोम की एक झांकी भी ले सकते हैं!

बहुत देर तक हम एक खिड़की पर बैठे कभी इसकी अँगनाई की ओर देखते और कभी बाहर रोम-नगर पर नजर डालते। हम वहीं थे कि दो अँगरेज युवक वहाँ पहुँचे। क्या तमाशा है, इंगलैंड में किसी भारतीय को देखकर जो अपनाया अनुभव किया था, यहाँ इन्हें देखकर वह अपनाया हुआ—क्योंकि हम लोग आपस में बातें कर सकते थे, एक साथ कुछ देर बैठकर सिगरेट पी सकते थे। समान भाषा भी एक बहुत बड़ा मानवी सम्बन्ध का सूत्र है।

वहाँ से, जब नीचे उतरे और आगे बढ़े, सामने एक ऐसी इमारत देखी कि पेरिस के आर्क-द्-त्रम्फ की याद आ गई। यह कॉन्सटेंटाइन का बनाया हुआ विजय-तोरण है और इसी को देखकर नेपोलियन ने पेरिस में वह विजय-तोरण बनवाया था। यही नहीं, जब प्राचीन रोम के खंडहरों में घूम रहा था, तब यह स्पष्ट हुआ, नेपोलियन ने रोमन-कानून को ही नहीं अपनाया था, पेरिस में जो कुछ शानदार चीजें उसने बनवाईं, सब पर प्राचीन रोम की छाप है! उसका विजय-स्तम्भ भी यहीं से लिया गया था और जिस गिरिजा घर में उसकी अस्थि रखी गई है, वह तो सेंट पिटर के गिरजाघर के मुकाबले में ही बनाया गया था।

फिर उस भग्नावशेष पर पहुंचा, जहाँ नीरो का 'स्वर्ण-प्रासाद' था! बस, एक चबूतरा बाकी है, उसीपर थोड़ी देर के लिए बैठ लिया—उफ, कैसा था वह आदमी, जो समूची राजधानी को जलता हुआ देखते हुए भी सितार बजा रहा था! वह क्या था—कलाकार, सनकी या नर-राक्षस! या तीनों का सम्मिश्रण।

चित्त उद्विग्न हो गया, आगे बढ़ा। चारों ओर ढूह-ढूह, खंडहर-खंडहर! संसार कितना क्षणिक है, मानव की कृतियों का क्या मोल है? एक दिन वह मिट्टी में मिलेगा, उसकी मनोरम कृतियाँ इतना भयानक रूप धारण कर लेंगी। किन्तु, आह रे मानव! जरा आँखें फाड़-फाड़ कर देखिये,

इन खण्डहरों के एकान्त कोने में भी जहाँ-तहाँ युवक-युवतियाँ बैठे हैं, एक-दूसरे की कमर में हाथ डालकर चुम्बन-आलिंगन कर रहे हैं! क्या वे यह घोषणा कर रहे हैं, ये महल ध्वस्त-पस्त हो जायें, मानव सदा अमर है, वह जंगल में भी मंगल मनाता रहेगा, खंडहर में भी रास रचाता रहेगा।

कुछ आगे बढ़ने पर एक गिरजा-घर देखा, भीतर गये। अरे यह तो खिलौना-घर ऐसा लगता है। एक घर में खिलौनों में ही सारी सृष्टि रच दी गई है। नदी, पहाड़, जानवर, पंछी ही नहीं, चाँद, सूरज तारे भी दिखलाये गये हैं। जब गिरजा-घर से निकल रहा था, एक तन्दुरुस्त बच्चे को अपनी ओर निहारते देखा। उसके निकट गया, जरा दुलार दिया, चुमकार दिया, फिर उसे मेरी गोद में आने में जरा भी संकोच नहीं हुआ। हाँ, जब उसे गोद में लिये आगे बढ़ा, तो लड़का कसमसाने लगा, गोद से उतारा नहीं कि भाग कर दूर खड़ा हो गया, हाँ वहाँ से मेरी ओर देखकर मुस्कुराता और हाथ हिलाता रहा। ये बच्चे—सब बच्चे एक हैं, चाहे पटना के बच्चे हों या रोम के!

अब हम उस जगह पहुँचे, जहाँ रोम-साम्राज्य के प्राचीन ध्वंसावशेष हैं। उन्हें खोदा गया है। जमीन के नीचे से प्राचीन इमारतों के अवशेष निकले हैं, कहीं चबूतरे हैं, कहीं खम्भे हैं, कहीं सहन है। कभी वे भव्य रहे होंगे, विशाल रहे होंगे, आज भी इसकी सूचना मिलती थी।

इसी जगह दीवार से लगे चार नक्शे देखे, जिनमें रोमन-साम्राज्य के विकास को 'प्रदर्शित' किया गया है। पहला नक्शा, छोटा सा नगर-राज्य! दूसरा नक्शा—१४६ ई० पूर्व—साम्राज्य का विकास हो रहा है। १४ ई० पू०—साम्राज्य फैलता जा रहा है। ११७ ई०—साम्राज्य का चरम विकास जब यूरोप में इङ्गलैंड तक, अफ्रीका में मिश्र तक और एशिया में ईरान तक रोमन-साम्राज्य का विकास हो चुका है! ये चार नक्शे और इसकी परिणति इस खंडहर के रूप में।

खंडहर के ऊपर वह रोमन-साम्राज्य का चिर-प्रसिद्ध कैपि-तोल! सामने घोड़े की एक विशाल मूर्त्ति! दरवाजे पर आदमी की दो विशाल मूर्त्तियाँ! फिर नीचे की ओर सीढ़ियाँ सीढ़ियों से उतरिये कि वह लीजिये, आँखों को चकाचौंध में डालने वाला विक्टर एमुयल का शानदार स्मारक।

कितना ऊँचा, कितना विशाल, कितना सुन्दर! ऊपर रथ में जुते घोड़ों की मूर्त्तियाँ—मालूम होता, वे अब भी हवा में उड़ जानेवाले हैं। फिर घोड़े पर सवार राजा की विशाल मूर्त्ति—काँसे के ऊपर किया गया सोने का पानी सौ साल के बाद भी चमचम कर रहा है। उसके नीचे 'अज्ञात सैनिकों की कब्र जिसकी बगल में दो सैनिक सदा पहरा दिया करते हैं। हम सीढ़ियों से ऊपर चढ़ते गये। अज्ञात सैनिकों का अभिनन्दन किया, निकट से राजा और उसके घोड़े की गरिमा को निहारा फिर ऊपर के मंच पर जाकर सारे रोम की एक झलक ली।

काफी देर हो चुकी थी, हम अपने होटल की ओर चले। रास्ते में वह फव्वारा दिखाई पड़ा जिसके तीन ओर शानदार इमारतें हैं; गोलाई में। इस समय वहाँ बड़ी चहल पहल थी बिजली की रोशनी में फव्वारे की शोभा का क्या कहना? रेस्तराँ में लोग खा-पी रहे हैं, गप्पेशप रहे हैं ! कई जगह बाजे-बज रहे। थके-माँदे थे, हम दोनों फव्वारे के निकट बैठ कर सुस्ताने लगे, ठंढाने लगे ! हाँ, रोम में काफी गरमी पड़ रही है। जब हम बैठे थे, एक सज्जन आये, कहिए, आपका फोटो ले दूँ। यह भी सही।

फिर बैठे कि दो नौजवान आये, उनके साथ एक लड़की भी। उनमें से एक ने टूटी फूटी अंग्रेजी में पूछा, आप कहाँ से आये। ज्यों ही इन्डिया कहा—इन्डिया, इन्डिया कह कर वह उछलने लगा। तीनों में बाजी लगी थी कि हम कहाँ के हैं। उसी नौजवान की बाजी रही। फिर वह हमारे देश का तारीफ करने लगा—गाँधी जी का नाम लिया। जब उसे मालूम हुआ, हम लोग गाँधी जी के साथ काम कर चुके हैं। गाँधीजी मेरे गाँव में भी गये थे, तब तो उसके आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। फिर उसने पूछा क्या आपकी यह पोशाक धार्मिक है—आप पादरी हैं। मैं काली शेरवानी पहने था। इसीसे उसने ऐसा पूछा। यहाँ के पादरी काली पोशाक पहनते हैं, शेरवानी की ही तरह घुटने तक की। हमने बताया, यह हमारा राष्ट्रीय पोशाक है, तो तुरत उसने "मिस इन्डिया" की चर्चा छेड़ दी। इधर यूरोप की पत्रिकाओं में मिस इन्डिया—इन्द्राणी

रहमान—की तस्वीरें बहुत छप रही हैं, कवर पर ही। साड़ी का आँचल सिर से लेकर बगल तक ले जाने में जो चेहरे के चारों ओर एक घेरा बन जाता है, वह उन्हें बहुत अच्छा लगा था। इशारे से बताने लगे—तो हमने उनके साथ की लड़की की ओर इशारा करके कहा—इन्हें भी "मिस इतालिया" बहुत अच्छी लगती हैं! तीनों ठठा कर हँस पड़े!

इटली गरीब देश है। देखा, बहुत लोग नकली चीजें बेच रहे। अजीब मोलतोल—काबुलियों को भी मात कर दिया। लेकिन हर जगह भले बुरे लोग हैं। अभी जब मैं एक दूकान पर चीजें खरीद रहा था, एक नौजवान ने मुझे कैसी मदद की और जब हमने उसकी थोड़ी खातिर करनी चाही, किस तरह धन्यवाद के साथ अस्वीकार किया।

३९

रोम की झाँकी

रोम
१८/६/५२

हमलोग जो बहुधंधी हैं, विदेशों में जाकर अपनी कामनाओं को अतृप्त ही छोड़ कर लौट आते हैं। रोम के लिए हमें कम से कम एक सप्ताह रखना चाहिये था। किन्तु, यहाँ तो टिकट कट चुकी है, सीट रिजर्व है, कल संध्या को चल ही देना है, अतः जो देखना हो, आज देख लीजिये।

कल रात में एक टैक्सीवाले से बातें हुई थीं। उसने कहा, दस हजार लीरा में वह रोम दिखला देगा—कुल छः घंटे लगेंगे। अब तो इस संक्षिप्त परिचय से ही सन्तुष्ट होना पड़ेगा। टैक्सी का ड्राइवर थोड़ी अँगरेजी जानता है। एक नक्शा लेकर उसने जो गन्तव्य स्थानों की सूची बनाई, उससे लगा, एक झलक हम पा ही लेंगे।

दस हजार लीरा—घबड़ायें आप नहीं। फ्राँस के फ्रैंक से भी गया बीता है यह इटालियन सिक्का। अपने एक पैसे के बराबर भी इसकी कीमत नहीं है। यहाँ हजार-लाख में ही

बातें होती हैं। जिसका अर्थ इकाई-दहाई से बढ़कर शायद ही सैकड़े तक जाता है।

कोलेजियम से ही आज भी शुरू किया गया। रोम सात पहाड़ियों पर बसा था। ड्राइवर ने सातों के नाम और उनके स्थान बताये। फिर विजय-तोरण और नीरो के स्वर्ण-भवन का भग्नावशेष देखते।आगे बढ़े। कल खंडहर-खंडहर होकर गया था, आज राजपथ से चला, जो 'विया फोरी इम्पीरियल' कहलाता है। इसी सड़क के किनारे सघन वृक्षों और लता-गुल्मों के बीच-बीच में रोमन सम्राटों की मूर्तियाँ हैं—त्राजन, सीजर, अगस्तस, नेरवा—कहा तक गिनियेगा? यहीं त्राजन का बाजार है, जहाँ कभी संसार के कोने-कोने से व्यापारी आते और अपने मालों का आदान-प्रदान करते थे। त्राजन के फोरम के सामने एक ऊँचा स्तम्भ है, जिसपर त्राजन ने अपने विजय-अभियानों को सचित्र खुदवाया था। क्या इस स्तम्भ को देखकर ही नेपोलियन ने अपना विजय-स्तम्भ खड़ा किया था?

फिर विक्टर इमानुएल के शानदार स्मारक को देखते, उसके शानदार घोड़े के निकट खड़ा होकर फोटो खिंचवा कर, हम कैपिटोल गये। आजकल यहाँ रोम के मेयर का आफिस होता है। बीच की अँगनाई में कितनी ही मूर्तियाँ हैं। एक मूर्ति रोम की देवी की है, जिसके दोनों ओर दो झरने नील और टाइबर का प्रतिनिधित्व करते हैं। कहाँ नील नदी और कहाँ टाइबर—किन्तु, रोम को तो अपनी विजयों पर सदा

अभिमान रहा है ! दोनों तरफ दो भवन हैं, जिनके नक्शे माइकेल एंजेलो ने बनाये थे। एक भवन में 'म्यूजियो कैपिटोलिना' है— जहाँ उत्तमोत्तम कलाकृतियाँ सुरक्षित रखी गई हैं। इसी संग्रहालय में 'मुमूर्षु गॉल' की वह मूर्त्ति है, जिसपर बायरन ने एक कविता लिखी थी। एक जीवंत मूर्त्ति और है वहाँ, जिसकी प्रायः चर्चा होती है—एक बच्चा अपने पैर से काँटा निकाल रहा है ! बच्चे की मुखमुद्रा देखकर आँखें नहीं थकतीं।

कैपितोल की ऊँचाई से ही हमने फिर एक बार प्राचीन रोम के भग्नावशेष को देखा। दोनों ओर भवन थे, बीच में राजपथ था। राजपथ के दोनों छोर पर दो विजय तोरण, एक पार्थियनों पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में, एक यहूदियों को पराजित करने के उपलक्ष में। हमारा पथप्रदर्शक उसी ऊँचाई से उंगली उठा-उठा कर बता रहा था—देखिये, वहाँ सिनेट था, जहाँ रोमनों की पार्लियामेंट बैठती थी; वहाँ वह रोस्त्रा है, जहाँ से खड़े होकर वक्ता व्याख्यान देते थे; वहाँ रोमुलु की समाधि है, वहाँ शनिदेव का मन्दिर है, वहाँ सीजर की हत्या की गई थी !

वहीं उसने उस राजपथ का चिन्ह बताया, जिसपर रोमन वीरों के रथ विजय की आकांक्षा से बाहर जाते थे। रथ के पहियों के निशान देखकर राजगृह और वैशाली के राजपथों के निशान याद आ गये ! पत्थर पर गहरी लकीरें खिंची थीं।

जब हम कैपितोल से लौट रहे थे, वह घर दिखाया गया, जिसके तहखाने में फाँसी देने के लिए संट पिटर और संट पाल को रखा गया था। उस घर के दरवाजे पर इस बात का उल्लेख भी है। यह घर पहले जेल था। कहा जाता है, संट पिटर से प्रभावित होकर उसका जेलर ईसाई बन गया था।

विक्टर एमानुयल के स्मारक की ही बगल में पैलाजा विनितिसया—वेनिस-महल—है, जिसे रोम के प्राचीन महलों में सबसे सुन्दर और सुरक्षित समझा जाता है। इसी महल में मुसोलिनी रहा करता था और इसी के झरोखे पर खड़ा होकर वह रोम-निवासियों को अपने सिंह-गर्जन से उत्साहित किया करता था। इस महल के सामने वह चौराहा है जहाँ एक लाख आदमी मजे से खड़े हो सकते हैं। मुसोलिनी के श्रोता यहीं खड़े-खड़े उसकी बिजली की वाणी सुना करते थे!

अब हम वेटिकन की ओर चले। किन्तु इसके पहले हमारा ड्राइवर हमें उस मन्दिर में ले गया, जहाँ माइकेल एँजेलो की बनाई सर्वश्रेष्ठ मूर्त्ति—मूसा की मूर्त्ति है। सफेद संगमरमर की यह मूर्त्ति आज भी वैसी ही जीवंत लगती है। बहुत लोगों का कहना है कि यह संसार की सर्वोत्तम मूर्त्ति है। शानदार सफेद दाढ़ी वाली यह मूर्त्ति अभी मुँह खोलकर हमसे कुशल-वार्ता पूछेगी, ऐसा लगता था। उस मूर्त्ति की एक प्रतिलिपि खरीद कर हम वहाँ से चले!

रास्ते में चांसलरी पड़ी—इटली की सेक्रेटेरियट। काफी लम्बी चौड़ी और शानदार इमारत है। यह पन्द्रहवीं सदी में बनाई गई थी।

और, यह टाइबर नदी और उसके ऊपर यह खूबसूरत पुल। फ्राँस और इटली में जितने भी पुल देखे, सब कला के नमूने। अपने देश या इँगलैंड की तरह वे सिर्फ लोहे या कंकरीट के ढाँचे-मात्र नहीं हैं। टाइबर के इस पुल पर कितनी ही भव्य मूर्त्तियाँ। यदि इस शानदार पुल को बाद कर दीजिये, तो टाइबर कोई बड़ी नदी नहीं—यही, हमारी बागमती ऐसी। गर्मी के दिन में सूखी-सूखी लग रही थी।

पुल पर आइये और लगेगा, आप किसी नये लोक में जा रहे हैं। वेटिकन को एक नये देश का गौरव तो प्राप्त है ही। बस, एक शहर का यह देश है, जिसका अपना शासन है, अपने दूतावास हैं। ईसाइयों के बड़े पादरी यहीं रहते हैं, जो पोप कहलाते हैं। एक दिन पोप का दबदबा सारे यूरोप पर था। अब वह सिमट कर एक शहर में आ गया है। किन्तु, यह शहर साधारण शहर नहीं है। यूरोप के राष्ट्रों ने समझौता कर रखा है कि चाहे जो कोई जिस किसी से लड़े, वेटिकन पर कभी बमबारी नहीं की जायगी। वेटिकन में ही सेंटपिटर का वह बड़ा गिरिजाघर है जो ईसाइयों के लिए सबसे प्रसिद्ध और पवित्र मन्दिर है और वहाँ ऐसा कला-संग्रह है कि देखकर आश्चर्य होता है।

ड्राइवर ने बताया, इस पुल के आधे हिस्से से ही वेटिकन का राज्य प्रारम्भ हो जाता है। पिछले युद्ध में इटली में घमासान लड़ाई हुई किन्तु इस शहर का बाल भी बाँका नहीं हुआ। अतः युद्ध की विभीषिकाओं से बचा हुआ यह नगर थोड़ी ही देर में हमारी आँखों को चकाचौंध में डालने लगा। जब हमारी गाड़ी सेंटपिटर के गिरिजाघर की अँगनाई में रुकी, मुझे तो ऐसा लगा, किसी जादूई नगर में पहुँच गया होऊँ। २८४ बड़े-बड़े स्तम्भ, ८८ गुम्बद और १४० मूर्त्तियों से घिरा यह आँगन संसार के सर्वसुन्दर स्थानों में गिना जाता है। यह २६० गज चौड़ा और २१५ गज लम्बा है। बीच में मिश्र का एक स्तम्भ है, जो ८० फीट ऊँचा है। स्तम्भ के दोनों ओर दो फव्वारे हैं जो ४५ फीट ऊँचे हैं। फव्वारों से पानी की बूँदें झर-झर झर रही थीं। आँगन में इधर-उधर रंगीन कपड़ों में औरत-मर्द घूम रहे और आश्चर्यचकित हो कभी इन स्तम्भों को, कभी मूर्त्तियों को और कभी सेंटपिटर के गगनचुम्बी गुम्बदों को देख रहे।

सेंटपिटर का यह विशाल गिरिजाघर—संसार के सभी गिरजाघरों से यह भव्य और विशाल है। लम्बाई ६०८ फीट, ऊँचाई १४५ फीट, चौड़ाई ६९ फीट और पूरा रकबा ४८५०० वर्गफीट है। यह कितना विशाल है, इसका अन्दाज इससे लगाइये कि इँगलैंड के सबसे बड़े गिरिजाघर सेंटपाल कथेड्रल का रकबा ७८७५ वर्गफीट है और पेरिस के विश्व विख्यात के नोत्रं-दाम का रकबा सिर्फ ५१६५ वर्गफीट।

इसके बनाने में बड़े-बड़े कलाचार्यों का हाथ रहा है। इसका नक्शा माइकेल एंजेलो ने बनाया था। राफेल ने भी एक नक्शा बनाया था, किन्तु एंजेलो का ही नक्शा स्वीकार किया गया। इटली के दो दर्जन सर्वश्रेष्ठ कलाकारों ने इसे सजाया, रचाया—बरनीनी, मादर्नो, जियोत्तो, बुओनिसिनो, फोन्ताना आदि। माइकेल एंजेलो और राफेल की सुन्दरतम कलाकृतियाँ यहीं पाई जाती हैं।

आँगन से सीढ़ियों की ऊँचाई पार करते हुए मन्दिर के निकट आइये, तो आप वहाँ आज भी स्वीस गार्डों का पहरा पड़ता हुआ देखेंगे। नेपाली पहरेदारों की तरह इनके बारे में भी यह धारणा है कि जीतेजी ये दुश्मनों को भीतर नहीं घुसने देंगे। प्राचीन काल में सभी दरबारों में स्वीस गार्ड रखे जाते थे। इन्हीं स्वीस गार्डों ने फ्राँस की क्रान्ति के समय राजा-रानी को बचाने के लिए अपने को बोटी-बोटी कटवा डाला था।

मन्दिर में घुसिये और पाइयेगा, सारे वातावरण पर एक गम्भीरता, पवित्रता का रोब छाया हुआ है। ईसा के जीवन-सम्बन्धी अनेक-अनेक मूर्त्तियाँ हैं। भीतर की छत पर सोना ही-सोना है। इन मूर्त्तियों की भव्यता, छत की चित्रकारी और खम्भों की खुदाई देखकर आदमी दाँतों अँगुली काटने लगता है। माइकेल एंजेलो के द्वारा बनी ईसा की शहादत की मूर्त्ति को देखकर क्या आँखें सजल हुए बिना रहती हैं?

एंजेलो ने यह मूर्त्ति २४ वर्ष की उम्र में ही बनाई थी। ईसा की माँ अपने शहीद बेटे की लाश को गोद में लिये रो रही हैं—आपको लगेगा, उनकी आँखों से आज भी आँसू टपक रहे हैं।

सारा मन्दिर धूप-दीप से महमह जगमग कर रहा था।

फिर हम उस प्रार्थना-घर में पहुँचे, जिसकी छत को माइकेल एंजेलो ने चित्रकारियों से भर दिया है। इन चित्रकारियों में सारी सृष्टि-कथा कह दी गई है। आदम की तस्वीर देख कर कोई भी कह सकता है, मनुष्य का आदि-पुरुष ऐसा ही होगा। वह बलिष्ट शरीर, पुट्ठे उभरे, नसें तनी, लम्बी शानदार दाढ़ी, चेहरे पर तेज और ओज—मानवता की इससे बढ़कर कोई तस्वीर क्या बनाई जा सकती है? भरसाहे पर चित्त लेटा हुआ यह चित्रकार दिनों, महीनों और सालों को तन्मयता से चित्रण करते हुए गुजार दिया था। प्रार्थना-घर की एक बेंच पर बैठ कर ऊपर मुँह किये, मैं भाव-मुग्ध इस विशाल चित्रावली को कब तक एकटक देखता रहा?

फिर संग्रहालय में जाइये—यूरप के सभी चित्रकार अपनी सुन्दरतम रचनाओं से इस देव-मन्दिर को सजाने में प्रतिद्वंदिता करते रहे हैं। राफेल की तो सारी सुन्दरतम कलाकृतियाँ यहीं हैं। इन कलाकृतियों के कारण यह स्थान उन दिनों भी तीर्थ बना रहेगा, जब कदाचित सारा विश्व धर्म को भूल जाय!

लुव्र की तरह इस कलासंग्रह को देखकर भी इच्छा होती थी, यहीं कुछ दिनों रम रहा जाय। आदमी कूची लेकर कैसी रंगीन दुनिया तैयार कर दे सकता है, इसकी यह एक उत्कृष्ट बानगी है। मानव-प्रतिमा को बार-बार सिर झुकाने की प्रवृत्ति यहाँ आपसे आप पैदा हो जाती है।

रोम के दो स्थान ऐसे हैं, जिन्हें लोग देख लेना आवश्यक समझते हैं। एक तो यहाँ के पुराने स्नान-घर। रोम में काफी गरमी पड़ती है। जून में हम सोच रहे थे, क्यों नहीं अपना महीन खादी का कुर्ता ले आये। इस गर्मी और पसीने के कारण स्नान करने में मजा आना ही चाहिये। अत: विलासी रोमनों ने स्नान के लिए ऐसा शानदार प्रबंध कर रखा था कि उनका भग्नावशेष देखकर भी आश्चर्य होता है।

दूसरी चीज है—ईसाइयों की समाधियाँ, जिन्हें 'काटाकम्ब' कहते हैं। रोम के जो सम्राट थे, वे ईसाइयों को तरह-तरह से कष्ट देते थे। यदि उन्हें पता चल जाता था कि किसी ने मुर्दे को ईसाई ढंग से गाड़ा है, तो उसे उखड़वा कर जला डालते थे। अपने मुर्दों को इस बेइज्जती से बचाने के लिए ईसाइयों ने एक नवीन आविष्कार किया। जमीन के नीचे वे तह-पर-तह खोदते जाते थे और उन्हीं में अपने मुर्दों को रखते जाते थे! हम जब एक ऐसे ही तहखाने में मुर्दों की ठठरियाँ देख रहे थे, बार-बार रोमांच हो आता था!

वहीं हमने एक ईसाई संत की समाधि देखी, जिनके शरीर की चमड़ी उधेड़ ली गई थी। उफ, इन संतों की यह साधना ही है कि अब तक ईसाई धर्म, अनेक दूषणों के आ जाने पर भी, जीवित है।

'काटाकम्ब' देखने को जा रहे थे। रोम की दीवाल के यह बाहर है। हम जिस सड़क से जा रहे थे, उसकी बगल में एक छोटा-सा मन्दिर है। "का वैदिस" हमने सुन रखा था, किन्तु जब उसके स्थान पर पहुँचा, तो भावना में बह गया। कह सकता हूँ, रोम में मुझे जितना प्रभावित इस स्थान ने किया, उतना किसी भी स्थान, मन्दिर या दर्शनीय पदार्थ ने नहीं।

संट पिटर रोम में ईसाई-धर्म का प्रचार कर रहे थे। राजा से मनाही थी, अतः चुपचाप काम करना पड़ता था। किन्तु, ज्यों-ज्यों इनका प्रभाव बढ़ा, राजा ने सख्ती बढ़ाई। तब पिटर के शिष्यों ने कहा—आप यहाँ से भाग जायँ। आप बचे रहेंगे, तो धर्म का काम होता रहेगा। पिटर चले, रोमन दीवाल पार कर गये, खतरा टल गया कि इतने ही में उनके कानों में आवाज आई—दोमिने, का वैदिस! साधु, यह क्या कर रहे हो? पिटर चकित हुए! इधर-उधर देखा, कोई नहीं? फिर आगे बढ़े तो वही आवाज! ओह! उन्होंने अनुमान किया, यह वाणी किसकी है? वह काँप उठे—ऊपर नजर की! तो, देखा वह ईसा थे, उनकी पीठ

पर सलीब था, उन्होंने पिटर से कहा—लौट जाओ, मैं फिर यरूजलम में सलीब पर चढ़ने जा रहा हूँ, तुम रोम में फाँसी पड़ो। पिटर लौटे, राजा ने उन्हें पकड़वाया, उन्हें जेल में रखा, फिर फाँसी दी।

पिटर मर गये—किन्तु ईसाई-धर्म अमर हो गया!

क्या हर पिटर के जीवन में यह "का वैदिस" की आवाज नहीं आती है? किन्तु कितनों के कान उसे सुन पाते हैं? राजा की फाँसी से बचने के लिए वे स्वयं अपने गले में फाँसी डाल लेते हैं!

—o—

४०

घोंसले की ओर !

रोम
१०।६।५२

आज ही जाना है। अब क्या देखा-सुना जाता ? थकावट भी बहुत थी। खूब देर तक सोता रहा।

कल का वैटिस' के बाद फिर रोम शहर में आया और यहाँ का पैंथियन देखा। रोमन-साम्राज्य के गिने-चुने स्मृतिचिन्हों में यह है। हाथर्न ने कहा था, इससे अधिक शानदार चीज इस पृथ्वी पर कुछ नहीं है। भीतर रोशनी जाने के लिए छत में खुली जगह है जिसके बारे में उसने कहा था—मानों स्वर्ग इस ओर से उसके आन्तरिक सौंदर्य को झाँक रहा हो।

पेरिस के पैंथियन की ही तरह यहाँ इटली के बड़े लोगों की समाधियाँ हैं। मैंने राफेल की समाधि देखी। उसपर लिखा था—जब वह जिन्दा था, प्रकृति उससे डरती थी कि कहीं वह मुझ पर भी बाजी न मार ले जाय और जब वह मर गया, वह उसीके साथ निश्चिन्त सो रही है।

पैंथियन से लौट रहा था तो बीच में इटली की राष्ट्रीय

विधान सभा का भवन दिखाई पड़ा। मेरे ड्राइवर ने बड़ी नफरत से कहा—यहाँ लोग सिर्फ बकबक करते रहते हैं !

मैं चाहता था, कीट्स और शेली के स्मारकों और समाधियों को देख लूँ। किन्तु, काफी देर हो चुकी थी, यह अरमान दिल में ही रह गया। कौन कहे, इसके चलते फिर आना पड़े।

रात में एक 'नाइट क्लब' में गया। खुले बगीचे में नाच-गान हो रहा था। खाइये, पीजिये, देखिये, सुनिये। किन्तु, पेरिस के नैशविहारों का मजा जिसने लूटा हो, उसके लिए तो यह खेल ही खेल है। मैं इटालियन संगीत सुनना चाहता था। किन्तु, यहाँ संगीत की अपेक्षा खेल-तमाशों की ही भरमार थी।

कल शाम को होटल के बाहर घूम रहा था कि दो सज्जनों को अपनी ओर घूरते देखा। ठिठकते हुए वे निकट आये और अपना परिचय दिया। उनमें एक थे श्री फूलचंद पाँडेय, जो मिलान में हिन्दी पढ़ाते हैं और दूसरे सज्जन हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्वाददाता थे।

डायरी लिख ही रहा था कि वे दोनों सज्जन आ गये। पाँडेय जी से पता चला, वे भारत-सरकार के वैदेशिक विभाग में हैं। मिलान विश्वविद्यालय ने हिन्दी की कक्षा खोली, तो उसने भारत-सरकार से अध्यापक माँगा। पाँडेयजी भेज दिये गये। पाँडेयजी बनारस के रहने वाले हैं। इनसे पता चला, इटली के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई शुरू हो गई है।

रोम विश्वविद्यालय में श्रीराम सिंह तोमर हैं। तोमरजी एक शब्दकोष तैयार कर रहे हैं जिसमें हिन्दी के शब्दों के समानार्थवाची इटालियन, फ्रांसीसी आदि सभी यूरोपीय भाषाओं के शब्द दिये जायेंगे।

फूलचंदजी ने थोड़ी ही देर में आत्मीयता स्थापित कर ली। कुछ सौदे करने थे, उन्हीं के साथ बाहर गया। उन्हें दुख था कि हमलोगों की अधिक सेवा नहीं कर सके। आजकल विश्वविद्यालय बन्द है, इसलिए रोम के भारतीय दूतावास में ही आप रह रहे हैं।

पाँडेयजी से पता चला, इटली में भारतीय भाषाओं के लिए ही अनुराग नहीं है, भारतीय फैशन भी धीरे-धीरे घर कर रहा है। लड़कियाँ अपना केशविन्यास भारतीय ढंग पर करना पसंद करती हैं। भारतीय आभूषण भी उन्हें पसंद आ रहे हैं। केवल विद्यार्थी ही हिन्दी नहीं पढ़ते, बड़े-बड़े फर्मों के कर्मचारी भी हिन्दी सीख रहे हैं। उनलोगों ने मान लिया है कि पन्द्रह वर्ष के बाद भारत अपना सारा कारबार हिन्दी में करने लगेगा, अतः वे मुस्तैदी से हिन्दी सीखने में लग पड़े हैं। पाँडेयजी ऐसे ही लोगों के लिए एक हिन्दी इटालियन शिक्षक नामक पुस्तक तैयार कर रहे हैं।

पाँडेयजी ने बताया, इटली में साहित्य के लिए बड़ी रुचि है, साहित्यकों का यहाँ बड़ा सम्मान है। सुप्रसिद्ध लेखक बेनिदित्तो क्रोचे को यहाँ की राष्ट्रीय विधान परिषद् का सदस्य सरकार

ने नामजद कर रखा है। जिस दिन क्रोचे उसकी बैठक में सम्मिलित होने को रोम आये, स्टेशन पर एक लाख आदमी की भीड़ थी। उनका व्याख्यान सुनने को हर देश के प्रमुख राजदूत परिषद् की बैठक में पहुँचे थे।

साढ़े चार बजे हम हवाई जहाज के अड्डे पर आ गये। वहाँ मैंने देखा, मेरी कलम नहीं है। बेचारे पाँडेयजी मेरे होटल में गये, वहाँ कलम नहीं मिली, लेकिन मैं एक कमीज और ब्रश छोड़ आया था, उन्हें लेते आये। इधर थैले में कलम भी मिल गई थी। अपने पर बड़ी नाराजी हुई—क्या मैं हूँ कि कोई व्यवस्था कर नहीं पाता, हमेशा लटर-पटर!

एरोड्रोम आया; लगभग बीस भारतीय हैं। मर्द ही नहीं, औरतें भी। यह हैं मद्रास विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर श्रीमुदालियर, तो उनकी बूढ़ी पत्नी भी उनके साथ हैं! हमारे साथ भी तो शीलारानी हैं। भारतीय नारियाँ अब हर जगह अपना योग्य भाग ले रही हैं।

एयर इण्डिया! और हम फिर उड़े जा रहे हैं, उड़े जा रहे हैं।

एक लम्बा हुदका और हम योरप की भूमि पीछे छोड़ चुके हैं। ऊपर आसमान है और नीचे अथाह सागर लहरा रहा है। बीच में यह हमारा प्लेन उड़ा जा रहा है! वे ही पुराने दृश्य—फिर उन्हें लिख कर समय क्यों बरबाद किया जाय?

किन्तु दिमाग में तरह-तरह की बातें आ रही हैं, जा रही हैं।

यह दूसरी बार यूरप से लौट रहा हूँ। दोनों बार की यात्रा अचानक रही। दोनों बार यूरप को निकट से देखने और समझने की कोशिश की। दिन थोड़े लगाये किन्तु हर दिन की हर घड़ी का उपयोग किया। इङ्गलैंड, फ्रांस, स्वीजरलैंड और इटली—इन्हें खूब देखा। यूरप के और कई अंचल देखने को रह गये हैं—खास कर उत्तरी अंचल के देशों को। पूर्वी अंचल के बारे में अभी क्या सोचा जा सकता है? वह अंचल तो फौलादी घेरे के अन्दर है।

इस बार इटली को जितना देखा, बहुत प्रभावित हुआ। यह देश—यूरप की सभ्यता का अग्रदूत रहा है। अच्छे से अच्छे सैनिक, राजनीतिज्ञ, धर्मगुरु प्रर्यटक, चित्रकार, मूर्त्तिकार, स्थापत्यवेत्ता, कवि, लेखक संगीतज्ञ यह दे चुका है। सारे यूरप पर इसकी छाप है। किन्तु दो महायुद्धों ने इसे ध्वस्त पस्त कर रखा है। एक हरी-भरी भूमि बियावान-सी बनी है। सबसे बुरी बात यह कि जनता ने अपने पर विश्वास खो दिया है। तरह-तरह की राजनीतिक विचारधारायें उसे चंचल और भ्रष्ट बनाती रही हैं। मुसोलिनी ने उसे कैसा नचाया? आज भी वहाँ कोई राजनीतिक दल ऐसा नहीं जो उसे सही नेतृत्व दे। हार कर वह फिर धार्मिकता की शरण में चिपकती जा रही है।

बचपन से ही इकबाल का यह पद्य सुन रहा हूँ—

> यूनानो मिश्र व रोमा सब मिट गये जहाँ से—
>
> लेकिन अभी है बाकी नामोनिशाँ हमारा।

इसे पढ़कर समझ लिया था, रोम उजड़ा हुआ शहर होगा, अपने मोहेंजोदड़ो या हड़प्पा की तरह। या पुराने पत्थरों की तरह। किन्तु, देखा, इस भावना में कितनी गलत बात कह जाते हैं। रोम से तो अधिक उजड़ा हुआ शहर दिल्ली है! रोम जिन्दा है! वहाँ जीवन है। वहाँ अंगड़ाई है। यदि उसकी दुर्गति हुई है, तो इसमें उसका कसूर उतना नहीं, जितना संसार के उन गिद्धों का है, जो लाश पर ही जीते हैं, इसलिए चाहते हैं कि बार-बार लड़ाइयाँ होती रहें, लोग खेत आते रहें, जिसमें उनका जशन मनता रहे।

यूरप दो बार गया, दूसरी बार लौट रहा हूँ। इस बार की यात्रा भी बड़ी अच्छी रही। यात्रा की सफलता निर्भर करती है अच्छे सहयात्री पर। यह भाई देशपांडे हैं, यह शिवाजी हैं, यह शीलारानी हैं। हम चारों ने किस तरह एकात्मता निभाई! हम दो बुजुर्ग हैं—दोनों बच्चों ने हमें कितना आदर और सम्मान दिया। हमने भी अपना प्यार उड़ेलने में कभी कमी की? ऐसे साथी हों, तो फिर जंगल में भी मंगल रच जाय। हम तो सदा सुख-सुविधा से ही यात्रा करते रहे!

जब लौट रहा हूँ, मन में उत्सुकता जगती है, क्या तीसरी बार भी आ सकूँगा? और अब तो कह सकता हूँ, जरूर आऊँगा। यूरप ने दो बार निमंत्रण देकर बुलाया, अब हमारा धर्म हो गया है कि उसके इस भाई-चारे को हम सदा हरा-भरा रखें।

यूरप ! आऊँगा, आऊँगा, आऊँगा !

उड़ते चलो, उड़ते चलो !—अब तो यह नारा हो गया है हमारा ! दो-चार वर्ष और घर को दे देना है, फिर तो वानप्रस्थ का बाना धारण करना ही है—उड़ते चलो, उड़ते चलो !

—समाप्त—